भावार्थ—शुक्लयजुर्वेदीयवाजसनेयिसंहिता के ३९ अध्यायों में कर्मकांड समाप्त हो गया अब ज्ञानकाण्ड का प्रारम्भ होता है, तहां गर्भाधान आदि संस्कारोंसे जिसका शरीर संस्कृत हो गया है जिसने वेद पढ़ा है, पुत्र उत्पन्न किया है, यथाशक्ति यज्ञानुष्ठान किया है, जो कर्त्तव्यके पालन से निष्पाप होगया है, नित्य अनित्य वस्तुके विवेक से जिसकी विषयों में चाहना नहीं रही है ऐसे यम-नियमवान् मुमुक्षु को शिक्षा देती हुई भगवती श्रुति कहती है कि—इस जगत् में जो कुछ एक स्वरूपमें रह कर प्रतिक्षणमें परिणामको प्राप्त होनेवाला पञ्चभूतमय चराचर जगत् है, यह दीखताहुआ सबही नियन्ता परमात्मा करके आच्छादित है, ऐसा जानना चाहिये अर्थात् यह सब ब्रह्ममय है. ऐसा जानकर विषयबुद्धिको त्यागदेना चाहिये उस विषयबुद्धिको त्यागकर अर्थात् विषयों में अहन्ता और ममताको छोड़ कर परमात्माको भोग अर्थात् पूर्व कहे सर्वव्यापक परमात्माका अनुभव कर, वा इच्छाके बिना ही स्वयं प्राप्त हुए भोगोंका अनुभव कर, वा अपने आत्माकी जन्म मरण आदिके दुःखसे रक्षाकर, वा आत्मसुखका अनुभव कर, अपने वा परके किसीके भी धन कहिये भोगने योग्य विषयोंको भोगनेकी अभिलाषा मतकर ॥१॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।

अन्वय और पदार्थ-(इह) इसलोक में (कर्माणि) कर्मों को (कुर्वन् एव) करता हुआ ही (शतम्) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत) जीवित रहने की इच्छा करै (एवम्) इसप्रकार (त्वयि) तुझ (नरे) मनुष्य में (इतः) इस प्रकार से (अन्यथा) अन्यप्रकार (न अस्ति) नहीं है, (कर्म) अशुभ कर्म (न) नहीं (लिप्यते) संलग्न होता है ॥ २ ॥

भावार्थ-इसप्रकार आत्मज्ञानी को पुत्रेच्छा धनेच्छा और स्वर्गादिलोक प्राप्तिकी इच्छाको त्याग कर आत्मनिष्ठभावसे आत्माकी रक्षा करनी चाहिये, ऐसा वेदका उपदेश है। और दूसरा जो आत्माके स्वरूपको न जाननेसे आत्माको ग्रहण नहीं करसकता, उसको श्रुति उपदेश देती है कि-ब्रह्मयोगमें असमर्थ पुरुष चित्तकी शुद्धिके लिये अग्निहोत्र आदि कर्म करताहुआ ही इस कर्मभूमि भूलोकमें सौ वर्षपर्यन्त जीवित रहने की इच्छा करै। हे मनुष्य इसप्रकार कर्म करते हुए जीवित रहनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य-शरीराभिमानी तेरे निमित्त इस प्रकारसे कर्म करनेके अतिरिक्त और कोई ऐसा मार्ग नहीं है कि-जिसके द्वारा अशुभ कर्मका लेप न हो और चित्तकी शुद्धि हो-

कर ब्रह्मयोगकी सिद्धि होसकै ॥ २ ॥

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ३

अन्वय और पदार्थ—(असुर्याः) असुरों के निवास भूत (नाम) प्रसिद्ध (अन्धेन) आत्मा के अदर्शनरूप (तमसा) अज्ञान करके (आवृताः) ढकेहुए (ते—ये) जो (लोकाः) लोक [सन्ति] हैं। (ये के च) जो कोई (आत्महनः) आत्मघाती (जनाः) पुरुष हैं (ते) वह (प्रेत्य) इस शरीर को त्यागकर (तान्) उन लोकोंको (अभिगच्छन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—अब जो आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं करते हैं उनका परिणाम कहते हैं कि—जो केवल प्राणोंका पोषण करनेमें ही तत्पर रहते हैं वह चाहे देवता भी हों तो असुर हैं, क्योंकि—[असुषु रमन्ते इति असुराः] जो प्राणोंके पोषणमें ही मग्न रहैं वह असुर हैं। ऐसे असुरों के निवासस्थानरूप प्रसिद्ध, विचारशून्य होनेके कारण आत्मस्वरूप को न जाननारूप अज्ञानान्धकार से भरे हुए वा ढके हुए जो लोक कहिये जिनमें कर्मफलों को भोगा जाता है ऐसे शूकर कूकर आदि योनि वा नरक हैं। जो कोई सर्वप्रकाशक आत्मा के होतेहुए भी यह कहते हैं कि—यह देह ही मैं हूँ, आत्मा और

कोई नहीं है, ऐसे आत्मघाती पुरुष इस शरीर को त्यागनेपर खर, शूकर आदि की योनियों को वा नरकविशेषरूप उन लोकोंको प्राप्त होकर परमदुःखों को भोगते हैं ॥ ३ ॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-[ब्रह्म] ब्रह्म (एकम्) अद्वितीय (अनेजत्) अचल (मनसः) मन से (जवीयः) अति वेगवान् (देवाः) इन्द्रियें (पूर्वम्) पहिले (अर्षत्) गए हुए (एतत्) इस को (न) नहीं (आप्नुवन्) प्राप्त हुई। (तत्) वह ब्रह्म (तिष्ठत्) स्थिर है (धावतः) शीघ्र जानेवाले (अन्यान्) औरों को (अत्येति) अतिक्रमण करके जाता है (तस्मिन्) तिसके होनेपर (मातरिश्वा) वायु (अपः) चेष्टाओंको (दधाति) धारण करता है४

भावार्थ-जिसको न जानने के कारण अज्ञानी पुरुष वार २ संसारमें जन्म मरण पाते हैं और ज्ञानी पुरुष जिसको जानकर मुक्त होजाते हैं तथा जो सकल जगत्में व्याप्त होरहा है वह आत्मतत्त्व कैसा है, सो कहते हैं कि—ब्रह्म, सकल प्राणियों में एक ही है, क्षय, वृद्धि आदिसे रहित होकर सर्वदा एकरूप अचल रहता है, सङ्कल्परूप अतिचंचल मनसे भी

अधिक वेग वाला है, क्योंकि--देहमें स्थित भी मन संकल्पमात्रसे क्षणभरमें अतिदूर ब्रह्मलोक आदिमें जापहुँचता है, इसकारण लोकमें प्रसिद्ध है कि—मन बड़ा वेगवाला है, उस मनके ब्रह्मलोक आदिको शीघ्रता के साथ जाने पर यह आत्मचैतन्य (ब्रह्म) तहाँ पहिलेसे ही पहुँचा हुआ सा प्रतीत होता है, जब कि–यह मनसे भी आगे चलता है तब उस मनके सम्बन्ध से ही व्यापार करनेवाली इन्द्रियें तो इसको पाही नहीं सकतीं। वह ब्रह्म व्यापकरूप से सर्वत्र स्थिर होकर भी शीघ्र गमन करनेवाले काल वायु आदि को लांघ कर मानो गमन करता है अर्थात् वह सर्वत्र स्थित रहता है तथापि काल वायु आदि उसको नहीं पासकते। तिस परमात्मतत्त्वके होनेपर ही सकल शरीरोंका प्राणधारक वायु प्राणियोंके सकल शरीरों की चेष्टाओंको करता है, क्योंकि–उसके विना कहीं कुछ हो ही नहीं सकता ॥ ४॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) वह ब्रह्म (एजति) चलता है (तत्) वह ब्रह्म (न एजति) नहीं चलता है (तत्) वह ब्रह्म (दूरे) दूर है (तत्) वह ब्रह्म (अन्तिके उ) समीप भी है (तत्) वह ब्रह्म (अस्य) इस (सर्वस्य) सबके (अन्तः) भीतर है (तत्)

वह ब्रह्म (बाह्यतः उ) बाहर भी है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे दयावती माता अपनी सन्तानको एक ही उपकारक बात का बार २ उपदेश करनेमें आलस्य नहीं करती है तैसे ही श्रुति भी जगत् पर दयाभाव दिखाती हुई पहिले कहे हुए मन्त्रके अर्थको ही दृढ़ करनेके निमित्त फिर उपदेश करती है कि-वह आत्मतत्त्व (ब्रह्म) चलता है अर्थात् वह जङ्गम है और नहीं भी चलता है अर्थात् स्थावर भी है, वह अज्ञानियोंको करोड़ों जन्मोंमें भी प्राप्त नहीं होता इस कारण दूर है और ज्ञानियों को आत्मस्वरूप होनेके कारण हृदयमें स्थित होने से समीप भी है, वह अन्तर्यामी होनेके कारण इस सकल विश्वके भीतर प्रकाशित है, और वह सर्वव्यापक होनेके कारण इसके बाहर भी विराजमान है।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः तु) जो तो (सर्वाणि) सकल (भूतानि) भूतोंको (आत्मनि) आत्मस्वरूपमें (सर्वभूतेषु च) सकल प्राणियोंमें भी (आत्मानम्) आत्मस्वरूपको (अनुपश्यति) देखता है (ततः) तिस कारणसे (न) नहीं (विजुगुप्सते) घृणा करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—पीछे वर्णन किये हुए आत्मज्ञानका फल कहते हैं, कि—जो संसारसे विलक्षण दृष्टि

वाला मुमुक्षु पुरुष अव्यक्त (प्रकटरूपसे न दीख-नेवाले आदिकारण) से लेकर स्थावरपर्यन्त सकल वस्तुओंको आत्मामें (परमात्मामें) और सकल वस्तुओंमें आत्माको देखता है अर्थात् सर्वत्र एक आत्माकी ही व्यापकताका अनुभव करता है इस दर्शन या अनुभवके कारणसे वह तत्ववेत्ता महात्मा पुरुष निःसंशय होजाता है, किसीसे भी घृणा नहीं करता, क्योंकि–वह किसीको दूसरा समझता ही नहीं है, सर्वोमें अतिविशुद्ध आत्माको ही निर-न्तर देखता है ॥ ६ ॥

यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

अन्वय और पदार्थ–(यस्मिन्) जिससमय (विजानतः) ज्ञानीका (सर्वाणि) सब (भूतानि) भूत (आत्मा एव) आत्मा ही (अभूत्) हुआ (तत्र) उस समय (एकत्वम्) एकात्मभावको (अनुपश्यतः) देखनेवालेके (मोहः) मोह (कः) कौन (शोकः) शोक (कः) कौन ॥ ७ ॥

भावार्थ--आत्मज्ञानीकी दशाका वर्णन करते हैं कि जिस समय आत्माका साक्षात्कार करनेवाले ज्ञानी को ऐसे एकात्मभावका अनुभव होजाता हैं कि ब्रह्मादि स्थावर पर्यंत सब आत्मस्वरूपहै, मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है सर्वरूप मैं ही हूँ, उस समय उसएका-त्मदर्शी ज्ञानीको मोह कहिये अविद्याका कार्य आव-

रणरूप द्वैतभाव कहाँ? और विक्षेपस्वरूप अर्थात् दुःख-रूपी वृक्षका बीजरूप शोक कहां? सार यह है कि जब आत्मरूपका ज्ञान होने पर अविद्याका ही समूल नाश होगया तब उसके कार्य आवरण विक्षेपके भी न रहनेसे मोह और शोकका लेश भी नहीं रहता किन्तु उस समय यह ज्ञानी जीवन्मुक्त दशाको प्राप्तहुआ मौन होकर स्थित रहता है॥

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ ८॥

अन्वय और पदार्थ-(पर्यगात्) सर्वव्यापी (शुक्रम्) स्वप्रकाश (अकायम्) अशरीर (अव्रणम्) व्रणरहित (अस्नाविरम्) स्नायुरहित (शुद्धम्) शुद्ध (अपापविद्धम्) पापरहित (कविः) भूत भविष्यत् वर्त्तमानका जाननेवाला (मनीषि) मनका नियन्ता (परिभूः) सबसे श्रेष्ठ (स्वयम्भूः) स्वयंप्रकाश (सः) वह परमात्मा (याथातथ्यतः) यथोपयुक्तभाव से (शाश्वतीभ्यः) नित्य (समाभ्यः) संवत्सर नामक (प्रजापतिभ्यः) प्रजापतियोंके अर्थ (अर्थान्) पदार्थोंको (व्यदधात्) विभक्त करके देता हुआ।

भावार्थ-वह आत्मा अपने स्वरूपसे किसप्रकार का है सो कहते हैं कि—आकाशकी समान सर्व-

व्यापी, ज्योतिःस्वरूप, लिङ्गशरीर रहित व्रण और शिराओंसे रहित, कहिये स्थूल शरीररहित, अविद्या के मलसे निर्लेप होने के कारण निर्मल अर्थात् कारणशरीर रहित, धर्म अधर्म आदि पापके सम्बन्ध से रहित (पुनर्वार जन्म होने का हेतु होने से पुण्य-कर्मस्वरूप धर्म भी पाप ही है) भूत भविष्यत् वर्त्तमानका ज्ञाता मनका नियन्ता अर्थात् घट २ की जानने वाला, सर्वज्ञ, सबसे ऊपर श्रेष्ठ, जिसका कोई कारण नहीं ऐसे स्वयंप्रकाश तिस परमात्मा ने कार्यकारण आदिके नियमित स्वरूप करके यथोपयोगी चेतन अचेतन रूप पदार्थ अर्थात् जिस कर्म फलके लिये जिन साधनोंकी आवश्यकता थी वह नित्य सम्वत्सर नामक प्रजापतियोंको दिये ॥ ८ ॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते य उ विद्यायाᳩरताः ॥९॥

अन्वय और पदार्थ (ये) जो (अविद्याम्) विद्यासे भिन्न केवल कर्ममात्रको। (उपासते) चिन्तवन करतेहैं [ते]वे (अन्धम्) गम्भीर (तमः) अन्धकारको (प्रविशन्ति) प्राप्त होते हैं। (ये उ) जो तो (विद्यायाम्)देवोपासना में (रताः) तत्पर रहते हैं (ते) वे (ततः) तिससे (भूय इव) और भी अधिकतर (तमः) अन्धकारको [प्रविशन्ति] प्राप्त होते हैं॥ ९ ॥

भावार्थ—कर्म और उपासना दोनों का समुच्चय करनेकी इच्छासे उनका फल दिखाकर निंदा करते

हैं कि-जो मनुष्य केवल कुछ कालके निमित्त स्वर्गादिदायक अग्निहोत्र आदि कर्मस्वरूप अविद्या का ही उसमें तत्पर होकर अनुष्ठान करते हैं वह अदर्शनरूप अज्ञानान्धकारमें प्रवेश करते हैं अर्थात् उनको आत्मस्वरूपका ज्ञान नहीं होता इसकारण वह वार २ संसारचक्रमें ही घूमते रहते हैं और जो पुरुष केवल देवताओंकी उपासना ही करते हैं अथवा जो केवल मुखसे ही 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा कहते हैं वह देवताओंके उपासक वा मुखमात्रके ब्रह्मवादी और भी अधिक अज्ञानान्धकारमें पड़ कर टक्करें खाते हैं, क्योंकि-जो अशुद्धचित्त होने पर भी कर्म नहीं करते हैं किंतु केवल देवताओं की उपासनामें तत्पर होजाते हैं वह कर्मका अधिकार होने पर भी कर्मका त्याग करने से प्रत्यवाय दोषयुक्त अर्थात् अपने कर्त्तव्य को पूरा न करनेके अपराधी होकर कर्मानुष्ठान करनेवालों से भी अधिक जन्ममरणके चक्ररूप अन्धकारमें पड़जाते हैं और उस उपासनाके भी फलको नहीं पाते किन्तु ममतारूप अन्धकार भरे गढेमें जा पड़ते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥

अन्वय और पदार्थ-(विद्यया) देवोपासना करके (अन्यत् एव) और ही [फलम्] फल होता

है [इति] ऐसा [पण्डिताः] पंडित (आहुः) कहते हैं (ये) जो (नः) हमारे अर्थ (तत्) सत् कर्म और ज्ञानको (विचचक्षिरे) कहते हुए [तेषाम्) तिन (धीराणाम्) ज्ञानियोंके [वचनम्] वचनको (इति) इसप्रकार [वयम्] हम (शुश्रुमः) सुन चुके हैं ॥ १० ॥

भावार्थ-पूर्वोक्त विषयमें माननीय ज्ञानियोंके कथनका प्रमाण देते हैं कि-ज्ञानीजनोंने देवोपासनाका फल और ही कहा है तथा कर्मोपासनाका फल और ही कहा है, क्योंकि श्रुति कहती है कि-देवोपासना से देवलोककी प्राप्ति होती है और कर्मोपासना से पितृलोककी प्राप्ति होती है। जिन विद्वानोंने हमसे इस देवोपासना और कर्मोपासनाके तत्त्वको कहा है, उन ज्ञानियोंके उपदेशको हमने सुना है ॥ १० ॥

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳसह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ११

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (विद्याम् च) देवोपासनाको भी वा आत्मज्ञानको भी (अविद्याम् च) कर्मको भी (तत्) इन (उभयम्) दोनोंको (सह) मिलकर फल देनेवाले वा एक ही पुरुष करके अनुष्ठान करनेयोग्य (वेद) जानता है [सः] वह (अविद्यया) अग्निहोत्रादि कर्म करके (मृत्युम्) विस्मरणरूप स्वाभाविक अज्ञानको वा स्वरूपका विस्मरण करानेवाली चित्तकी अस्थिरताको (तीर्त्वा)

नरकर (विद्यया) देवोपासना करके वा आत्मज्ञान करके (अमृतम्) देवात्मभावको वा मोक्षको (अश्नुते) पाता है ॥ ११ ॥

भावार्थ-देवोपासना कर्मानुष्ठानके साथमें होकर ही अपना फल देती है, यह दिखानेके लिये कहते हैं कि-जो पुरुष, देवोपासना और कर्मानुष्ठान दोनों इकट्ठे होकर ही फल देसकते हैं इस तत्त्वको जानता है वह अग्निहोत्रादि कर्मोंके अनुष्ठानसे आत्मविस्मरणरूप स्वाभाविक अज्ञानके अथवा ऐश्वर्यहीनता आदि दुःखोंके समूहके पार होकर देवोपासनाके द्वारा अमृतत्व पाताहै अर्थात् जैसे देवता हमारी अपेक्षा अधिक जीवनवाले होनेसे अमर कहाते हैं तैसे ही कुछ अधिक समयका जीवन प्राप्त करता है अथवा अमृतत्व कहिये देवतात्मभाव प्राप्त करता है,क्योंकि-श्रुति कहती है कि-देवतात्मभावको प्राप्त होनेका नाम अमृत है ॥ * ॥ अथवा इस मंत्र का यह भी अर्थ है कि-जो पुरुष कर्म और आत्मज्ञान, एक ही पुरुषको अधिकारके भेदसे क्रमशः पहिले पीछे करने चाहिये ऐसा जानता है वह अविद्या कहिये कर्म करके वा उपासना करके (उपासना भी मानसिक कर्म हीहै) मृत्यु कहिये स्वरूपका विस्मरण होनेके हेतु चित्त के मलरूप अस्थिरताको दूर करके अर्थात् कर्मानुष्ठान वा देवोपासनासे शुद्धचित्त होकर आत्मज्ञानके द्वारा मोक्षरूप अमरपदको पाजाता है॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या ँ रताः ॥

अन्वय और पदार्थ-(ये) जो (असम्भूतिम्) प्रकृतिको (उपासते) उपासना करते हैं (अन्धंतमः) गम्भीर अन्धकारको, (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं (य उ) जो (सम्भूत्याम्) हिरण्यगर्भ रूप प्रकृति के कार्यमें (रताः) आसक्त रहते हैं (ते) वे (ततः) तिससे (भूय इव) और भी अधिकतर (तमः) अन्धकारको (प्राप्नुवन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ-जो आत्मतत्त्वको नहीं जानता है और संसारमें भी अधिक आसक्त नहीं है उसके चित्त को एकाग्रता होनेके निमित्त उपासनाएं कहते हुए प्रत्येक उपासनाके फलका कथन करके निन्दा करते हैं । अथवा पूर्व कहे हुए आत्मज्ञान की सर्वश्रेष्ठता और उसमें अन्य की संसारहेतुता दिखाते हैं कि-जो केवल कारणरूप अव्याकृत प्रकृति-मायाकी उपासना करते हैं वे घोर अन्धकारस्वरूप प्रकृति मायामें ही घुसते चलेजाते हैं, क्योंकि श्रुति कहती है कि-उसकी जिसभावसे उपासना करता है तैसा ही होजाता है । और जो केवल प्रकृतिके कार्यमें हिरण्यगर्भ माया बीजके कार्यमें ही मग्न होजाते हैं वह पुरुष उससे भी अधिक अज्ञानान्धकार को प्राप्त होते हैं. अर्थात् उनको आत्मसाक्षात्कार न होकर

संसारबन्धनका हेतु होनेके कारण अन्धकारस्वरूप अणिमादिक सिद्धियें प्राप्त होजाती हैं ॥ १२ ॥

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥

अन्वय और पदार्थ—(सम्भवात्) कार्यब्रह्मकी उपासनासे (अन्यत् एव) और ही (फलम्) फल होता है (इति) ऐसा (पण्डिताः) पण्डित (आहुः) कहते हैं (असम्भवात्) प्रकृतिकी उपासना से (अन्यत् एव) और ही (फलम्) फल होताहै (इति) ऐसा (पण्डिताः) पण्डित (आहुः) कहतेहैं (ये)जो (नः)हमारे अर्थ (तत्) इस दोनोंप्रकारकी उपासनाके तत्व को (विचचक्षिरे) कहतेहुए (तेषाम्) तिन (धीराणाम्) ज्ञानियोंके [वचनम्] वचनको (इति) इसप्रकार (वयम्) हम (शुश्रुम) सुन-चुके हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—पूर्वोक्त विषयमें माननीय ज्ञानियोंके उपदेशका प्रमाण देते हैं कि-ज्ञानियोंने केवल कार्य ब्रह्मकी उपासनाका अणिमादि ऐश्वर्यकी प्राप्तिरूप फल कहाहै तथा केवल अव्याकृत प्रकृतिकी उपासना का प्रकृति (माया) में ही लीन होजाना रूप भिन्न फल कहा है, जिन विद्वानोंने हमसे इन दोनों उपासनाओंके तत्वको कहा है, उन ज्ञानियोंके उपदेश को हमने सुना है ॥ १३ ॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳसह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (सम्भूतिम्) कारण प्रकृतिको (विनाशम् च) हिरण्यगर्भनामक कार्यको भी (तत्) इन (उभयम्) दोनोंको (सह) एकसाथ फलदायक (वेद) जानता है [सः] वह (विनाशेन) हिरण्यगर्भकी उपासनासे (मृत्युम्) अनैश्वर्य आदि दुःखको (तीर्त्वा) पार करके (असंभूत्या) अव्याकृत कारणकी उपासनासे (अमृतम्) अमृतत्वको (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥१४॥

भावार्थ-कार्यब्रह्मोपासना अव्याकृतोपासनाके साथमें होकर ठीक २ फलदेती है, यह दिखाती हुई श्रुति कहती है कि-जो पुरुष हिरण्यगर्भस्वरूप कार्य ब्रह्मकी और प्रकटरूपमें प्रतीत न होनेवाली अव्याकृत प्रकृतिरूप कारणकी उपासना एकसाथ करता है वह हिरण्यगर्भरूप सगुणब्रह्मकी उपासनाके द्वारा ऐश्वर्य आदि पाने से अनेकों दुःखरूप मृत्युके पार होकर अव्याकृत कारणरूप प्रकृतिकी उपासना से निज प्रकृतिमें लय पाता है अर्थात् सांसारिक दुःख का अनुभव न होने से सुषुप्ति की समान प्रकृति में मग्न होजाना रूप अमृतत्व पाताहै ॥१४॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥१५॥

अन्वय और पदार्थ-(पूषन्) हे सूर्य (तव) तुम्हारे (हिरण्मयेन) ज्योतिर्मय (पात्रेण) ढक्कन से (सत्यस्य) सत्यका (मुखम्) द्वार (अपिहितम्) ढकाहुआ है (सत्यधर्माय) सत्यके उपासक मेरे अर्थ (दृष्टये) तुम्हारे दर्शनके निमित्त (त्वम्) तुम (तत्) उसको (अपावृणु) आवरण रहित करिये १५

भावार्थ-ऊपर की श्रुतियोंके उपदेशके अनुसार वर्त्ताव करनेवाला मुमुक्षु पुरुष गर्भाधानसे लेकर प्रेत-क्रियापर्यन्त कर्मों को करनेके साथ ब्रह्मकी उपासना करता हुआ अन्तकालके आजाने पर अमृतत्वको प्राप्ति के लिये उसको पानेके द्वारभूत आदित्यदेवकी यामना करता है कि-हे जगत् को पुष्टि देनेवाले सूर्यदेव ! तुम्हारे प्रकाशमय ढकनेवाले पात्र से सत्य कहिये आदित्यमंडल में स्थित ब्रह्मका मुख कहिये द्वार ढकाहुआ है, मुझ सत्यस्वरूप ब्रह्मके उपासक को सत्यस्वरूप आपकी प्राप्ति होनेके लिये उसपरसे आवरणको हटादीजिये ॥ १५ ॥

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह । तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते प-श्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि १६

अन्वय और पदार्थ-(पूषन्) हे जगत्पोषक (एकर्षे) हे एकाकी होकर गमन करनेवाले (यम) हे सबके नियामक (सूर्य) हे रसों को स्वीकार करने वाले

(प्राजापत्य)प्रजापतितनय (रश्मीन्) अपनी किरणों को (व्यूह) समेटिये (तेजः) तेजको (समूह) इकट्ठा करिये (ते) तुम्हारा (यत्) जो (कल्याणतमम्) परममङ्गलमय (रूपम्) रूप है (तत्) उसको (ते) तुम्हारे (प्रसादात्) अनुग्रह से (पश्यामि) देखूँ (यः) जो (असौ) यह (पुरुषः) पुरुष है (सः) वह (अहम्) मैं (अस्मि) हूं ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-हे जगत्के पुष्टिदातः! हे अद्वितीय गमन करनेवाले! हे सबके नियामक! हे प्रजापतिके अपत्य सूर्यदेव! अपनी किरणोंको इकट्ठा करिये, तेज को समेटिये, जिससे कि मैं आपके मंगलमय रूपका साक्षात्कार करूँ, यह प्रार्थना मैं आपसे सेवककी समान नहीं करता हूँ, क्योंकि--मैं तो आपका ही स्वरूप हूँ,मैं परब्रह्म हूँ आप केवल ब्रह्म हैं, मैं सत्य कहता हूँ कि-आपकी और मेरी एकता है, सर्वत्र पूर्ण होनेसे पुरुष कहलानेवाला जो यह सूर्यमण्डल में देह इन्द्रियादिका साक्षी है वह स्वयं मैं ही हूँ कार्य कारणस्वरूप सकल वस्तुओंमें पुरा हुआ परम शुद्ध जो ब्रह्म सो मैं ही हूँ, क्योंकि-शास्त्र कहता है कि सर्वात्मा सर्वव्यापक ब्रह्म ही सत्य है; और उसको ही जानने पर जन्ममरणके बन्धनसे मुक्ति होती है १६

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इस समय (वायुः)

प्राण (अनिलम्) अपनी प्रकृति (अमृतम्) सूत्रात्माको [प्रतिपद्यताम्] प्राप्त हो (इदम्) यह (शरीरम्) शरीर (भस्मान्तम्) भस्मरूप है समाप्ति जिसकी ऐसा (भूयात्) हो (ॐ) मैं ब्रह्मको स्मरण करता हूँ (क्रतो) हे मन (स्मर) मेरे इष्टको स्मरण कर (कृतम्) किये हुएको (स्मर) स्मरण कर। दो वार कहना आदरके अर्थ है ॥ १७ ॥

(भावार्थ)-अब जिसने ब्रह्मोपासना की है ऐसे योगीका शरीरपात होनेके समय जो कुछ होता है सो कहते हैं, उस समय योगी प्रार्थना करता है कि-इस समय मरण को प्राप्त हुए मेरा प्राणवायु (लिंगशरीर) अपनी प्रकृति शिवस्वरूप दिव्य सूत्रात्मामें लयको प्राप्त होजाय, क्योंकि- मैं शिवस्वरूप सनातन ब्रह्म हूं और यह स्थूल शरीर भस्म होकर समाप्त होजाय अर्थात् यह पृथ्वीका अंश है इसकारण यहां ही रहै, मैं प्रणवस्वरूप ब्रह्मका स्मरण करता हूँ क्योंकि-वह मेरा सूत्रात्मा है अथवा मैं वह ही हूँ, हे सङ्कल्पात्मक मन ! तुझको जो कुछ स्मरण करना चाहिये उसका यह समय आगया, अतः अपना हित समझकर अबतक जो कुछ विचार किया है उसका स्मरण कर, अथवा मेरे इष्ट आत्मस्वरूप का स्मरण कर जिससे मेरा संसारबंधन दूर हो, क्योंकि- अन्तमें जैसी मति होती है तैसी ही गति होती है, हे मन ! अपने करेहुए कर्मका स्मरण कर अपने करे हुए कर्मका स्मरण कर ॥ १७ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अग्ने)अग्निदेव(अस्मान्) हमको (राये) धनके अर्थ (सुपथा) श्रेष्ठ मार्गसे (नय) पहुंचाओ (देव) हे प्रकाशस्वरूप (विश्वानि) सकल (वयुनानि) कर्मोंको वा ज्ञानोंको (विद्वान्) जानने वाले तुम (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) पापको (अस्मत्) हमसे (युयोधि) अलग करो (ने) तुम्हारे अर्थ (भूयिष्ठाम्) बहुतसी (नमउक्तिम्) नमस्कारवचनको (विधेम) करते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ-उपासक अन्तमें किस मार्गसे जाता है सो श्रुति दिखाती है अथवा योगी अन्तसमय सब आश्रमोंके परिचित अग्निकी प्रार्थना करता है कि-हे अग्ने ! हमको मुक्तिरूप फल पानेके निमित्त उत्तरायण मार्गसे लेचलो अर्थात् आवागमनरूप दक्षिण मार्गकी यात्रासे अब मैं व्याकुल होगया, इसकारण बारम्बार जन्म मरण जिसमें न हों ऐसे मङ्गलमय मार्गसे ब्रह्मलोकमें पहुंचा, हे देव ! सकल कर्म और ज्ञानोंको जानने वाले देव ! व्यवहारके निमित्त आचरण किये हुये वञ्चनास्वरूप पापको मुझ से अलग करके नष्ट करो, जिससे कि—हम विशुद्ध होकर इष्टको पावें, जिसमें कि- हम विशुद्ध होकर

इष्ट को पावें अर्थात् निष्पाप होकर मुक्ति के योग्य हों इस शरीरान्तके समय शरीरकी स्फूर्त्ति न होनेके कारण मैं तुम्हारी कुछ सेवा नहीं कर सकता केवल वार २ नमः नमः कहता हूँ, इतने से ही आप प्रसन्न हूजिये ॥ १८ ॥

इति श्रीमट्टाङ्कवंशावतंस-भारद्वाजगोत्र पण्डितभोलानाथात्मजेन पं० रामस्वरूपशर्मणा, विरचितया अन्वयसनाथितया पदार्थ वाक्यार्थरूपया हिन्दीभाषया युता माध्यन्दिनी-शाखान्तर्गता ईशोपनिषत्समाप्ता.

ॐ

सामवेदीय-तलवकारोपनिषद्

केनोपनिषत्

अन्वय, पदार्थ और भाषार्थसहित

किसी एक मुमुक्षुको, इस लोकके तथा परलोकके भोगोंसे विरक्त होने पर इसप्रकारका विवेक हुआ कि-यह आत्मा नित्य है और इससे भिन्न सब प्रपञ्च अनित्य हैं, तब शम--दम आदि साधनसम्पन्न और मोक्षकी उत्कट इच्छा वाला मुमुक्षु वेदपाठी ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमें गया, उन गुरुशिष्यके प्रश्नोत्तर रूपसे इस उपनिषद्का प्रारम्भ है, क्योंकि—गुरुशिष्यके प्रश्नोत्तर रूपसे ब्रह्मविद्या शीघ्र ही बुद्धिस्थ होसकती है। शिष्य प्रश्न करता है कि--

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति, चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(केन) किस करके (इषितम्)

नियमित (प्रेषितम्) प्रेरणा कियाहुआ (मनः) मन (पतति) गिरता है (केन) किस करके (युक्तः) प्रेरणा कियाहुआ (प्रथमः) प्रधान (प्राणः) प्राण (प्रैति) प्रवृत्त होता है (केन) किस करके (इषिताम्) प्रेरित (इमाम्) इस (वाचम्) वाणीको [लोकाः] लोक (वदन्ति) बोलते हैं (चक्षुः) नेत्रको (श्रोत्रम्) श्रोत्रको (कः, उ) कौन (देवः) देव (युनक्ति) प्रेरणा करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे गुरो ! यह मन, किसके चलाने पर अपने अनुकूल पदार्थोंमेंको दौड़ता है? क्योंकि किसी चेतन प्रेरकके बिना इस जड़ मनकी प्रवृत्ति अपनेआप तो हो ही नहीं सकती, यदि कहो कि–अपने आप स्वतन्त्र होकर ही यह अपने विषयकी ओरको जाता है,तबतो यह अनर्थका हेतु जानकर भी खोटे संकल्प करता है,ऐसा क्लेशदायक सङ्कल्प तो नहीं करना चाहिये, परन्तु यह करता है, इसलिये इसका प्रेरक कोई अवश्य होना चाहिये सो यह कौन है, यह कृपा करके बताइये और हे गुरो ! जिसके बिना किसी इन्द्रियकी चेष्टा नहीं हो सकती ऐसा सब शरीरोंमें मुख्यरूपसे वर्त्तमान प्राण, किसकी प्रेरणा करनेसे अपने व्यापारको करता है ? क्योंकि–यह भौतिकप्राण जड़ सक्रिय होनेके कारण अनात्मा है, अतः इसका प्रेरणा करनेवाला कोई चेतन अवश्य होना चाहिये, उसको बताइये । किसकी प्रेरणा की

हुई वाक् इन्द्रियको कौन संस्कृत भाषा आदि अनेकों प्रकारके शब्दोंमें उच्चारण करते हैं और चक्षु तथा श्रवणेन्द्रियको कौन देवता प्रेरणा करता है, जिससे कि-चक्षु नानाप्रकारके हरे पीले आदि रंगोंको देखते हैं और अनेकों शब्दोंको सुनते हैं, इस सबके कहनेका सार यह है कि-इस स्थूल सूक्ष्म संघातका प्रेरक कौन है, सो बताइये ॥ १ ॥

ऐसे शिष्यके प्रश्नको सुनकर गुरु उपदेश देता है कि-

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुपश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्)जो (श्रोत्रस्य) श्रोत्रका (श्रोत्रम्) श्रोत्र है (मनसः) मनका (मनः) मन है (वाचः ह) वाणीका भी (वाचम्) वाणी है (सः उ) वह ही (प्राणस्य) प्राणका (प्राणः) प्राण है (चक्षुषः) चक्षुका (चक्षुः) चक्षु है [श्रोत्राद्यात्मभावम्] श्रोत्र आदिके विषैं आत्मभावको (अतिमुच्य) त्यागकर (धीराः) विवेकी पुरुष (अस्मात्) इस (लोकात्) लोकसे (प्रेत्य) जाकर (अमृताः) अमर (भवन्ति) होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ-हे शिष्य ! तुमने जो पूछा कि श्रोत्र, मन आदिका प्रेरक कौन है, सो आत्मा श्रोत्रका श्रोत्र है, मनका मन है, वाणीका वाणी है और प्राणका

माण है अर्थात् इन सबोंकी शक्तिका कारण है इस प्रकार देह इन्द्रियादिको प्रेरणा करने वाले और देह इन्द्रिय आदिसे भिन्न आत्माको जान कर और इस ज्ञानके द्वारा देह इन्द्रियादिमें आत्मबुद्धिको त्याग कर अधिकारी पुरुष इस लोकसे अलग होकर अर्थात् देहान्त होने पर अमृतस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होते हैं और जन्म मरणरूप अनर्थसे छूट जाते हैं ॥

न तत्र चक्षुर्गच्छति नवाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्य-देव तद्विदितादथोऽविदितादधि इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्र) तिस ब्रह्मके विषय (चक्षु)चक्षु(न)नहीं (गच्छति) पहुंचता है ।(वाक्) वाणी (न) नहीं (गच्छति) पहुंचती है (मनः) मन (न) नहीं (गच्छति) पहुंचता है [वयम्] हम [तत्] उसको (न) नहीं (विद्मः) जानते हैं (यथा) जैसे (एतत्) इसको (अनुशिष्यात्) उप-देश करै (न) नहीं (विजानीमः) विशेषरूपसे जानते हैं (तत) वह (विदितात) जाने हुएसे (अथो) और (अविदितात्) न जाने हुएसे (अधि) ऊपर (अन्यत् एव) पृथक् ही है (ये) जो (नः) हमको (तत्) उस ब्रह्मतत्त्वको (व्याचचक्षिरे) स्पष्ट कहते हैं [तेषाम्] तिन (पूर्वेषाम्) पूर्वाचार्योंके [वचनम्]

वचन को (इति) इस प्रकार [वयम्] हम (शुश्रुम) सुनचुके हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—क्योंकि यह आत्मा चक्षुका चक्षु है इस कारण वह ब्रह्म चक्षुका गम्य नहीं है, वाणी का वाणी है इसकारण वाणी उसमें प्रवृत्त नहीं होती है मनका मन है इसकारण मन भी उसको नहीं पासकता है। जैसे अग्नि अपनेसे भिन्न काष्ठादिको जलासकता है अपना दाह करनेमें प्रवृत्त नहीं होसकता तैसे ही इन्द्रियें अपने से भिन्न घट आदि जड पदार्थोंमें प्रवृत्त होसकती हैं अपने अधिष्ठान आत्माका प्रकाश करनेमें प्रवृत्त नहीं होसकतीं। हे शिष्य! मन इन्द्रिय आदिकों से ही ज्ञान होता है, परन्तु आत्मा मन इन्द्रियादि का विषय नहीं है, इसकारण उस अविषय आत्मा को हम मन आदि के द्वारा नहीं जानते और आचार्य उसका किसप्रकार उपदेश करते हैं यह भी हम नहीं जानते यह ब्रह्मात्मा जाने हुए पदार्थ (कार्य) से और न जाने हुए पदार्थ (कारण) से भी श्रेष्ठ और भिन्न है तथा सकल कार्य कारणका प्रकाशक है, यद्यपि यह आत्मा मन वाणी आदिका गम्य नहीं है तथापि भगवती श्रुति इस आत्माका निषेधरूपसे उपदेश करती है, इसप्रकार कार्य कारण से भिन्न आत्माके स्वरूपको उन पुरातन आचार्यों के मुखसे हमने सुना है, जिन आचार्योंने हमको तिस अविषय स्वभाव आत्माका उपदेश दिया था ॥ ३ ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (वाचा) वाणी करके (अनभ्युदितम्) प्रकाशित नहीं है (येन) जिस करके (वाक्) वाणी (अभ्युद्यते) प्रेरणा की जाती है (तत् एव) उसको ही (त्वम्) तू (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान (यत्) जो (इदम्) इस देश-कालादिपरिच्छिन्न [पदार्थम्] पदार्थको [लोकाः] लोक (उपासते) उपासना करते हैं (न) नहीं है (इदम्) यह [ब्रह्म] ब्रह्म ॥ ४ ॥

भावार्थ-हे शिष्य ! आत्माके स्वरूपको फिर सुन जिस आत्माका वाणी वर्णन नहीं कर सकती और जिस आत्माकी प्रेरणासे वाणी अनेकों प्रकारके शब्दोंका उच्चारण करती है, उस व्यापकदेवको ही तुम ब्रह्मस्वरूप जानो और जिसको माया-मोहित पुरुष विषयरूपसे उपासना करते हैं, वह विषय जड़ परिच्छिन्न पदार्थ ब्रह्म नहीं है ॥ ४ ॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जिसको [लोकः] लोक (मनसा) मन करके (न) नहीं (मनुते) सङ्कल्प करता है (येन) जिसने (मनः) मन (मतम्) विषय कर लिया है [इति] ऐसा [ब्रह्मविदः]

ब्रह्मवेत्ता (आहुः) कहते हैं (तत् एव) उसको ही (त्वम्) तू (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान (यत्) जो (इदम्) इस देशकालादिपरिच्छिन्न [पदार्थम्] पदार्थको [लोकाः] लोक (उपासते) उपासना करते हैं (न) नहीं है (इदम्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म॥

भावार्थ—लोक जिस आत्माका मनसे सङ्कल्प या निश्चयरूपसे मनन नहीं करसकता और जिस आत्माने मनको जान लिया है अर्थात् जिस आत्मा से प्रकाशित हुआ मन नानाप्रकारके सङ्कल्प विकल्परूप मनन और निश्चय आदि करता है, ऐसा ब्रह्मज्ञानी कहते हैं, तुम उस साक्षीको ही ब्रह्मरूप जानो और जिस परिच्छिन्न जड़ पदार्थको ब्रह्मरूप मानकर माया-मोहित जीव उपासना (व्यवहार) करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है ॥ ५ ॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जिसको [लोकः] लोक (चक्षुषा) चक्षुसे (न) नहीं (पश्यति) देखता है (येन) जिस करके (चक्षूंषि) चक्षुगोचर विषयोंको (पश्यति) देखता है (तत् एव) उसको ही (त्वम्) तू (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान (यत्) जो (इदम्) इस देश कालादिपरिच्छिन्न [पदार्थम्] पदार्थको [लोकाः] लोक (उपासते) उपासना करते हैं (न) नहीं है (इदम्) यह [ब्रह्म] ब्रह्म ॥ ६ ॥

भावार्थ-जिस आत्माको पुरुष इस नेत्रसे नहीं देख सकता और जिसस्वप्रकाश आत्मा करके नेत्रों को विषय करता है अर्थात् नेत्रगोचर सकल विषयों को जान सकता है अथवा मेरे नेत्र हैं ऐसा जानता है, उस व्यापक आत्माको तुम ब्रह्म जानो और जिस परिच्छिन्न जड़ आत्माको मायामोहित जीव आत्मा मानकर व्यवहार करते हैं यह ब्रह्म नहीं है॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) जिसको [लोकः] लोक (श्रोत्रेण) कानसे (न) नहीं (शृणोति) सुनता है (येन) जिस करके (इदम्) यह (श्रोत्रम्) कर्णेन्द्रिय (श्रुतम्) विषय किया गया है (तत् एव) उसको ही (त्वम्) तू (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान (यत्) जो (इदम्) इस देशकालादिपरिच्छिन्न [पदार्थम्] पदार्थको [लोकाः] लोक (उपासते) उपासना करते हैं (न) नहीं है (इदम्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म ॥ ७ ॥

भावार्थ-जिस आत्मदेवको पुरुष श्रोत्र इन्द्रिय से सुन नहीं सकते और जिस साक्षी करके यह श्रोत्र प्रकाशित है अर्थात् सुननेको समर्थ होता है या जो श्रोत्रको जानता है, उसको ही तुम ब्रह्म जानो और लोक जिस परिच्छिन्न वस्तुको आत्म-स्वरूप मान कर व्यवहार करते हैं वह विषय ब्रह्म नहीं है ॥ ७ ॥

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जिसको (प्राणेन) नासापुटके भीतर स्थित घ्राण करके (न) नहीं (प्राणिति) विषय करता है (येन) जिस करके (प्राणः) घ्राण (प्रणीयते) अपने विषय की ओर को जाता है (तत् एव) उसको ही (त्वम्) तू (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान (यत्) जो (इदम्) इस देशकालादि परिच्छिन्न (पदार्थम्) पदार्थको [लोकाः] लोक (उपासते) उपासना करते हैं (न) नहीं है (इदम्) यह [ब्रह्म] ब्रह्म ॥ ८ ॥

भावार्थ-नासापुटके भीतर स्थिर प्राणकी क्रिया वृत्ति तथा अंतःकरणकी ज्ञानवृत्ति सहित हुआ घ्राण इन्द्रिय जिस आत्माको विषय नहीं करसकता है और जिस आत्माका प्रेरणा किया हुआ घ्राण इंद्रिय अपने व्यापारको करता है, उसको ही तुम ब्रह्म जानो और जिस जड़परिच्छिन्नको लोक आत्मस्वरूप मानकर व्यवहार करते हैं वह ब्रह्म नहीं है ॥८॥ इसप्रकार गुरु ने शिष्यको हेय उपादेयभावसे रहित ब्रह्मात्माका उपदेश किया, अब शिष्य, आत्माको मन वाणीका विषय तो नहीं जानता है? इस अभिप्रायसे शिष्यकी परीक्षा गुरु करताहै ॥ ८ ॥

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनम् त्वं वेत्थ

ब्रह्मणो रूपम् । यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ । नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदि) जो (सुवेद) भली प्रकार जानता हूं (इति) ऐसा (मन्यसे) जानता है [तदा] तब (त्वम्) तू (नूनम्) निश्चय (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (रूपम्) रूपको (दभ्रम् एव) थोड़ा सा (अपि) ही (वेत्थ) जानता है (त्वम्) तू (देवेषु) देवताओंमें (अस्य) इस ब्रह्मके (यत्) जिस रूपको [वेत्थ, तत्, अपि, नूनम्, अल्पम् एव वेत्थ] जानता है वह सो, निश्चय, थोड़ा ही, जानता है (अथ नु) तिससे (ब्रह्म) ब्रह्म (ते) तुझ करके (मीमांस्यम्) विचार करने योग्य है (एव) ही [एवम्, उक्तः, शिष्यः ब्रह्म विचार्य, तदनुभवम्, च, कृत्वा आचार्यसकाशम्, उपगम्य, उवाच-अहम्] इसप्रकार उपदेश दिया हुआ, शिष्य ब्रह्मको विचार कर, उसके अनुभवको भी, करके, आचार्यके समीपको, आकर, कहने लगा, मैं (मन्ये) मानता हूँ [इदानीम्, मया ब्रह्म] अब, मैंने, ब्रह्म (विदितम्) जान लिया (इति) ऐसा ॥ ६ ॥

भावार्थ -हे शिष्य ! यदि तू समझे कि—मैंने ब्रह्मको अपने आत्मामें प्रत्यक्ष करके उत्तम रूपसे जान लिया है तो तूने ब्रह्मके स्वरूपको निःसन्देह बहुत ही थोड़ासा जाना है और उपाधियुक्त अधिकार वाले आधिभौतिक देवताओंमें उसका स्वरूप

तुमने जितना जाना है, वह भी थोड़ासा ही जाना है, ब्रह्मके यथार्थ स्वरूपको तुमने नहीं जाना, अतः हे शिष्य! मेरी समझमें अभी तुमको ब्रह्मका विचार करना चाहिये, बिना विचार किये ब्रह्मका बोध होना दुर्घट है, ऐसा गुरुने परीक्षाके निमित्त शिष्यसे कहा-तब शिष्य एकान्त स्थानमें गया और गुरुके दिये हुये उपदेशके अनुसार आत्माके यथार्थ-स्वरूपको बुद्धिमें आरूढ़ करने लगा तथा अनुभव होजाने पर फिर गुरुके समीप आकर कहने लगा कि हे गुरो! अब मुझको प्रतीत होता है कि-मैंने ब्रह्म को जान लिया ॥ ९ ॥

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥१०॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्मको (सुवेद) भली प्रकार जानता हूँ (इति) ऐसा (अहम्) मैं (न) नहीं (मन्ये) मानता हूँ (न) नहीं (वेद) जानता हूँ (इति) ऐसा (वेद च) जानता भी हूं (इति) ऐसा (नो) नहीं [मन्ये] मानताहूँ (नः) हममें (न) नहीं (वेद) जानता हूँ" (वेद च) जानता भी हूं (इति ऐसा (नो) नहीं है. (तत्) इस वचनको (यः) जो (वेद) जानता है [सः] वह (तत्) उस ब्रह्मको (वेद) जानता है ॥ १० ॥

भावार्थ-ऊपर कहे हुए शिष्यके कथनको सुनकर गुरुने कहा कि-हे शिष्य! तू ब्रह्मके स्वरूपको कैसे

जानता है? तब शिष्यने कहा कि-मैं यह नहीं मानता हूं कि-ब्रह्मको सुन्दर रीतिसे जानता हूं और मैं ब्रह्मको जानता ही नहीं ऐसा नहीं है तथा जानता हूं ऐसा भी नहीं है, इस मेरे कहनेके तात्पर्य को, हम ब्रह्मचारियोंमें से जिन्होंने जानलिया है वह ही ब्रह्म को जानते हैं, सार यह है कि-'यदि मैं ब्रह्मको जानता हूं, ऐसा कहूं तब तो जाननेवाला चेतन होता है और जो जानाजाता है वह जड़ होता है, इसमें ब्रह्मको जड़ बनाया, सो श्रुति स्मृतिके विरुद्ध है और यदि कहूँ कि-मैं नहीं जानता हूं, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि-जब यह माना है कि-मैं जानता हूं, तब उसके विपरीत कहना नहीं बनता, इस सबका सार यह है कि-मैं घट पट आदिकी समान ब्रह्मको इन्द्रियों के द्वारा नहीं जानता हूं, और यह भी नहीं है कि-सर्वथा जानता ही नहीं हूँ, किन्तु विचारसे उत्पन्न हुए शुद्धिवाले चिदाकार वासनारहित अन्तःकरण की वृत्तिके द्वारा जगत्का उन्मूल न होनेपर वह स्वयं-प्रकाश ही शेष रहता है इसप्रकार जानता भी हूँ इस मेरे परस्परविरुद्ध—जानता भी हूं और नहीं भी जानता हूं' वाक्यको जो समझा है वह ही ब्रह्मको जानता है ॥ १० ॥

अब गुरु शिष्यके सन्तोषके लिये सार-सिद्धांत कहते हैं-

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।

अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ११

अन्वय और पदार्थ-[ब्रह्म] ब्रह्म (यस्य) जिस के (अमतम्) अविदित है (तस्य) तिसके (मतम्) विदित है (यस्य) जिसके (मतम्) विदित है (सः) वह (न) नहीं (वेद) जानता है (विजानताम्) सम्यक् जानने वालोंका (अविज्ञातम्) अविदित है (अविजानताम्) सम्यक् न जानने वालोंका (विज्ञातम्) विदित है ॥ ११ ॥

भावार्थ-जिसने यह निश्चय कर लिया है कि-मैं ब्रह्मको नहीं जानता हूँ अर्थात् जिसने ब्रह्मको ज्ञेय कहिये मन वाणी आदिके द्वारा ज्ञानका विषय नहीं समझा है उसने ही स्वयंप्रकाशरूपसे ब्रह्मको जाना है और जो यह समझता है कि-मैंने ब्रह्मको जान लिया अर्थात् जिसने ज्ञेय कहिये मन वाणीके ज्ञान का विषय मान लिया है वह ब्रह्मके यथार्थस्वरूपको नहीं जानता है क्योंकि—ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानका विषय-ज्ञेय नहीं है, इसी कारण श्रुति ही तत्त्व बताती है कि—ब्रह्म मन वाणीका अविषय स्व-प्रकाश है, ऐसा जानने वाले विज्ञानियोंने ही ब्रह्म को जाना है और अज्ञानी पुरुष तो देह इन्द्रियादिमें आत्मबुद्धि होनेके कारण विषयरूपसे जानते हुए भी यथार्थरूपसे ब्रह्मको नहीं जानते हैं ॥ ११ ॥

अब ब्रह्मका कैसे और कहां निश्चय होता है और उससे क्या होता है सो कहते हैं कि-

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् १२

अन्वय और पदार्थ-[यदा, ब्रह्म] जब ब्रह्म (प्रतिबोधविदितम्) सर्वप्रत्ययदर्शीरूपसे जाना, या प्रत्येक व्यक्तिके स्वाभाविक बोधसे विदित हुआ या ईश्वरके अनुग्रहसे स्वप्नके प्रतिबोधकी समान विदित हुआ, या प्रतिबोध जो गुरुका उपदेश तिस करके विदित हुआ [तदा तत्] तब वह (मतम्) सम्यक् प्रकारसे निश्चय किया गया [तस्मात्] तिस से (अमृतत्वम्) अमरभावको (विन्दते) प्राप्त होता है (आत्मना) आत्मस्वरूप करके (वीर्यम्) ब्रह्म विद्याके बलको (विन्दते) पाता है (विद्यया) ब्रह्मविद्या करके (अमृतम्) मोक्षको (विन्दते) पाता है ॥ १२ ॥

भावार्थ-अन्तःकरण की जितनी वृत्तियें उत्पन्न होती हैं वह सब ही आत्माके प्रकाशसे प्रकाशित होकर उत्पन्न होती हैं, अतः सब वृत्तियों का विषयरूपसे प्रकाश करने वाला आत्मा उन वृत्तियोंसे भिन्न प्रकाशस्वरूप है, उस आत्माके ज्ञानसे पुरुष अमरपना पाता है अर्थात् जरा मरणादि रहित आनन्दरूप ब्रह्मको प्राप्त होता है और आत्मज्ञानसे ब्रह्मविद्यारूप बल पाता है, जिसके प्रभावसे फिर जन्म मरणके चक्रमें नहीं पड़ता है। धन, सहाय, मन्त्र, औषध, तप, योग आदि के

आत्मज्ञानमें मृत्युको नहीं तरसकता, ब्रह्मविद्यारूप आत्मज्ञान को जब अपने यत्न से ही पाजाता है तब फिर जन्म मरणको नहीं प्राप्त होता है किन्तु आत्म-विद्याकर सबसे मोक्षको प्राप्त करलेता है ॥ १२ ॥

इस मनुष्यशरीरको पाकर ब्रह्मात्मज्ञान अवश्य ही प्राप्त करना चाहिये यह सूचित करते हुए कहते हैं कि–

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः । भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-[मनुष्यः] मनुष्य (इह) इस लोकमें [ब्रह्म] ब्रह्मको (चेत्) जो (अवेदीत्) जानगया (अथ) तब (सत्यम्) जन्मका साफल्य (अस्ति) है (चेत्) यदि (न) नहीं (अवेदीत्) जाना [तदा] तब (महती) बड़ी भारी (विनष्टिः) विशेष हानि है (धीराः) बुद्धिमान् (भूतेषु भूतेषु) सकल भूतोंमें (विचिन्त्य) साक्षात्कार करके (अस्मात्) इस (लोकात्) लोकसे (प्रेत्य) उपराम पाकर (अमृताः) अमर (भवन्ति) होते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ-यदि मनुष्यने इस लोकमें मनुष्यशरीर को पाकर अपने शुद्ध स्वरूप आनन्दमय ब्रह्मको जान लिया तब ही उसका जन्म सुफल है और यदि

इस लोकमें मनुष्य-शरीरको पाकर भी नहीं जान-सका और परमेश्वरकी मायासे मोहित हुआ केवल तुच्छ विषयोंमें ही आसक्त रहा एवं आत्मस्वरूपको नहीं जाना तब इसकी बड़ी हानि है, कि—जिसके कारण यह वारम्वार जन्म मरण आदिके दुःखको प्राप्त होता है तथा काम क्रोधादि चोरोंके अधीन हो वह अज्ञानी पुरुष अपने कर्मोंके अनुसार अनेकों ऊँची नीची योनियोंमें जाता है, मुक्त नहीं होता, इसप्रकार वह अज्ञानी नष्ट हुआ सा ही है, इससे बढ़कर और क्या हानि होगी ? इस कारण विवेकी पुरुष सकल प्राणियोंमें ब्रह्मका विचार करके अर्थात् जैसे एक ही चंद्रमा जलके भरे बहुतसे पात्रोंमें भिन्न २ रूपवाला प्रतीत होता है, तैसे एक ही आत्मा उपाधिभेदसे स्थावर जंगम जीवोंमें अनेक रूप प्रती होता है, वास्तवमें एक ही है, इसप्रकारके आत्मज्ञानसे ही अधिकारी पुरुष अहन्ता ममताको त्याग कर इस शरीरको छोड़ने पर अमरपदको पाते हैं अर्थात् मुक्त होजाते हैं ॥ १३ ॥

अब चेतन ब्रह्म ही सबकी शक्ति है, इस उत्कर्ष की सूचनाके द्वारा ब्रह्मको जाननेकी इच्छा उत्पन्न होनेके लिये, अथवा जिसका संसारके सकल धर्मों से रहित रूपसे उपदेश किया है, उस ब्रह्ममें अज्ञानी पुरुषोंको शून्यताकी शङ्का न हो इस लिये, अथवा अतिबुद्धिमान् अग्नि इन्द्रादि देवताओंने भी

स्वप्रकाश ब्रह्मको उमादेवीके सम्वादसे ही जाना, इसकारण बुद्धिमानोंको उस ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिये पूरा२ यत्न करना चाहिये, इस बातको सूचित करनेके लिये यक्षकी कथा कहते हैं कि-

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ह-किल) प्रकट है कि (ब्रह्म) ब्रह्म (देवेभ्यः) देवताओंके निमित्त (विजिग्ये) जयको प्राप्त हुआ (तस्य ह) तिस ही (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (विजये) विजयमें (देवाः) देवता (अमहीयन्त) गौरवको प्राप्त हुए (ते) वे (ऐक्षन्त) देखते हुए (अयम्) यह (विजयः) विजय (अस्माकम्, एव) हमारा ही है (अयम्) यह (महिमा) प्रभाव (अस्माकम् एव) हमारा ही है (इति) ऐसा ॥ १४ ॥

भावार्थ-एक समय स्वर्गमें रहनेवाले देवताओंने ब्रह्मविद्याके प्रभावसे संग्राममें सब असुरोंको जीत लिया, जैसे अग्निकी समीपतासे पतंगोंका नाश होजाता है, तैसे ही देवताओंसे सब असुरोंका वध होगया था, परन्तु जैसे अग्निसे तपा हुआ लोहेका गोला तृण वस्त्र आदिको जलाता है, तैसे ही ब्रह्मरूप अग्निसे देदीप्यमान हुए देवताओंसे असुरोंका नाश

हुआ, जैसे अग्निके सम्बन्धके विना लोहेका गोला किसी पदार्थको नहीं जलासकता, तैसे ही ब्रह्मरूप अग्निकी शक्तिके विना देवतारूपी लोहा असुररूपी तृणको नहीं जलासकता था, इस कारण ब्रह्मतेजसे ही उन देवताओंको असुरोंके नाश करनेकी शक्ति प्राप्त हुई थी। इस पर यदि कोई शंका करै कि— यदि ब्रह्मके बलसे देवताओंकी विजय और असुरों का नाश हुआ, तब तो ब्रह्मरूप बल हम सबोंमें भी है, क्योंकि—ब्रह्म सबका आत्मा है, इसकारण हमारे भी शत्रुओंका नाश होकर सर्वत्र हमारी ही विजय होजानी चाहिये ? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि ब्रह्म सर्वत्र सम है तथापि जैसे सूर्य सर्वत्र व्यापक होने पर भी सूर्यकान्त मणिमें स्थित होकर ही वस्त्र आदिको जलाता है अन्यत्र दाहरूप कार्य नहीं कर ता है, तैसे ही यह ब्रह्मात्मा सर्वत्र व्यापक होनेपर पर भी सत्त्वगुणी देवताओंमें विशेष कर पाया जाता है, इसकारण देवता बलीहुए और असुरोंका नाश हुआ, परन्तु जब वह ब्रह्मज्ञानी देवता भी भोगोंमें आसक्त होकर इस बातको भूलगए कि—हमारी विजय ब्रह्मशक्तिसे ही हुई है और उलटा यह मानने लगे कि—हमने अपने बलसे ही असुरोंका नाश किया है, जैसे कोई मनुष्य प्राणान्त दुःख पाकर किसी कृपालु देवता या ऋषि मुनिकी कृपासे उस दुःखसे छूटकर फिर विषयोंमें आसक्त होने पर उन

देवता आदिके उपकारको भूल जाय तैसे ही ब्रह्म-बलके प्रभावसे विजयको प्राप्त हुए सब देवता भोगों में आसक्त होकर ब्रह्मको भूलगए, और रजोगुणके आवेशमें आकर ऐसा अभिमान करने लगे कि—जिससे पुरुषका नाश होजाता है। देवता कहने लगे कि-हमारा ही विजय हुआ है, हमारा ही यश है, हम ही महाभाग हैं, हम युद्धविद्यामें कुशल हैं, हमारे सामने राक्षस क्या हैं? हमारी समान ब्रह्मांड में कोई नहीं है, ऐसा गर्व देवताओंको हुआ कि-जिससे पापकी उत्पत्ति और पराक्रम तथा यशका नाश होजाता है ॥ १४ ॥

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव ।
तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥१५॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) वह ब्रह्म (ह) ही (एषाम्) इनकी [मिथ्येक्षणम्] मिथ्या दृष्टिको (विजज्ञौ) जानगया (तेभ्यः ह) तिन देवताओंके निमित्त ही (प्रादुर्बभूव ह) अपने स्वरूपको प्रकाशित करता हुआ (तत्) उस ब्रह्मको (किम्) क्या है (इदम्) यह (यक्षम्) यक्ष (इति) ऐसा [ते] वे (न) नहीं (व्यजानन्त) जानते हुए ॥ १५ ॥

भावार्थ-ऐसे देवताओंके गर्वको देखकर, उस ब्रह्मने पिताकी समान उन देवताओंका हित करने की इच्छासे यह विचारा कि-यह देवता मेरी कृपा से ही असुरोंको जीत कर ऐसी महिमा को प्राप्त

हुए हैं, अब मुझ उपकार करनेवाले ब्रह्मके स्वरूप को भूलकर कृतघ्न पुरुषकी समान अपनी प्रशंसा करने लगे हैं, यह तो अत्यन्त मूढ़ बालकके समान हैं और कृतघ्नता एक बड़ा भारी पाप है, जो पुरुष किसीके अनुग्रहसे उन्नति पाकर मोहवश यदि उसके उपकारको नहीं मानता है तो वह कृतघ्न पुरुष अयुत (दश हजार) वर्ष तक बड़ाभारी दुःख पाता है और करोड़ों वर्ष तक विष्ठाके कीडेकी योनि पाता है, इस कारण ऐसे कृतघ्नताके दोषको दूर करने लिये, इस दोषको उत्पन्न करनेवाला इन देवताओंका गर्व दूर करूँ, ऐसा विचार कर एक अद्भुत यक्ष (पहिले कभी न देखे न सुने अलौकिक) स्वरूपको अपनी मायाके बलसे परमात्माने धारण किया, जिस स्वरूपमें अनन्त मस्तक, अनंत नेत्र और सब प्राणियोंके मुख थे, जिसमें सब भूत भौतिक पदार्थ प्रतीत होते थे, जिसमें सब प्रकारके शस्त्र, वस्त्र, माला तथा स्त्री पुरुष आदिके चिन्ह थे, उन आश्चर्यरूप यक्षभगवान् को देखकर वह सब देवता भौचक्केसे रह गए और आपसमें कहने लगे कि-यह यक्ष कौन है ? कौन है ? भगवान्ने भी ऐसा रूप दिखाया कि-जिसको देखते ही देवताओंको बड़ा भारी अचम्भा और भय हुआ, आंखें फैलसी गई रोमांच खड़ा होगया तथा बार २ कहने लगे कि—यह कौन है ? यह कौन है ? सब अपने २ प्रभाव को

भूल गए, उनमेंसे उस यक्षके समीप जानेको किसी का भी साहस नहीं हुआ ॥ १५ ॥

तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि ।
किमिदं यक्षमिति, तथेति ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ते) वे (अग्निम्) अग्नि को (अब्रुवन्) कहते हुए (जातवेदः) हे अग्ने ! (एतत्) इसको (विजानीहि) जानो (किम्) क्या है (इदम्, यक्षम्) यह यक्ष (इति) ऐसा [सः] वह (तथा) तैसा ही होगा (इति) ऐसा [उक्तवान्] कहता हुआ ॥ १६ ॥

भावार्थ-तब वह सब देवता मिलकर अग्निसे कहने लगे कि-हे अग्ने ! तुम इस यक्षके समीप जाकर निश्चय करो कि-यह कौन है, हमारे अनुकूल है या प्रतिकूल ? अग्निने कहा-बहुत अच्छा जाता हूं ॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति अग्निर्वा अह-
मस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ-[अग्निः] अग्नि (तत्) उस यक्षको (अभ्यद्रवत्) समीप में पहुंचा (तम्) उस अग्निको (तत्) वह यक्ष (अभ्यवदत्) कहता हुआ [त्वम्] तू (कः) कौन (असि) है (इति) ऐसा (अग्निः) अग्नि (अब्रवीत्) बोला (अहम्) मैं (अग्निः) अग्नि हूँ (वै) निश्चय

करके (जातवेदाः) जातवेदा हूं (वै) निश्चय करके ॥ १७ ॥

भावार्थ-वह अग्निदेवता इन्द्रादि देवताओंकी आज्ञाको मान कर यक्षके समीप गया, उससे यक्ष भगवान्ने बूझा, तू कौन है ?, इस प्रश्नको सुनकर अग्निदेवता अभिमानके साथ कहने लगा कि-मैं धनका देनेवाला अग्नि हूं, परमबुद्धिमान जातवेदा हूं ॥ १७ ॥

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदꣳ सर्वं
दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मिन्) तिस (त्वयि) तुझ में (किम्) क्या (वीर्यम्) सामर्थ्य है (इति) ऐसा [अग्निः उवाच] अग्निने कहा (पृथिव्याम्) पृथिवीपर (इदम्) यह (यत्) जो [अस्ति] है (सर्वम्) सबको (अपि) ही (दहेयम्) जलासकताहूं॥

भावार्थ-यह सुनकर यक्षरूप ब्रह्मने कहा कि-ऐसे प्रसिद्ध गुण और नामवाले तुझमें क्या शक्ति है ? अग्निने कहा कि-इस पृथ्वीपर जो कुछ मूर्ति-मान् दीख रहा है इस सबको ही मैं क्षणभरमें भस्म कर सकता हूं ॥ १८ ॥

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय
सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव
निववृते न तदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति।

अन्वय और पदार्थ-(एतत्) इसको (दह) भस्म कर (इति) ऐसा [उक्त्वा] कहकर (तस्मै) तिस अग्निके अर्थ (तृणम्) एक तृणको (निदधौ) रखताहुआ [अग्निः] अग्नि (तत) उस तृणको (उपप्रेयाय] समीपमें शीघ्रतासे गया (सर्वजवेन) सकल उत्साहसे युक्त अपने बल करके (तत्) उसको (दग्धुम्) जलानेको (न) नहीं (शशाक) समर्थ हुआ (सः) वह (ततः) तिसके समीपसे (निववृते) लौटआया (एव) ही [आह] कहने लगा [च] भी (यत्) जो है (एतत्] यह (यक्षम्) यक्ष (इति) यह (विज्ञातुम्) जाननेको (न) नहीं (अशकम्) समर्थहुआ ॥ १९ ॥

भावार्थ-तब उस यक्षने मन्द२ मुसकुराते हुए उस अग्निके सामने एक सूखाहुआ तिनका रखदिया और कहा कि इस तिनुकेको जलाओ तब उस अग्निने बड़े वेगके साथ सब प्रकारका यत्न करके उस तिनकेको जलाना चाहा,परन्तु उसको जला न सका,तब वह लज्जित और भयभीत होकर अपनी सभामें आ उन सब देवताओंसे बोला कि- यह यक्ष कौन है सो मैं तो जान नहीं सका, तुम्ही निश्चय करो ॥ १९ ॥

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर

[देवाः] देवता (वायुम्) वायुको (अब्रुवन्) कहने लगे (वायो) हे वायु [त्वम्] तुम (एतत्) इस हमारे सामनेके यक्षको (विजानीहि) विशेष रूपसे जानो (किम्) क्या है (एतत्) यह (यक्षम्) यक्ष (इति) ऐसा [वायुः उवाच] वायुने कहा (तथा) ऐसा ही होगा (इति) ऐसा ॥ २० ॥

भावार्थ—अग्निके ऐसे वचनको सुनकर देवताओंने वायुसे कहा कि—हे वायो ! तुम जाकर विशेषरूपसे निश्चय करो कि—यह कौन है और यहां इसका क्या प्रयोजन है, वायुने कहा अच्छा ऐसा ही करता हूँ ॥ २० ॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा ।
अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति॥

अन्वय और पदार्थ-(वायुः) वायु (तत्) उसयक्षको (अभ्यद्रवत्) समीप पहुंचा (तम्) उस वायुको (अभ्यवदत्) कहता हुआ (कः) कौन (असि) है (इति) ऐसा (वायुः) वायु (अब्रवीत्) बोला (अहम्) मैं (वै) निश्चय (वायुः) वायु (अस्मि) हूं (अहम्) मैं (वै) निश्चय (मातरिश्वा) आकाशचारी (अस्मि) हूँ ॥ २१ ॥

भावार्थ—वायु उस यक्षके समीप गया, तब उससे भी यक्षने बूझा कि-तू कौन है ? उसने कहा कि मैं वायु हूं, कि जिसके जाने आनेकी गति आकाशमें है।

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदꣳ सर्वं,

मादर्दीय यदिदं पृथिव्यामिति ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मिन्) तिस (त्वयि) तुझमें (किम्) क्या (वीर्यम्) पराक्रम है (इति) ऐसा [वायुः उवाच] वायुने कहा (पृथिव्याम्) पृथ्वी पर (इदम्) यह (यत्) जो [अस्ति] है (सर्वम्) सबको (अपि)ही (आददीय)ग्रहण करसकता हूं २२

भावार्थ-यह सुनकर यक्षने कहा कि-तुझमें क्या शक्ति है ? वायुने उत्तर दिया कि-मुझमें यह शक्ति है कि—सकल विश्वको अपनी कोखमें डालकर आकाशमें चाहे तहां ऐसे चलसकता हूं, जैसे कोई बालक जरासे तिनुकेको मुखमें डालकर इधर उधर घूमता फिरता है ॥ २२ ॥

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृ ते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ २३॥

अन्वय और पदार्थ-(एतत्) इसको (आदत्स्व) ग्रहण कर (इति) ऐसा [उक्त्वा] कहकर (तस्मै) तिस वायुके अर्थ (तृणम्) एक तृणको (निदधौ) रखता हुआ [वायुः) वायु (तत्) उसको (उप-प्रेयाय) समीपमें शीघ्रतासे गया (सर्वजवेन) सकल वेगसे (तत्) उसको (आदातुम्) ग्रहण करने को (न) नहीं (शशाक) समर्थहुआ) सः) वह (ततः) तिसके समीपसे (निववृते) लौट गया (एव) ही [आह च] कहने भी लगा (यत्)

जो है (एतत्) यह (यक्षम्) यक्ष (इति) यह (विज्ञातुम्) जाननेको (न) नहीं (अशकम्) समर्थ हुआ ॥ २३ ॥

भावार्थ—तब यक्षरूप ब्रह्मने हँसतेहुए उसवायुके सामने एक छुलकासा तिनुका रखदिया और कहा कि तुम इसको उठाओ, तब वायुने बड़े वेगकेसाथ अपना सब बल लगाकर उस तिनुकेको उठाना चाहा परंतु किसीप्रकार भी उठा न सका, तब वह लज्जित और भयभीत होकर अपनी सभामेंको लौट आया और उन सब देवताओंसे कहने लगा कि—यह यक्ष कौन है सो मैं तो जान नहीं सका, तुम सब ही इसका निश्चय करो ॥ २३ ॥

अथेन्द्रमब्रुवन् मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति । तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे २४

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (देवाः) देवता (इन्द्रम्) इन्द्रको (अब्रुवन्) कहने लगे (मघवन्) हे इन्द्र ! (एतत्) इसको (विजानीहि) विशेष रूपसे जानो (किम्)क्या है (एतत्) यह (यक्षम्) अद्भुत पदार्थ (इति) ऐसा [इन्द्रः उवाच] इन्द्रबोला (तथा) बहुत अच्छा (इति) ऐसा (तत्) उसको (अभ्यद्रवत्) समीप गया (तस्मात्) तिस इन्द्रसे [ब्रह्म] ब्रह्म (तिरोदधे) अन्तर्धान होगया ॥ २४ ॥

भावार्थ-वायुसे भी निराशाका उत्तर पाकर

उस समाके देवताओंने इंद्रसे कहा कि--हे मघवन् ! आपका बड़ा ऐश्वर्य और प्रभाव है तुम इस यक्षका पूरा २ वृतांत निश्चय करो, देवताओंके ऐसा कहने पर इंद्रने कहा कि-बहुत अच्छा और उसी समय बड़े अभिमानके साथ यक्षके पास जाने लगा, परंतु इस इंद्रको समीप आता देखते ही, यक्षरूप भगवान् उसके बढ़े हुए अभिमानको दूर करनेके लिये तहाँसे अन्तर्धान होगए ॥ २४ ॥

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम
बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां हो
वाच किमेतद्यक्षमिति ॥ २५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह इन्द्र (तस्मिन्) तिस (एव) ही (आकाशे) अन्तरिक्षमें (बहुशोभमानाम्) परमशोभायुक्त (हैमवतीम्) सुवर्ण के भूषणों से शोभित वा हिमालयके शिखर पर प्रकट हुई वा हिमालयकुमारी (उमाम्) पार्वती की समान (स्त्रियम्) स्त्रीरूपा ब्रह्मविद्याको (आजगाम) समीपमें पहुंचा (ताम्) उसको (ह) स्फुट (उवाच) कहने लगा (किम्) क्या है (एतत्) यह (यक्षम्) यक्ष (इति) ऐसा ॥ २५ ॥

भावार्थ-उस समय देवराज इन्द्र भौंचक्कासा देखता हुआ तहां ही खड़ा रहा और यक्षको देखने की उत्कट इच्छावाले गर्वहीन हुए उस इन्द्रने जहां यक्ष अन्तर्धान हुआ था उसी अन्तरिक्ष स्थानमें

हिमालयके शिखर पर प्रकट हुई, हिमालयकुमारी पार्वतीकी समान परम सुन्दरी सुवर्णके आभूषणोंको धारण करनेवाली परमशोभायुक्त स्त्रीरूपधारिणी ब्रह्मविद्याको देखा और प्रकट हुई देखते ही उसके समीप जाकर बड़ी श्रद्धाके साथ कहने लगा कि-वह अन्तर्धान होनेवाला पूजनीयस्वरूप कौन था? २५

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति २६

अन्वय और पदार्थ-[सा] वह उमा (ह) स्फुट (उवाच) बोली [इदम्] यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (वै) निश्चय (विजये) विजयमें [यूयम्] तुम (एतत्) ऐसे (महीयध्वम्) महिमाको प्राप्तहुए हो (ततः) तिस वाक्यसे (ह) स्पष्ट (एषः) यह इन्द्र [इदम्] यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (विदाञ्चकार) जानगया ॥ २६ ॥

भावार्थ-इन्द्रके इस प्रश्नको सुनकर स्त्रीरूपिणी उमा नामवाली ब्रह्मविद्याने कहा कि-हे इन्द्र! वह यक्ष तो साक्षात् ब्रह्म था, तुम्हारे अभिमानको दूर करने के निमित्त वह यक्षका रूप धारण किये था, इस ब्रह्म के दिये हुए विजयसे ही तुमने ऐसी महिमा पाई है, तुम्हारा यश, बल, ऐश्वर्य सब उसकी ही सत्तारूप कृपासे है, सब शक्ति ब्रह्मकी ही है, तुम्हारा अहंकार करना मिथ्या है, ऐसे उस उमा नामक

ब्रह्मविद्याके वाक्यसे ही इन्द्रने जाना कि-यह ब्रह्म था और हमारे सब सुख इसकी ही कृपासे हैं, इस जगत् भरका उपादान और निमित्त कारण यही है अर्थात् यही इस विश्वको अपने स्वरूपमें से आप ही रचता है, इसमें और किसीकी सत्ता नहीं है, उमाके कथनसे ऐसा ज्ञान होना ही चाहिये था, क्योंकि-ब्रह्मविद्याके द्वारा ही मायाका आवरण (परदा) दूर होकर ब्रह्मका साक्षात्कार होता है ॥

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) जिस कारण से (अग्निः) अग्नि (वायुः) वायु (इन्द्रः) इन्द्र (ते) वे (हि) निश्चय (एनत्) इस ब्रह्मको (नेदिष्ठम्) समीपमें (पस्पृशुः) स्पर्श करतेहुए (ते) वह (हि) निश्चय (एनत्) इस ब्रह्मको (प्रथमः) पहिले (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (विदाञ्चक्रुः) जानते हुए (तस्मात्) तिस कारणसे (वै) निश्चय (एते) ये (देवाः) देवता (अन्यान्) और (देवान्) देवताओंको (अतितराम्) अत्यन्त श्रेष्ठ हैं (इव) ही ॥

भावार्थ—क्योंकि-अग्नि, वायु और इन्द्र देवताओं ने ब्रह्मकी समीपता पाई थी (समीपसे दर्शन किया था) और इन्होंने ही सबसे पहिले, यह ब्रह्म है,

ऐसा जाना था इसीकारण यह तीनों देवता निःसन्देह और देवताओंकी अपेक्षा विशेष श्रेष्ठ हैं ॥२७॥

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) जिसकारण (सः) वह इन्द्र (एनत्) इस (नेदिष्ठम्) समीपस्थ ब्रह्म को (पस्पर्श) स्पर्श करता हुआ (हि) जिसकारण (सः) वह (एनत्) इसको (प्रथमः) पहिले (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (विदाञ्चकार) जानता हुआ (तस्मात्) तिसकारण (इन्द्रः) इन्द्र (वै) निश्चय (अन्यान्) और (देवान्) देवताओंको (अतितराम्) अत्यन्त श्रेष्ठ है (इव-एव) ही ॥ २८ ॥

भावार्थ-इन्द्र देवता इन तीनों देवताओंसे भी अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि—वह ब्रह्म इन्द्रका समीपवर्ती हुआ था और इन्द्रने ही सबसे पहिले उमादेवीके कहनेसे ब्रह्मको जाना था ॥२८॥

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा३ इतीति न्यमीमिषदा३ इत्यधिदैवतम् ॥ २९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्य) उस ब्रह्मका (यत्) जो (एषः) यह (आदेशः) प्रकाश है (एतत्) यह (विद्युतः) बिजलीके (व्यद्युतत्-आ, विद्योतनम् इव) चमकनेकी समान (इति) ऐसा (इति-एतत्) यह (अधिदैवतम्) देवताओंके समीप ब्रह्मका

प्रकाश (न्यमीमिषत् आ, निमेष-इव) पलक मारने के समान है ॥ २९ ॥

भावार्थ-भगवान्‌के हिरण्यगर्भ समष्टि-शरीरमें जो उनका बिजलीके समान प्रकाश है, जो कि-चेतन प्रकाश अपनी समीपतासे सब प्राणियोंका इन्द्रियों का तथा मनका प्रेरक है, यह ही ब्रह्मका वास्तविक अधिदैवरूप है, देवताओंके समीपमें ब्रह्मका यह प्रकाश नेत्रके पलक मारनेकी समान हुआ, यह ब्रह्म का अधिदैवरूप है ॥ २९ ॥

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं सङ्कल्पः ॥ ३० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (अध्यात्मम्) आत्मविषयक उपदेश [उच्यते] कहा जाता है (यत्) जो (मनः) मन (एतत्) इस ब्रह्मको (गच्छति इव) विषय सा करता है (अनेन) इस मन करके (एतत्) इस ब्रह्मको (अभीक्ष्णम्) बार२ (उपस्मरति) समीपवर्ती होकर स्मरण करता है (सङ्कल्पः) सङ्कल्प है ॥ ३० ॥

भावार्थ-तदनन्तर आत्मविषयक उपदेश यह है कि-साधकका मन अपनी वृत्तिसे इस ब्रह्मको ग्रहण सा करता है अर्थात् जानता है और इस मनके द्वारा साधक अपने हृदयमें बार २ ब्रह्मविषयक संकल्पको करता है, इसप्रकार मन ब्रह्मका ज्ञापक है, यही मन सम्बन्धी अध्यात्म उपदेश है ॥ ३० ॥

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥

अन्वय और पदार्थ–(तत्) वह (ह) ही (तद्वनम्) सबका भजनीय (नाम) प्रसिद्ध है (तद्वनम्) सबका भजनीय है (इति) इस भावनासे (उपासितव्यम्) उपासना करने योग्य है (सः) वह (यः) जो (एतत्) इस ब्रह्मको (एवम्) इसप्रकार (वेद) जानता है (एनम् ह) इसको ही (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (अभिसंवाञ्छन्ति) सब प्रकारसे यथोचित सत्कार करते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थ–वह सर्वसाक्षी ब्रह्म उपाधिसे भिन्न भी सकल आत्माओंका अद्वैतभाव कहिये स्वरूप है अतएव अधिकारी पुरुषों करके भली प्रकारसे भजने योग्य है इसकारण ही अन्वर्थक 'तद्वन' नामसे प्रसिद्ध है, जो पुरुष ऐसे नाम और अर्थका ध्यान करताहुआ उस ब्रह्मको जानता है (उपासना करता है) सकल प्राणी उस उपासककी आराधना करनेकी इच्छा करते हैं अर्थात् अपने आत्मा की समान उसका सत्कार करते हैं ॥ ३१ ॥

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥ ३२ ॥

अन्वय और पदार्थ–[शिष्य त्वया, उक्तं] हे शिष्य ! तूने कहा था (भो) हे भगवन् ! (उपनि-

-पदम्) उपदिषको (ब्रूहि) कहो (इति) ऐसा (ते) तेरे अर्थ (उपनिषत्) उपनिषद् (उक्ता) कही (वाव) निश्चय (ते) तेरे अर्थ (ब्राह्मीम्) ब्रह्मविषयक (उपनिषदम्) उपनिषद्को (अब्रूम) कहा (इति) ऐसा ॥ ३२ ॥

भावार्थ— आचार्यने शिष्यसे कहा—तूने कहा था कि हे भगवन्! मुझसे उपनिषद् कहिये, इस कारण तुझसे उपनिषद् कहा, निश्चय तुझको ब्रह्मके स्वरूप को बताने वाले उपनिषद्का उपदेश दिया है ॥३२॥

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्यै) तिस ब्रह्मविद्याके अर्थ (तपः) तप (दमः) दम (कर्म) कर्म (इति) यह [साधनानि] साधन हैं (वेदाः) वेद (सर्वाङ्गानि) सब अङ्ग (प्रतिष्ठा) आश्रय हैं (सत्यम्) सत्य (आयतनम्) स्थान है ॥ ३३ ॥

भावार्थ—शरीर इंद्रिय और मनको सावधान रखना रूप तप चित्तकी स्थिरता रूप दम और निष्काम अग्निहोत्र आदि कर्म यह उस ब्रह्मविद्या को पानेके साधन हैं। चारों वेद और छहों अङ्ग तिस ब्रह्मविद्याके चरण हैं, क्योंकि—वेद कर्म और ज्ञानके प्रकाशक हैं और अंग उनके रक्षक हैं इस कारण इनके बलसे ब्रह्मविद्या प्रवृत्त होती है, और

सर्वदा सत्य बोलना ब्रह्मविद्याका स्थान है अर्थात् सत्य वक्तामें ब्रह्मविद्या अपना घर बनालेती है ॥

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते ।
स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (वै) निश्चय करके (एताम्) इस ब्रह्मविद्याको (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है [सः] वह (पाप्मानम्) पापको (अपहत्य) नष्ट करके (अनन्ते) अविनाशी (ज्येये) सबसे बड़े (स्वर्गे) सुखरूप (लोके) ब्रह्म में (प्रतितिष्ठति) अचल स्थिति पाता है ॥ ३४ ॥

भावार्थ-जो पुरुष निश्चितरूपसे इस उपनिषद् में वर्णन कीहुई ब्रह्मविद्याको इसप्रकार यथार्थरूपसे जानलेता है, वह अविद्या-काम-कर्मस्वरूप संसार के बीजरूप सब पापोंको भस्म करके, वा सकल अनर्थोंके कारण अज्ञानको दूर करके, सदा अविनाशी सबसे बड़े, सदासुखस्वरूप ब्रह्ममें स्थिति पाता है, फिर संसारको प्राप्त नहीं होता है ॥ ३४ ॥

इति अन्वय पदार्थ और भावार्थ सहित केनोपनिषद् समाप्त

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

ॐ

यजुर्वेदीय—

प्रथम अध्याय—प्रथम वल्ली

इस उपनिषद्रूप ब्रह्मविद्या को कठ नामक मुनीश्वरने ऋषियोंको पढ़ाकर संसारमें प्रचलित किया, इसकारण इसका नाम 'कठोपनिषद्' हुआ। जिसका यह पहिला मन्त्र है—

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसन्ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ह वै) निश्चय करके (उशन्) यज्ञके फलकी इच्छावाला (वाजश्रवसः) वाज कहिये अन्नका दान आदि करनेसे हुआ है श्रव कहिये यश जिसका तिस वाजश्रवा का पुत्र (सर्ववेदसम्) सब धनको (ददौ) देता हुआ (तस्य ह) तिसका ही (नचिकेता नाम) नचिकेता नामवाला (पुत्रः) पुत्र (आस) था ॥ १ ॥

भावार्थ-अन्नका दान करनेसे जिनकी बड़ी कीर्ति प्राप्तहुई थी ऐसे अरुण ऋषीका एक उद्दालक नाम का पुत्र था, उसने, जिसमें सर्वस्व धनकी दक्षिणा दी जाती है ऐसे विश्वजित नामक यज्ञ करनेका आरम्भ किया, उस यज्ञके फलकी इच्छासे उसने अपने घरमें की सकल गौएंरूप सर्वस्व धन दान कर दिया उस उद्दालक मुनिका नचिकेता नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र था ॥ १ ॥

तᳬ ह कुमारᳬ सन्तं दक्षिणासु नीय-मानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तम्) उसको (कुमारम्) कुमार (सन्तम्) होतेहुए (ह) ही (दक्षिणासु) दक्षिणारूप गौओंको (नीयमानासु) लियेजातेहुए (श्रद्धा) आस्तिकबुद्धि (आविवेश) प्रवेश करती हुई (सः) वह (अमन्यत) विचार करता हुआ ॥२॥

भावार्थ--उस समय नचिकेताकी बुद्धि उत्पन्न होने की शक्तिसे रहित, पाँच वर्षकी बाल अवस्था थी तथापि पिताके हितकी कामनासे उसके हृदय में आस्तिकभावसे भरी श्रद्धा उत्पन्न हुई और वह विचारने लगा कि—

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पीतोदकाः) जो जलको पीचुकीं (जग्धतृणाः) जो घास खाचुकीं (दुग्धदोहाः) जिनका दूध दुहा जा चुका (निरिन्द्रियाः) जिनकी इन्द्रियें निष्फल होगईं (ताः) उन गौओंको (यः) जो (ददत्) देता है (सः) वह (ये) जो (अनन्दा नाम) आनन्दरहित नामवाले (लोकाः) लोक हैं (तान्) उनको (गच्छति) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ–नचिकेताके मनमें यह विचार उठा कि दक्षिणामें गौएं देना तो बड़ा उत्तम है परन्तु मेरे पिताने तो ऐसी गौएं दी हैं कि–जो गौएं जो कुछ जल पीना था सो पीचुकीं अब जल पीनेको झुकने की भी इनमें शक्ति नहीं है, जो कुछ घास खानी थी खाचुकीं अब ग्रास चबानेको मुखमें दांत भी नहीं रहे जो कुछ दूध देना था देचुकीं और जिनकी इन्द्रियोंमें अब गर्भधारणकी भी शक्ति नहीं रही, जो ऐसी गौओंका दान करता है वह शास्त्रोंमें लिखेहुए सुखरहित लोकोंमें जाता है अर्थात् उद्दालक ऋषिके यहां बहुतसी गौएं थीं, और उनका अपने पुत्र नचिकेताके ऊपर भी बड़ा प्रेम था, इस कारण उन्होंने अपनी गौओंके दो भाग करे उनमेंसे सुन्दर २ दूध देतीहुई सन्तानवाली गौओंका एक भाग तो अपने पुत्रके निमित्त रखलिया और बिना दूधकी बूढी गौओंका दूसरा भाग तिस यज्ञमण्डपमें लाकर यज्ञ करानेवाले तथा यज्ञमण्डपमें आये हुए ब्राह्मणोंको

दक्षिणा में दिया, उस समय नचिकेता यह देखकर ऐसा विचार करनेलगा कि जो किसीको सुख देता है वह सुख पाता है और जो किसीको दुःख देता है वह दुःख पाता है इसकारण मेरे पिता ब्राह्मणोंको दुःख देनेवाली गौओंका दान देकर सुख कैसे पावेंगे ? इन्होंने सुन्दर २ गौएं मेरे निमित्त क्यों रक्खीं ब्राह्मणोंको क्यों नहीं दीं ! यह मेरी चिन्ता क्यों करते हैं ! मेरी रक्षा तो अन्तर्यामी परमात्मा करेगा, मैं इनका पुत्र हूं, सच्चा पुत्र वही है जो पिता की नरक आदि दुःखोंसे रक्षा करै, जो ऐसा नहीं करता वह पिताका मल है उसमें पुत्र शब्दका अर्थ नहीं घटता इसकारण मैं पिताको इस निषिद्ध दानसे निवृत्त करूँ, ऐसा विचारकर वह पितासे कहनेलगा

स होवाच पितरं तत कस्मै मान्दास्यसीति । द्वितीयं तृतीयं ँ होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ४

अन्वय और पदार्थ-(ह) निश्चय करके (सः) वह (पितरम्) पिताको (उवाच) कहता हुआ (तत) हे पिता जी (कस्मै) किसके अर्थ (माम्) मुझको (दास्यसि) दोगे (द्वितीयम्) दूसराकर (तृतीयम्) तिसराकर (ह) हठ करके (उवाच) कहता हुआ [तदा] तब (मृत्यवे) मृत्युके अर्थ (त्वा) तुझको(ददामि)देता हूं (इति) ऐसा [उद्दालकः] उद्दालक (उवाच ह) कहता हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थ-नचिकेताने पिताके समीप जाकर कहा कि-हे पिता जी ! जैसे गौएं आपका धन है तैसे मैं पुत्र भी आपका धन हूँ, मुझको किस ब्राह्मणके अर्थ दक्षिणामें दोगे ? यह नचिकेताने इस अभिप्रायसे कहा था कि ऐसा कहनेसे पिताजी उद्दालक मुझसे इसका तात्पर्य बूझेंगे तो मैं धर्मशास्त्रके अनुसार अपना विचार उनको सुनाऊँगा परन्तु पिताने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया तब नचिकेता ने फिर दूसरी बार कहा कि-हे पिताजी ! मुझे किस ऋत्विक् को दोगे ? इस पर भी पिता मौन रहे तब नचिकेता ने तीसरी बार फिर ऐसा कहा तब ऐसा ही बालक का स्वभाव ठीक नहीं, यह विचारकर उद्दालकको क्रोध आगया और यह उत्तर दिया कि-अरे ! तुझे निश्चयकरके तुझ मृत्युको देता हूँ ॥ ४ ॥

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ।
किं स्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ॥५॥

अन्वय और पदार्थ-(बहूनाम्) बहुतोंमें (प्रथमः) पहिले (एमि) प्राप्त होता हूँ (बहूनाम्) बहुतोंमें (मध्यमः) मध्यम (एमि) प्राप्त होता हूँ (यमस्य) यमका (किंस्वित्) क्या (कर्त्तव्यं) कार्य है (यत्) जो (मया) मुझ करके (अद्य) आज (करिष्यति) करेगा ॥ ५ ॥

भावार्थ-नचिकेताने एकान्तमें जाकर यह विचार किया कि-मैं सदा पिताजीके मनकी बात समझकर

उसके अनुसार कार्य करता हूँ, इसकारण मैं पिता जीके शिष्यों और पुत्रोंमें उत्तम हूँ तथा कभी २ पिताजीके आज्ञा करने पर कार्य करता हूँ इस कारण मध्यम भी होसकता हूं, मैंने कभी पिताकी आज्ञाको उल्लंघन नहीं किया इससे मैं अधम नहीं हूं और यमराजका भी कौन प्रयोजन है ? अर्थात् ऐसा कोई प्रयोजन नहीं है जो मेरे लेनेसे सिद्ध हो, इससे प्रतीत होता है कि—पिताजीने विना किसी प्रयोजनके क्रोधमें भरकर ऐसा कह दिया है परन्तु इसमें मेरी कोई हानि नहीं है मुझे तो पुण्य ही प्राप्त होगा, क्योंकि-जिसका जन्म हुआ है उसका मरण किसी न किसी समय तो अवश्य ही होगा, परंतु इसके साथमें यदि पिताकी आज्ञाका पालन होजाय तो मुझे अवश्य ही धर्म और पुण्यकी प्राप्ति होगी, फिर विचार किया कि—पिताजीने क्रोधके कारण ऐसा कह तो दिया है परन्तु मेरे मृत्युके वशमें हो-जाने पर उनको स्नेहके कारण बड़ा कष्ट होगा और यदि मैं मृत्युके पास नहीं जाता हूं तो पिताजीको, वचन मिथ्या होनेके कारण दुःख होगा तथा मैं भी पिताकी आज्ञाका पालन न करनेसे अधम कहाऊँगा, ऐसा विचार कर, कहनेके पीछे पश्चात्ताप करते हुए पितासे कहनेलगा ॥ ॥ ५ ॥

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथाऽपरे । सस्य-मिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥६॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (पूर्वे) पूर्व पुरुष [प्रवर्त्तन्ते स्म] प्रवृत्त हुए (अनुपश्य) पिछले इतिहासको देखो (तथा) तिसी प्रकार (अपरे) अन्य साधु पुरुष [प्रवर्त्तन्ते] प्रवृत्त होते हैं (प्रतिपश्य) देखो (सस्यम् इव) धान्यकी समान (मर्त्यः) मनुष्य (पच्यते) पकता है (सस्यम्-इव) धान्य की समान (पुनः) फिर (आजायते) जहाँ तहां उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ-हे पिताजी ! आप अपने पिता, पितामह आदिकी ओरको देखो, उन्होंने कभी मिथ्याभाषण नहीं किया, तथा अब भी जो श्रेष्ठ महात्मा हैं उनको देखो वह कभी मिथ्या नहीं बोलते और आपने भी आजतक कभी मिथ्याभाषण नहीं किया हैं, इसकारण स्नेहको दूर करके मुझै मृत्युके पास जानेकी आज्ञा दो, यह शरीर तो क्षणभंगुर है, जैसे सूर्यसे पकेहुए गेहूं, साठी आदि धान्य पृथ्वी पर गिर जाते हैं और समय पाकर फिर उत्पन्न होजाते हैं तैसे ही यह जीव काल भगवान्‌के प्रभावसे वार बार मृत्युको प्राप्त होते हैं और जन्मते हैं, इसकारण क्षणभंगुर शरीरमें ममताको त्यागकर अपने सत्यधर्म पर आरूढ़ हो मुझै धर्मराजके पास जाने दीजिये, नचिकेताके ऐसा कहने पर उद्दालकने अत्यंत दुःखित होतेहुए जानेकी आज्ञा दी। तब नचिकेता अपने पिताकी भक्तिके बलसे तथा अपने तपके

प्रभावसे इस स्थूलशरीरके साथ ही यमपुरीमें चला गया, तहां पहुँचकर मालूम हुआ कि—यमराज कहीं गए हैं सो नचिकेता यमराजके द्वार पर ही खड़ा रहा जब यमराजके किंकरोंको मालूम हुआ तो वह आकर कहने लगे कि—महाराज भोजन करिये, नचिकेताने कहा कि-यमराजसे भेंट किये बिना ऐसा नहीं कर सकता, यमराजके किङ्करोंने कहा कि तुम यमराजसे भेंट होने की आशा मत करो क्योंकि—अभी तुम्हारी आयु समाप्त नहीं हुई है, इसकारण तुमको यमराज ग्रहण नहीं करेंगे, तुम भूलोकको लौटजाओ किंकरोंके ऐसा कहनेका यह प्रयोजन था, कि—सर्वज्ञ यमराज नचिकेताके आनेका समाचार जानकर उसकी परीक्षा लेनेके लिये बाहरको चलेगए और अपने किङ्करोंसे यह कह गए कि-तुम नचिकेताके आने पर कहदेना कि—तुमको अभी यमराज ग्रहण नहीं करेंगे परन्तु किंकरोंके ऐसा कहने पर भी नचिकेता तीन दिन पर्यंत बिना अन्न जल किये यमराज के द्वारपर ही खड़े रहे चौथे दिन यमराज आये तब किंकरोंने यमराजसे कहा कि— ॥ ६ ॥

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् ।
तस्यैताᳬं शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ७.

अन्वय और पदार्थ—(वैवस्वत) हे यमराज ! (वैश्वानरः) अग्नि (ब्राह्मणः) ब्राह्मणरूप (अतिथिः सन्) अतिथि होकर (गृहान्) घरोंको (प्रवि-

शन्ति) प्रवेश करता है (उदकम्) जल (हर) लेजाओ (तस्य) तिसकी (एताम्) इस (शांतिम्) शान्तिको (कुर्वन्ति) करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ-हे धर्मराज ! साक्षात् अग्निदेव ही ब्राह्मणके रूपमें अतिथि होकर गृहस्थोंके यहाँ आता है, अर्घ पाद्य आदिसे गृहस्थ उसको शान्त किया करते हैं, इस कारण तुम भी, अपने ब्रह्मतेजसे दाह करते हुएसे इस अतिथिको अर्घपाद्य आदिके लिये जल लेजाकर शांत करो ॥ ७ ॥

आशाप्रतीक्षे संगत ॐ सूनृताञ्चेष्टापूर्त्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान् एतद् वृंक्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्य) जिस (अल्पमेधसः) मन्दबुद्धि (पुरुषस्य) पुरुषके (गृहे) घरमें (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (अतिथिः) अतिथि (अनश्नन्) विना भोजन किये (वसति) निवास करता है [तस्य] उसके (आशाप्रतीक्षे) इच्छित पदार्थकी प्रार्थनारूप आशा और जिसके मिलनेका निश्चय होचुका उसके पानेकी इच्छारूप प्रतीक्षा (सङ्गतम्) सत्पुरुषोंके संगका फल (सूनृतम्) प्रिय मधुर वाणी बोलनेका फल (इष्टापूर्त्ते) यज्ञका फलरूप इष्ट और ईश्वरार्पण बगीचा आदि लगानेका फलरूप पूर्त्त (सर्वान्) सब (पुत्रपशून्) पुत्र और पशुओंको (एतत्) इस सबको (वृंक्ते) नष्ट करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ-जिस मन्दबुद्धि पुरुषके घर आया हुआ ब्राह्मण अतिथि भूखा बैठा रहता है, उसके इच्छित पदार्थकी आशा, मिलनेवाले पदार्थकी प्रतीक्षा, सत्संगका फल, सुखदायक वाणीका फल, यज्ञका फल बगीचा कूप आदि बनानेका फल और पुत्र पशु आदि इन सबका नाश होजाता है, इस लिये अतिथि को कभी अन्न जलसे निराश नहीं लौटाना चाहिये, इसकारण तुम नचिकेताका सत्कार करो, यह सुनं यमराज नचिकेताके समीप जाकर कहने लगे ॥८॥

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः । नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मन्) हे ब्रह्मन् (अतिथिः) अतिथि (नमस्यः) नमस्कारके योग्य हो (ते) तेरे अर्थ (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (मे) मेरा (स्वस्ति) कल्याण (अस्तु) हो (यत्) जो (मे) मेरे (गृहे) घरमें (तिस्रः) तीन (रात्रीः) रातें (अनश्नन्) विना भोजन करे (अवात्सीः) रहे हो (तस्मात्) तिस कारण (प्रति) हरएक रात्रिके प्रति एक२ करके (त्रीन्) तीन (वरान्) वरोंको (वृणीष्व) मांगो ॥ ९ ॥

भावार्थ-हे ब्रह्मन् नचिकेतः ! तुम अग्निस्वरूप अतिथि होनेके कारण नमस्कारके योग्य हो, तिस

पर भी तुम मेरे यहां तीन रात्रि बिना भोजन किये रहे हो, यह मेरा अपराध है, उसको क्षमा करानेके लिये मैं तुम्हारे अर्थ नमस्कार करता हूँ, तुम क्षमा करो, जिससे कि-मेरा कल्याण हो, यद्यपि तुम्हारे अनुग्रहसे दोष शांत होकर मेरा कल्याण होजायगा, तथापि तुम्हारी अधिक प्रसन्नताके लिये, हर एक रात्रिमें भोजन न करनेके बदलेमें मैं तुमको तीन वर देना चाहता हूं. वह तीन वर तुम अपनी इच्छानुसार मांगलो, मैं यमराज सत्य कहता हूँ वह तुमको दूंगा ॥ ९ ॥

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो मामभिमृत्यो त्वत्प्रसृष्टं माऽभिवदेत् प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(मृत्यो) हे धर्मराज (गौतमः) मेरा पिता उद्दालक (शान्तसङ्कल्पः) मेरे मरणकी चिन्तासे रहित (सुमनाः) प्रसन्नचित्त (माम्-अभि) मेरे ऊपर (वीतमन्युः) क्रोधरहित (यथा) जैसे (स्यात्) हो (त्वत्प्रसृष्टम्) तुम्हारे भेजेहुए (माम् अभि) मेरे प्रति (प्रतीतः) विश्वासको प्राप्तहुआ (अभिवदेत्) भाषण करै (त्रयाणाम्) तीनोंमें (एतत्) इस (प्रथमम्) पहिले (वरम्) वरको (वृणे) मांगता हूँ ॥ १० ॥

भावार्थ-नचिकेताने कहा कि-हे मृत्यो ! अच्छा यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो उन तीनोंमें

से पहिला एक वर तो मुझको यह दीजिये कि-मेरे पिता उद्दालक नामसे प्रसिद्ध गौतम ऋषिको जो यह चिन्ता हो रही होगी कि-मेरा पुत्र यमराजके समीप पहुँचकर न जाने किस दशामें होगा सो उन की यह चिन्ता दूर होकर वह जैसे पहिले थे तैसे ही क्रोधरहित प्रसन्न मन होजायँ, तुम्हारा भेजाहुआ मैं घर जाऊँ तो वह विश्वासके साथ यह पहिचान कर कि—'यह मेरा पुत्र नचिकेता ही है' मुझसे भाषण करें ॥ १० ॥

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणि-र्मत्प्रसृष्टः सुखꣳ रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान् मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आरुणिः) अरुणिका पुत्र (औद्दालकिः) उद्दालक (मत्प्रसृष्टः) मेरा प्रेरणा किया हुआ (मृत्युमुखात्) मृत्युके मुखसे (प्रमुक्तम्) छूटे हुए (त्वां) तुझको (ददृशिवान्) देखता हुआ (पुरस्तात् यथा) पहिलेकी समान (प्रतीतः) विश्वासयुक्त (वीतमन्युः) क्रोधरहित (भविता) होगा (रात्रीः) इन रातोंको (सुखम्) सुखके साथ (शयिता) सोवेगा ॥ ११ ॥

भावार्थ-तब यमराजने कहा कि-हे नचिकेतः ! अरुणिके पुत्र उद्दालक ऋषि तेरे पिताका तेरे ऊपर पहिले जैसा प्रेम था, अब मृत्युलोकसे लौट कर

गए हुए तुझको देखकर भी वैसा ही विश्वास और प्रेम मेरी प्रेरणासे होगा और इन रात्रियोंमें भी तेरा पिता प्रसन्नमन होकर सुखसे सोवेगा ॥

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति । उभे तीर्त्वाऽशनापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वर्गलोके) स्वर्गलोक में (किञ्चन) कुछ भी (भयम्) भय (न) नहीं (अस्ति) है (तत्र) तहां (त्वम्) तुम (न) नहीं [असि] हो [कश्चित्-अपि] कोई भी (जरया) बुढ़ापेसे (न) नहीं (बिभेति) डरता है (स्वर्गलोके) स्वर्ग लोकमें [पुरुषः] पुरुष (अशनापिपासे) भूख प्यास (उभे) दोनों को (तीर्त्वा) तरकर (शोकातिगः) शोकरहित हुआ (मोदते) आनन्द मनाता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—नचिकेता स्वर्ग के साधन अग्निके ज्ञान को पानेकी इच्छासे स्वर्ग का स्वरूप कहता है, कि-हे यमराज ! स्वर्ग लोकमें रोग आदिका कोई भय नहीं है, तुम भी वहाँ किसीको वशमें नहीं कर सकते हो, मृत्युलोककी समान तहाँ बुढ़ापेसे भी कोई नहीं डरता है, किन्तु स्वर्ग लोकमें पहुंचाहुआ पुरुष भूख प्यासको भी जीत कर सब प्रकारके मानसिक दुःखसे रहित होकर परमानन्दके साथ समय को बिताता है ॥ १२ ॥

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि तं श्रद्दधानाय मह्यम् । स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मृत्यो) हे यमराज (सः) वह (त्वम्) तुम (स्वर्ग्यम्) स्वर्ग के साधन (अग्निम्) अग्निको (अध्येषि) जानते हो (तम्) उस को (श्रद्दधानाय) श्रद्धा करने वाले (मह्यम्) मेरे अर्थ (प्रब्रूहि) कहिये [येन] जिस अग्निके द्वारा (स्वर्गलोकाः) स्वर्गवासी (अमृतत्वम्) अमर-भावको (भजन्ते) प्राप्त होते हैं (एतत्) यह (द्वितीयेन) दूसरे (वरेण) वरसे (वृणे) माँगता हूं।

भावार्थ-हे मृत्यो ! आप ऐसे गुणोंसे युक्त स्वर्ग-लोकको पानेके साधन अग्निके तत्त्वको जानते हैं, इस लिये मुझ श्रद्धालुको उस अग्निका तत्त्व सुनाइये आप अग्निके तत्त्वको सुनादेंगे तो स्वर्गलोकमें पहुंचे हुए यजमान देवभावको प्राप्त होजाँयगे, यह ही मैं दूसरे वरसे माँगता हूँ ॥ १३ ॥

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् । अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठाम् विद्धि त्वमेनं निहितं गुहायाम् ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(नचिकेतः) हे नचिकेतः ! (स्वर्ग्यम्) स्वर्ग के साधन (अग्निम्) अग्निको (प्रजानन्) जाननेवाला मैं (ते प्र) तेरे प्रति

(ब्रवीमि) कहता हूँ (तत् उ) उसको (मे) मुझसे (निबोध) जानो (त्वम्) तुम (एनम्) इस अग्नि-तत्त्वको (अनन्तालिम्) स्वर्ग का फल प्राप्त कराने वाला (प्रतिष्ठाम्) विराट्रूप जगत्का आश्रय (अथो) और (गुहायाम्) विद्वान् पुरुषोंकी बुद्धिरूप गुफामें (निहितम्) स्थित (विद्धि) जानो ॥ १४ ॥

भावार्थ—यमराजने कहा कि—हे नचिकेतः ! मैं इस स्वर्गकी साधन अग्निविद्याको भलेप्रकारसे जानता हूँ, मैं तुमसे कहता हूँ अब तुम चित्तको एकाग्र करके सावधानीके साथ सुनो, हे नचिकेतः ! यह अग्नि स्वर्गरूप फलका देनेवाला, विराट्रूपसे जगत् का आश्रय और विद्वानोंकी बुद्धिरूप गुहामें साक्षी-रूपसे स्थित रहता है, तुम इसको अवश्य जानो ॥

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका याव-तीर्वा यथा वा । स चापि प्रत्यवदद्यथोक्तम-थास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ—[यमः] यमराज (लोका-दिम्) जगत्के कारण (अग्निम्) अग्निको (इष्टकाः) ईंटें (याः) जैसी (वा) या (याव-तीः) जितनी होनी चाहियें (वा) या (यथा) जैसे होनी चाहियें (तम्) उस सब प्रकारको (तस्मै) तिस नचिकेताके अर्थ (उवाच) कहता हुआ (च) और (सः) वह (अपि) भी (तत्) वह (यथोक्तम्) जिसप्रकार कहा था तिसी प्रकार

(प्रत्यवदत्) यमराजके प्रति कहता हुआ (अथ) इसके अनन्तर (अस्य) इसके ऊपर (तुष्टः) प्रसन्न हुए (मृत्युः) यमराज (पुनरेव) फिर भी (आह) कहते हुए ॥ १५ ॥

भावार्थ—यमराजने नचिकेतासे सब लोकों की आदिभूता तिस अग्निविद्याका वर्णन किया और उस अग्निचयनके लिये जैसी जितनी ईंटों की आवश्यकता है तथा जिसप्रकार अग्निचयन करना चाहिये सो सब वर्णन कर दिया यमराजका उपदेश समाप्त होने पर नचिकेताने उस उपदेशको जैसा सुना था वैसा ही सुना दिया, इस बातसे प्रसन्न होकर यमराजने पहिले देने कहे हुए तीन वरोंके सिवाय और भी वर देनेकी इच्छासे कहा ॥

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरन्तवेहाद्य ददामि भूयः । तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सृंकां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(प्रीयमाणः) प्रसन्न हुआ (महात्मा) उदारबुद्धि यम (तम्) उसको (अब्रवीत्) बोला (अद्य) अब (तव) तुझको (भूयः) फिर (वरम्) वर (ददामि) देताहूं (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि (तव एव) तेरेही (नाम्ना) नाम करके (इह) इस लोकमें [प्रसिद्धः] प्रसिद्ध (भविता) होगा (अनेकरूपाम्) विचित्ररूप

(इमाम्) इस (सृंकाम्) मालाको (च) भी (गृहाण) ग्रहण कर ॥ १६ ॥

(भावार्थ)—धारणा-शक्तिको देखकर प्रसन्न हुए परमउदार यमराजने नचिकेता से कहा कि हे नचिकेतः ! अब मैं तुझको और भी एक यह वर देता हूं, वह यह है कि-यह अग्नि तुझ नचिकेता के नामसे 'नाचिकेत' कहलावेगा, इसके सिवाय और इस विचित्र मणियों की मालाको भी ग्रहण कर ॥ १६ ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू। ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमा थ्ं शान्तिमत्यन्तमेति ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(त्रिणाचिकेतः) तीनवार नाचिकेत नामक अग्निकी उपासना करनेवाला (त्रिभिः) तीनसे (सन्धिम्) सम्बन्धको (एत्य) प्राप्त होकर (त्रिकर्मकृत्) तीन कर्म करनेवाला (जन्ममृत्यू) जन्म और मरण को (तरति) तरता है (ईड्यं) स्तुति योग्य (ब्रह्मजज्ञम्) ब्रह्मसे उत्पन्न हुए और ज्ञाता (देवम्) ज्ञानादि दिव्य गुणवाले को (विदित्वा) जानकर (निचाय्य) अनुभव करके (इमाम्) इस अपनी बुद्धिके प्रत्यक्ष (अत्यन्तं) अतिशय (शान्तिम्) शान्तिको (एति) प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

(भावार्थ)- यमराजने कहा कि-जिसने तीन वार नाचिकेत नामक अग्निका अनुष्ठान किया है वह माता पिता और आचार्य इन तीनोंसे सम्बन्ध को पाकर, या वेद स्मृति और शिष्ट पुरुषों से सम्बन्धको पाकर वा प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन तीनसे सम्बन्धको पाकर यज्ञ, वेदाध्ययन और दान इन तीन कर्मोंको करता है, वह जन्म और मृत्यु के पार होजाता है, यह अग्नि हिरण्यगर्भ ब्रह्म से उत्पन्न होनेके कारण सर्वज्ञ है, स्तुति करने योग्य है, ज्ञानादि गुणवाला है, इसके स्वरूप को शास्त्रसे जानकर और इसका बुद्धिसे प्रत्यक्ष करके गुरुत्व परम शान्ति विराटपद को पाता है ॥ १७ ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतं । स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (त्रिणाचिकेतः) तीनबार नाचिकेताग्नि को उपासना करनेवाला (विद्वान्) विद्वान् (एवम्) इसप्रकार (विदित्वा) जानकर (एतत्) इस (त्रयम्) तीनप्रकारके (नाचिकेतम्) नाचिकेत्त अग्निको (चिनुते) चयन करता है (सः) वह (पुरतः) पहिले ही (मृत्युपाशान्) मृत्युके पाशोंको (प्रणोद्य) दूर करके (शोकातिगः) शोकके पार हुआ (स्वर्गलोके) स्वर्गलोकमें (मोदते) आनन्दपाता है ॥ १८ ॥

(भावार्थ)-जो तीनवार नाचिकेत अग्निकी उपासना करनेवाला विद्वान् है, जैसी जितनी इष्टका चाहिये और जिस प्रकार चयन करनी चाहिये इसके तत्त्वको जानकर नाचिकेताग्निके यज्ञको समाप्त करता है वह अधर्म अज्ञान और रागद्वेषरूप मृत्यु के पाशोंको शरीरपातसे पहले ही दूर करके मानसिकदुःखसे रहित हुआ विराट्के आत्मस्वरूपकी प्राप्तिसे विराट्रूप स्वर्गलोकमें सुख पाता है ॥१८॥

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण। एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरन्नचिकेतो वृणीष्व ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(नचिकेतः) हे नचिकेतः ! (द्वितीयेन) दूसरे (वरेण) वरसे (यम्) जिसको (अवृणीथाः) तूने बूझा था (एषः) यह (स्वर्ग्यः) स्वर्गदायक (अग्निः) अग्नि) (ते) तेरे अर्थ [उक्तः] कहा (जनासः) लोक (एतम्) इस (अग्निम्) अग्निको (तव एव) तेरा ही (प्रवक्ष्यन्ति) कहेंगे (नचिकेतः) हे नचिकेतः ! (तृतीयम्) तीसरे (वरम्) वरको (वृणीष्व) मांग ॥ १९ ॥

भावार्थ—हे नचिकेतः ! तूने दूसरे वरसे जिस अग्निको बूझा था, यह उसी स्वर्गके साधनरूप अग्निका वर्णन मैंने तुझसे किया है, सब लोक इस अग्निको तेरे ही नामसे कहेंगे, हे नचिकेतः ! अब तू तीसरा वर भी मांगले । १९ ॥

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके । एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ—(प्रेते) मरे हुए (मनुष्ये) मनुष्यके विषैं (या) जो (इयम्) यह (विचिकित्सा) सन्देह बुद्धि [अस्ति] है (एके) एक (अस्ति) है (च) और (एके) एक (अयम्) यह आत्मा (न) नहीं (अस्ति) है (इति) ऐसा [वदन्ति] कहते हैं (त्वया) तुम करके (अनुशिष्टः) शिक्षा दिया हुआ (अहम्) मैं (एतत्) यह (विद्याम्) जानूं (वराणाम्) वरोंमें (एषः) यह (तृतीयः) तीसरा (वरः) वर [अस्ति] है ॥ २० ॥

भावार्थ—नचिकेता कहता है कि—हे यमराज ! मरेहुए मनुष्यके विषयमें जो यह सन्देह है कि—कोई कहते हैं कि-शरीरादिसे भिन्न आत्मा है और कोई कहते हैं कि-शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिके सिवाय अलग अन्य कोई आत्मा नहीं है, इसकारण हमको आत्माका ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणसे और अनुमानसे भी नहीं होता है परन्तु परम पुरुषार्थ इस विज्ञानके ही अधीन है, इसलिये आप ऐसी शिक्षा दीजिये कि—मैं इस विज्ञानको जान जाऊँ, यही उन वरदानोंमें मैं तीसरा वरदान मांगता हूं ॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुविज्ञेयम-

णुरेष धर्मः । अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरतिमासृजैनम् ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(नचिकेतः) हे नचिकेतः ! (अत्र) इस विषयमें (देवैः अपि) देवताओंने भी (पुरा) पहिले (विचिकित्सितम्) सन्देह किया है (हि) निश्चय (एषः) यह (अणुः) सूक्ष्म (धर्मः) धर्म (सुविज्ञेयम्) सहजमें जानने योग्य (न) नहीं है (अन्यम्) और (वरम्) वरको (वृणीष्व) मांग (माम्) मुझको (मा) मत (उपरोत्सीः) रोक (एनम्) इस वरको (माम्) मेरे प्रति (अतिसृज) छोड़ दे ॥ २१ ॥

भावार्थ—नचिकेताके ऐसा कहने पर यह नचिकेता नियमके अनुसार मोक्षके साधन आत्मज्ञान के उपदेशका पात्र है या नहीं, यह परीक्षा करनेको यमराज कहते हैं कि-हे नचिकेतः ! इस आत्माके विषयमें तो पहिले एक समय देवता भी सन्देह में पड़ गये थे, और प्राणी तो इसको सुनकर भी नहीं समझ सकेंगे, क्योंकि-यह आत्मधर्म बड़ा ही सूक्ष्म है, इसलिये हे नचिकेतः ! किसी स्पष्ट फल वाले और वरको मांगले, जैसे धनी कर्जदार को रोकता है, तैसे मुझको मत रोक, किन्तु इस वर को मेरे लिये ही छोड़ दे ॥ २१ ॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वञ्च मृत्यो

यन्न सुविज्ञेयमात्थ। वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरो तुल्य एतस्य कश्चित् ॥

अन्वय और पदार्थ-(मृत्यो) हे यमराज (अत्र) इस विषयमें (देवैः अपि) देवताओंने भी (विचिकित्सितम्) सन्देह किया है (यत्) जो (त्वम्) तुम (एनम्) इसको (सुविज्ञेयम्) सहजमें जाननेयोग्य (न) नहीं (आत्थ) कहते हो (किल) यह ठीक है [एवम्-सति] ऐसा होने पर (अस्य) इसका (वक्ता) उपदेश देनेवाला (त्वादृक्) तुम्हारी समान (अन्यः) और (न) नहीं (लभ्यः) मिल सकता है (अन्यः) दूसरा (कश्चित्) कोई (वरः) वर (एतस्य) इसके (तुल्यः) समान (न) नहीं है ॥ २२ ॥

भावार्थ-यमराजके ऐसा कहने पर नचिकेताने कहा कि-हे मृत्यो जब कि-पहिले इस आत्माके विषयमें देवताओंको भी सन्देह हुआ है और आपने भी मुझसे कहा कि-यह सहजमें नहीं जाना जासकता इसलिये मैं तो खोजता फिरूँगा तब भी इस प्रश्न का उत्तर देने वाला आपके समान कोई भी विद्वान् मुझे नहीं मिलैगा, और इस वरदानसे मोक्ष तक की प्राप्ति होसकती है, इसकारण इसकी समान और कोई भी वरदान नहीं है, क्योंकि-इसके सिवाय और सबोंका फल अनित्य है ॥ २२ ॥

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्ति-
हिरण्यमश्वान् । भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयञ्च
जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ २३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शतायुषः) सौ वर्षकी आयु वाले (पुत्रपौत्रान्) बेटे पोतोंको (बहून्) बहुतसे (पशून्) पशुओंको (हस्तिहिरण्यम्) हाथी और सुवर्णको (अश्वान्) घोड़ोंको (भूमेः) भूमिके (महत्) बड़े भारी (आयतनम्) स्थानको (वृणीष्व) मांग ले (च) और (स्वयम्) अपने आप (यावत्) जब तक (इच्छसि) चाहता हो (शरदः) वर्षों तक (जीव) जीवित रह ॥ २३ ॥

भावार्थ—नचिकेताके ऐसा कहने पर फिर यम-राज कहनेलगे कि–हे नचिकेतः ! तू सौ वर्षकी आयु वाले बेटे पोते मांगले, गौ आदि बहुतसे पशुओंको माँगले, हाथी और सुवर्णको मांगले अथवा पृथ्वीके बड़े विस्तार वाले मण्डल अर्थात् चाहें चक्रवर्त्ती राज्यको मांगले, यदि कहै कि–मैं थोड़ीसी आयुके लिये इन सबको लेकर क्या करूँगा ? तो तू आप भी अपनी इच्छानुसार जितने वर्षों तक जीवित रहना चाहे उतने वर्षोंतक शरीर और सब इन्द्रियोंकी शक्तिके साथ जीवित रह ॥ २३ ॥

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिर-
जीविकाञ्च । महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां
त्वा कामभाजं करोमि ॥ २४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(नचिकेतः) हे नचिकेतः ! (यदि) जो (एतत्तुल्यम्) इसकी समान (अन्यम्) दूसरे (वरम्) वरको (मन्यसे) मानता है (वित्तम्) धनको (च) और (चिरजीविकाम्) चिरायुको (वृणीष्व) माँग (त्वम्) तू (महाभूमौ) महाभूमि में (एधि) वृद्धिको प्राप्त हो (त्वाम्) तुझको (कामानाम्) इच्छित विषयोंका (कामभाजम्) इच्छानुसार भोगनेवाला (करोमि) करता हूं ॥ २४ ॥

भावार्थ-यमराजने कहा कि-हे नचिकेतः ! इस वरके समान यदि तू किसी दूसरे वरको समझता हो तो वह वर माँगले, सुवर्ण रत्न आदि बहुत सा धन माँगले, बहुत समयतक जीने को बड़ी आयु माँगले और अधिक क्या कहूँ यदि बड़ी भारी भूमि का चक्रवर्त्ती राजा होना चाहे तो वह भी मैं तुझ को बनासकता हूँ, यदि देवता और मनुष्योंके कोई से भी भोग्य विषयोंको तू भोगना चाहे तो मैं तुझे उसके ही योग्य कर सकता हूँ ॥ २४ ॥

ये ये कामदुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व । इमा रामाः सरथाः सतूर्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः । आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः २५

अन्वय और पदार्थ-(नचिकेतः) हे नचिकेतः ! (ये ये) जो२ (कामाः) विषयभोग (मर्त्यलोके)

मृत्युलोकमें (दुर्लभाः) दुर्लभ हैं [तान्] उन (सर्वान्) सकल (कामान्) भोगोंको (सरथाः) रथों सहित (सतूर्याः) बाजों सहित (इमाः) इन (रामाः) स्त्रियोंको (छन्दतः) यथेच्छ भावसे (प्रार्थयस्व) मांग (ईदृशाः) ऐसी (मनुष्यैः) मनुष्यों करके (न) नहीं (लम्भनीयाः) पाने योग्य हैं (मत्प्रत्ताभिः) मेरी दीहुई (आभिः) इनके द्वारा (परिचारयस्व) सेवा करा (मरणम्) मरणविषयक प्रश्नको (मा अनुप्राक्षीः) मत बूझ ॥ २५ ॥

भावार्थ-हे नचिकेतः ! मृत्युलोकमें प्राणी जिन २ विषयसुखोंको चाहते हैं और वह उनको मिलना दुर्लभ हैं उन सबको तू अपनी इच्छानुसार मांगले जो मनुष्योंको प्राप्त ही नहीं होसकतीं, ऐसी रथोंमें बैठीहुई नानाप्रकारके बाजों सहित सुन्दर अप्सराओंको मांगले और उन मेरी दी हुई अप्सराओंसे सब प्रकारकी सेवा कराता हुआ आनन्द भोग परन्तु "मरणके अनन्तर प्राणीकी क्या दशा होती है, इस प्रश्नको मुझसे मत बूझ ॥ २५ ॥

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ २६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्तक) हे यमराज (श्वोभावाः) कलको न रहनेवाले पदार्थ (मर्त्यस्य) मनुष्यके (सर्वेन्द्रियाणाम्) सकल इन्द्रियोंके (तेजः)

तेजको (जरयन्ति) क्षीण करते हैं (यत्) जो (सर्वम्) सब (जीवितम्) जीवन है (एतत्) यह (अपि) भी (अल्पम् एव) थोड़ा ही है (वाहाः) रथ (तव एव) तुम्हारे ही (नृत्यगीते) नृत्य और गान (तव एव) तुम्हारे ही (सन्तु) हों ॥ २६ ॥

भावार्थ–नचिकेताने कहा कि–हे यमराज ! तुम्हारे दियेहुए भोगके पदार्थ न जाने कलको रहेंगे या नहीं इसका कोई ठिकाना नहीं है। और यह अप्सरादिक भोग मनुष्योंकी सकल इन्द्रियोंके तेजका नाश करदेते हैं, इसलिये वह आनन्ददायक नहीं हैं किंतु अनर्थकारक हैं और आप बड़ी भारी आयु जो देते हैं सो आयु तो ब्रह्माकी भी थोड़ी है, क्योंकि–एक दिन उसकी भी समाप्ति होजाती है, इसलिये अनर्थके कारण और एक दिन अवश्य नाशको प्राप्त होनेवाले रथ और नाच गानको तुम अपने ही पास रक्खो २६

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥ २७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(मनुष्यः) मनुष्य (वित्तेन) धनसे (न) नहीं (तर्पणीयः) तृप्त होनेवाला है (चेत्) जो (त्वा) तुमको (अद्राक्ष्म) देखचुके हैं (वित्तम्) धनको लप्स्यामहे) पावेंगे (त्वम्) तू (यावत्) जबतक (ईशिष्यसि) राज करेगा

(जीविष्यामः) जीवित रहेंगे (वरः तु) वर तो (मे) मुझको (सः एव) वह ही (वरणीयः) मांगने योग्य है ॥ २७ ॥

भावार्थ—चाहे कितना ही मिलजाय परन्तु आज तक किसी मनुष्यको धनसे तृप्त होते नहीं देखा. और जब मुझे आपका दर्शन होगया है तो धनका मिलना कौन दुर्घट बात है? जब इच्छा होगी तब ही मिलजायगा, तथा जबतक तुम्हारी प्रभुता रहेगी तबतक जीवित भी रहेंगे ही. क्योंकि—तुम्हारे पास आकर भी क्या किसीको धन और आयुकी कमी रह सकती है? कदापि नहीं, अब मेरे माँगने योग्य वर तो वह आत्म-विज्ञान ही है ॥ २७ ॥

अजीर्यताममृतानामुपेत्यजीर्यन् मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्नभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानाति जीविते को रमेत ॥ २८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अजीर्यताम्) आयु की चीणता को प्राप्त न होनेवाले (अमृतानाम्) देवताओं के [सामीप्यम्] समीपता को (एत्य) प्राप्त होकर (क्वधःस्थः) नीचे भूतलपर रहनेवाला (जीर्यन्) जराको पानेवाला (प्रजानन्) विवेकी (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (वर्णरतिप्रमोदान्) शरीरकेरंग की प्रीतिसे आनन्दके कारण अप्सरा आदिको (अभिध्यायन्) वास्तविकस्वरूपसे देखता हुआ (अतिदीर्घे) बहुत बड़े (जीविते) जीवनमें (रमेत) रमेगा ॥ २८

(भावार्थ)—जिनको [illegible] नहीं होता ऐसे अमर देवताओंके समीप पहुँचकर, देवताओंसे अपना कोई और उत्तम प्रयोजन सिद्ध करना चाहिये यह जाननेवाला विवेकी पुरुष, जरामरणवाला और अन्तरिक्ष लोकसे भी नीचे स्थित होकर, अविवेकियोंके माँगनेयोग्य पुत्र आदि नाशवान् पदार्थों को कैसे माँगेगा ? किन्तु वह अनित्य पदार्थोंके लालचमें कभी नहीं पड़ेगा और अप्सरा आदिके रूपको क्षणकाल रहनेवाला जानकर भी कौन विचारवान् दीर्घ जीवनकी प्रार्थना करेगा ? इसलिये मुझको अनित्य विषयोंके लुभावमें न डालकर मैंने जो वरदान माँगा है उस आत्मविज्ञानका तत्त्व ही मुझको सुनाइये ॥ २८ ॥

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये
महति ब्रूहि नस्तत् । योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो
नान्यस्तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥ २९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मृत्यो) हे यमराज (यत्) जो (इदम्) यह (यस्मिन्) जिस मृतकके होने पर (महति) बड़ी (साम्पराये) परलोककी गतिके विषें (विचिकित्सन्ति) सन्देह करते हैं (तत्) उसको (नः) हमारे अर्थ (ब्रूहि) कहिये (यः) जो (अयम्) यह (गूढम्) दुःखसे विचारनेयोग्य (वरः) वर (अनुप्रविष्टः) चित्तमें प्रविष्ट हुआ है (नचिकेताः)

नचिकेता (तस्मात्) तिससे (अन्यम्) औरको (न) नहीं (वृणीते) मांगता है ॥ २६ ॥

(भावार्थ)-क्योंकि-मनुष्यका मरण होनेपर बड़े भारी परलोकमें आत्माकी न जाने क्या दशा होती है ? जाने आत्मा रहता भी है या नहीं इसमें देवताओंको भी संशय रहता है इसलिये इस संदेह को दूर करनेवाला आत्मविज्ञान मुझसे कहिये क्यों कि-परलोकका तत्त्व जानलेनेसे परमप्रयोजन सिद्ध होगा यह आत्म तत्त्व के विषय का प्रश्न बड़ा गहन है इसको जाननेके लिये मेरा चित्त उत्कंठित होरहा है, इसलिये इसको छोड़कर नचिकेता अज्ञानियोंके मांगने योग्य और कोई अनित्य पदार्थोंका वर नहीं मांगेगा ॥ २६ ॥

इति प्रथमावल्ली समाप्ता

इसप्रकार परीक्षा करने पर नचिकेता की आत्म-विज्ञान की योग्यता जानकर प्रसन्न हुए यमराज कहते हैं कि—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्तु उभे नानार्थे पुरुषं सिनातः । तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रेयः) विद्या (अन्यत्) और है (उत) और (प्रेयः) अविद्या (अन्यत्एव) औरही है (ते) वह (उभे) दोनों (नानार्थे) अनेकों प्रयोजनोंमें

(पुरुषम्) पुरुषको (सिनीतः) बांधते हैं (तयोः) उन दोनोंमें (श्रेयः) विद्याको (आददानस्य) ग्रहण करनेवालेका (साधु) कल्याण (भवति) होता है (यः, उ) जो तो (प्रेयः) अविद्याको (वृणीते) सेवन करता है (अर्थात्) पुरुषार्थसे (हीयते) भ्रष्ट होजाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—श्रेय कहिये मोक्षका साधन तत्त्वज्ञानरूप विद्या अन्य वस्तु है, तथा प्रिय पुत्र आदिकी कामना रूप संसारबन्धनका कारण अविद्या और वस्तु है यह दोनों जुदे २ पदार्थ हैं और इनके प्रयोजन भी भिन्न २ हैं। यह वर्णाश्रमधर्मका पालन करनेवाले अधिकारी पुरुषको बांधते हैं अर्थात् कोई मोक्षकी इच्छावाला है तो वह विद्याका आश्रय लेता है और जो स्वर्गादि–भोगरूप संसारका अर्थी है वह प्रेयरूप अविद्याके अधिकारमें है। इस प्रकार सब ही श्रेय और प्रेयसे बँधे हुए हैं, इन दोनोंमेंसे जो श्रेयरूप विद्याको ग्रहण करता है उसका कल्याण होता है अर्थात् वह संसारबन्धनसे छूटजाता है और जो अदूरदर्शी मूढ़ पुरुष अविद्यारूप प्रेयको ग्रहण करता है वह परमपुरुषार्थरूप मोक्षमार्गसे भ्रष्ट होजाता है ॥ १ ॥

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रेयः) विद्या (च) और (प्रेयः) अविद्या (च) भी (मनुष्यम्) मनुष्य को (एतः) प्राप्त होते हैं (धीरः) विवेकी (तौ) उन दोनोंको (सम्परीत्य) भली प्रकार विचार कर (विविनक्ति) अलग२ करता है (धीरः) बुद्धिमान् (प्रेयसः अभि) प्रेयसे भिन्न (श्रेयः) श्रेयको (वृणीते) ग्रहण करता है (मन्दः) मूढ़ (योगक्षेमात्) योगक्षेमके कारण (प्रेयः) प्रेयको (वृणीते) ग्रहण करता है ॥ २ ॥

(भावार्थ) यद्यपि श्रेय और प्रेय दोनोंही पुरुष के आधीन हैं, तथापि कर्मवश मन्दबुद्धि पुरुषोंको मिलेहुए प्राप्त होते हैं, परन्तु जैसे हंस जलमें से दूध२ निकाल लेता है तैसे ही विवेकी पुरुष श्रेय और प्रेय (विद्या और अविद्या या ज्ञान और कर्म) के तत्त्वको मनसे भली प्रकार देख कर प्रेयमेंसे श्रेय को अलग कर निकाल लेता है और अल्पबुद्धिवाला अधीर पुरुष विवेकशक्तिके न होनेसे, योगक्षेम अर्थात् शरीरकी वृद्धि और रक्षाके लिये पुत्र पशु आदि प्रेय पदार्थोंको ही ग्रहण करता है ॥ २ ॥

स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामानभिध्या- यन्नाचिकेतोऽत्यस्राक्षीः । न ताᳬसृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(नचिकेतः) हेनचिकेतः ! (सः) वह (त्वम्) तू (प्रियान्) प्रिय (च) और (प्रियरूपान्) प्रियरूप (कामान्) भोगोंको (अभिध्यायन्) नाशवान् समझता हुआ (अत्यस्राक्षीः) त्यागचुका है (यस्याम्) जिसमें (बहवः) बहुतसे (मनुष्याः) मनुष्य (मज्जन्ति) आसक्त होते हैं (एनाम्) इस (वित्तमयीम्) रत्नमयी (सृङ्काम्) मालाको (न)नहीं (अवाप्तः) प्राप्तहुआ ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-हे नचिकेतः ! मैंने तुझको बार बार लोभ दिखाया तब भी प्रिय पुत्र आदि और प्यारे लगनेवाले अप्सरा आदि भोगोंकी अनित्यताको विचारकर तूने उन सबको त्यागदिया और जिसमें निन्दित मूढ़जन आसक्त होकर अपना सर्वस्व नष्ट करलेते हैं उस रत्नजड़ी मालास्वरूप कर्मकी खोटी वासनामें तू आसक्त नहीं हुआ, इसकारण तू सच्चा विवेकी पुरुष है ॥ ३ ॥

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता । विद्याभीप्सिनन्नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवो लोलुपन्तः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (अविद्या) अविद्या है (च) और (विद्या) विद्या (ज्ञाता) जानीगई है (एते) यह दोनो (दूरम्) अत्यन्त (विपरीते) प्रतिकूल स्वभाववालीं (विषूची)

भिन्न २ फलवाली हैं (नचिकेतसम्) नचिकेताको (विद्याभीप्सिनम्) विद्याका अभिलाषी (मन्ये) मानता हूं (त्वा) तुझको (बहवः) बहुतसे (कामाः) भोग (न) नहीं (लोलुपन्तः) लुभाते हुए ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्या (विवेक) और अविद्या (अविवेक) यह दोनों उजाले और अन्धेरेकी समान परस्पर अत्यन्त विरुद्ध पदार्थ हैं तथा इन दोनोंके फल भी भिन्न २ प्रकारके हैं, अविद्याका फल प्रेय (विषयभोग) और विद्याका फल श्रेय (मोक्ष) है, ऐसा विवेकी पुरुषोंने जाना है। हे नचिकेतः ! तुझको मैं विद्याका अभिलाषी मानता हूँ, क्योंकि-बुद्धिको लुभानेवाले अप्सरा आदि अनेकों कामना भी तुझको तेरे इच्छित मोक्षमार्गसे न डिगा सकीं इसकारण तू विद्याका अधिकारी मुमुक्षु है ॥ ४ ॥

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पंडितं मन्यमानाः । दंद्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अविद्यायाम्) अविद्याके विषैं (अन्तरे) मध्यमें (वर्त्तमानाः) वर्त्तमान (मूढाः) मूढ पुरुष (स्वयम्) अपने आप (धीराः) पण्डित बनेहुए (पण्डितम्-मन्यमानाः) अपनेको पण्डित मानतेहुए (अन्धेन-एव) अन्धे करके ही (नीयमानाः) लेजाए जातेहुए (अन्धाः-यथा)

अन्धोंके समान (दंद्रम्यमाणाः) कुटिल गतियोंमें पड़ेहुए (परियन्ति) भ्रमते रहते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ-जो संसारी पुरुष अविद्यारूपी अन्धेरेमें पड़कर पुत्र पशु आदिकी तृष्णारूप सैकड़ों पाशियों से बँधकर अपने बुद्धिमान् और शास्त्रमें प्रवीण होनेका अभिमान करते हैं, वह मूढ़ जरा मरण रोग आदि दुःखोंके कारण अतिकुटिल अनेकों प्रकारकी दुर्दशाओंको भोगते हुए चारों ओर घूमते रहते हैं, जैसे-जिनका अगुआ अन्धा हो है ऐसे अपने इच्छित स्थानको जातेहुए अन्धे, गढ़े और काँटोंके दुर्गम मार्ग में पड़जाते हैं तैसे ही वह पण्डितमानी भी बड़े कष्टोंमें पड़जाते हैं ॥ ५ ॥

न साम्परायः प्रतिभाति बालम्प्रमाद्यन्तं वित्त-मोहेन मूढम् । अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(साम्परायः) परलोकका साधन शास्त्रोक्त कर्म (प्रमाद्यंतम्) प्रमाद करनेवाले (वित्तमोहेन) धनके मोह करके (मूढम्) अविवेकी (बालम्) बालकको (न) नहीं (प्रतिभाति) अच्छा लगता है (अयम्) यह (लोकः) लोक [अस्ति] है (परः) परलोक (न) नहीं (अस्ति) है (इति) ऐसा (मानी) माननेवाला (पुनः पुनः) बार बार (मे) मेरे (वशम्) वशको (आपद्यते) प्राप्त होता है ६

भावार्थ-जो बालक (विवेकहीन) हैं उनके मनको परलोककी प्राप्तिका साधन शास्त्रका उपदेश अच्छा नहीं लगता है. जो ऐसे प्रमादमें पड़े हुए हैं और सदा धनके मोहसे मतवाले रहते हैं वे समझते हैं कि-जो कुछ है, यह खानपानकी सामग्री वाला दीखता हुआ लोक ही है और परलोक आदि कोई नहीं है ऐसा मानने वाले वे पुरुष बार २ मेरे वश में होते हैं अर्थात् अनेकों बार मरने और जन्मनेका दुःख भोगते हैं, हे नचिकेतः! संसारमें अधिकतर ऐसे ही पुरुष हैं॥ ६ ॥

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः। आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (बहुभिः) बहुतों करके (श्रवणाय) सुननेके अर्थ (अपि) भी (न) नहीं (लभ्यः) प्राप्त होसकता है (यम्) जिसको (शृण्वन्तः) सुनतेहुए (अपि) भी (बहवः) बहुत से (न) नहीं (विद्युः) जानते हैं (अस्य) इसका (कुशलः) चतुर (वक्ता) कहनेवाला (आश्चर्यः) अचरजरूप (लब्धा) पानेवाला (कुशलानुशिष्टः) चतुरका शिक्षा दियाहुआ (ज्ञाता) जाननेवाला (आश्चर्यः) अचरजरूप [भवति] होता है ॥७॥

भावार्थ—हे नचिकेतः! तुम्हारी समान श्रेय

(मोक्ष) को चाहनेवाला आत्मवेत्ता तो सहस्रोंमें कोइ होगा, क्योंकि—इस आत्मतत्त्वको सुननेकी इच्छावाले बहुतसे नहीं होते हैं और उन थोडेसे सुननेके अभिलाषियोंमें भी जो संस्कारहीन चित्त-वाले और मन्दभाग्य होते हैं वे आत्माको जान ही ही नहीं सकते तथा आत्मतत्त्वका उपदेश करनेवाले गुरुका मिलना भी बड़ा दुर्लभ है, सहस्रोंमें कोई ही होता है और सुनने की इच्छा भी हो तथा उपदे-शक भी मिलजाय तब भी आत्मतत्त्वके यथार्थरूप से ज्ञाता बहुत ही थोडे मिलते हैं, क्योंकि-जिनको निपुण आचार्यने आत्मतत्त्वकी शिक्षा दी हो ऐसे पुरुष कोई विरले ही होते हैं ॥ ७ ॥

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः । अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणी-यान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् । ८ ।

अन्वय और पदार्थ—(बहुधा) अनेकों प्रकार करके (चिन्त्यमानः) कल्पना किया जाताहुआ (एषः) यह आत्मा (अवरेण) हीन (नरेण) मनु-ष्य करके (प्रोक्तः) उपदेश कियाहुआ (सुविज्ञेयः) भलीप्रकारसे जानने योग्य (न) नहीं [अस्ति] है (अनन्यप्रोक्ते) अन्यके उपदेश बिनादिये (अत्र) इस आत्माके विषैं (गतिः) प्रवेश (न) नहीं (अस्ति) है (हि) क्योंकि (अणुप्रमाणात्) अणुपरिमाणवाले

(अणीयान्) परमसूक्ष्म (अप्रतर्क्यम्) तर्कसे निश्चय में न आनेवाला [अस्ति] है ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे नचिकेतः! कोई कहते हैं कि—आत्मा है, कोई कहते हैं नहीं है, कोई कहते हैं कर्त्ता है, कोई कहते हैं कर्त्ता नहीं है, कोई कहते हैं शुद्ध है और कोई कहते हैं अशुद्ध है, इसप्रकार वादी लोग आत्माके विषयमें अनेकों प्रकारका वितण्डावाद करते हैं, इसकारण किसी प्रवीणतारहित हीन पुरुषके आत्मतत्त्वका उपदेश करने पर उससे किसीको भी आत्माका भलीप्रकार ज्ञान नहीं होता है, जबतक कोई सूक्ष्मदर्शी आत्मतत्त्वज्ञानी इसका उपदेश न करे तबतक इस आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं होता, क्योंकि—आत्मा तो सूक्ष्मसे भी परमसूक्ष्म है इसकारण वह अपनी बुद्धिसे की हुई तर्कनाका अविषय है ॥ ८ ॥

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ। यान्त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(प्रेष्ठ) प्रियतम (याम्) जिसको (त्वम्) तू (आपः) प्राप्त हुआ है (एषा) यह (मतिः) आत्मनिष्ठा (तर्केण) तर्क करके (न) नहीं (आपनेया) प्राप्त करने योग्य है (अन्येन) अन्य करके (प्रोक्ता एव) कही हुई ही (सुज्ञानाय)

सुन्दर ज्ञानकी प्राप्तिके लिये [भवति] होती है (नचिकेतः) हे नचिकेतः (बत) हर्षकी बात है [त्वम्] तू (सत्यधृतिः) सच्ची धारणावाला (असि) है (नः) हमको (त्वादृक्) तेरासा (प्रष्टा) प्रश्न-कर्त्ता (भूयात्) हो ॥ ६ ॥

(भावार्थ)—हे परम प्यारे ! जो बुद्धि तुझको प्राप्त हुई है, यह बुद्धि केवल तर्कसे प्राप्त नहीं होसकती, किन्तु शास्त्रको जाननेवाले आचार्यके उपदेश और शास्त्रके विचारसे उत्पन्न होकर यह भले प्रकार आत्मज्ञानका साधन बन जाती है। तुमने जो मेरे वरदानसे बुद्धि पाई है, यह ही तर्ककी अगम्य बुद्धि है, बड़े आनन्दकी बात है जो तुमने सत्य वस्तु आत्मज्ञानके धारणका निश्चय किया है, हे नचिकेतः ! मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ, कि—मुझको तुम्हारी समान ही तत्त्वका प्रश्न करने वाले ही मिला करें ॥ ६ ॥

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं नह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत् । ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ—(शेवधिः) खजाना (अनित्यम्) अनित्य है (इति) ऐसा (अहम्) मैं (जानामि) जानता हूँ (हि) निःसन्देह (अध्रुवैः) अनित्य पदार्थोंसे (ध्रुवम्) नित्य पदार्थ (नहि)

नहीं (प्राप्यते) पाया जाता है (ततः) तिसकारण (मया) मैंने (अनित्यैः) अनित्य (द्रव्यैः) द्रव्यों करके (नाचिकेतः) नाचिकेत नामक (अग्निः) अग्नि (चितः) चयन किया है (तेन) तिसके द्वारा (नित्यम्) बहुतकाल रहनेवाले अमरपदको (प्राप्त-वान्-अस्मि) प्राप्त हुआ हूँ ॥ १० ॥

भावार्थ—प्रसन्न हुए यमराज फिर कहने लगे कि—हे नचिकेतः ! कर्मोंका फल रूप खजाना अनित्य है, यह मैं जानता हूँ और अनित्य पुत्र पशु आदिके द्वारा नित्यवस्तु आत्मा नहीं मिल सकता, यह भी मैं जानता हूँ, तथापि मैंने अनित्य द्रव्य पशु आदि के द्वारा नाचिकेत नामक अग्निका साधन किया है, और तिस साधनाके द्वारा मैंने अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा इस नित्य यमपदवीको पाया है ॥ १० ॥

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम् । स्तोमं महदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नाचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(नचिकेतः) हे नचिकेतः ! (उरुगायम्) विस्तीर्ण और उत्तम आत्माको (दृष्ट्वा) देखकर (धृत्वा) धीरताके द्वारा (धीरः) अटल होता हुआ (कामस्य) सकल कामनाओंकी (आप्तिम्) प्राप्तिको (जगतः) जगत्की (प्रतिष्ठाम्) आश्रय (क्रतोः) यज्ञके [फलम्] फल (अनन्त्यम्)

अनन्त (अभयस्य) अभयके (पारम्) पार (स्तोमम्) स्तुति योग्य (महत्) बड़े भारी संसारके भागको (अत्यस्राक्षीः) त्यागता हुआ ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-हे नचिकेतः! मैंने जो अमर-पदवी पाई है, उसमें मुझको सब कामना प्राप्त हुई हैं मैं सब जगत्का आश्रय हूँ, यज्ञका फल इससे अधिक नहीं होसकता, मुझे अभयको परमपदवी मिली है, सकल प्राणी मेरी स्तुति करते हैं तथा अणिमादिक सिद्धियोंका बड़ा भारी ऐश्वर्य मिला है, यह सब मैं तुमको देता था, परन्तु तुमने इन सब पदार्थोंको अनित्य जान कर त्याग दिया और केवल आत्मतत्त्व को ही सबसे उत्तम और बड़ा जानकर तुम धीरता को धारण करे हुए अटल रहे, इस तुम्हारे धैर्यकी मैं कहाँ तक प्रशंसा करूँ ? वास्तवमें तुम सर्वोत्तम गुणोंसे युक्त पुरुष हो ॥ ११ ॥

तन्दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठम्पुराणम्। अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्ष-शोकौ जहाति ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(धीरः) बुद्धिमान् (दुर्दर्शम्) कठिनतासे देखनेमें आनेवाले (गूढम्) बाहरी पदार्थोंके ज्ञानसे जाननेमें न आनेवाले (अनुप्रविष्टम्) सबमें पुरे हुआ (गुहाहितम्) बुद्धिरूप गुफा में स्थित (गह्वरेष्ठम्) संकटमें स्थित (पुराणम्) पुरातन (तम्) उस (देवम्) आत्मदेवको (अध्या-

त्मयोगाधिगमेन) अध्यात्मयोगकी प्राप्तिसे (मत्वा) अनुभव करके (हर्षशोकौ) हर्ष और शोक को (जहाति) त्यागता है ॥ १२ ॥

भावार्थ-हे नचिकेतः! यह आत्मतत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण दीखना कठिन है, बड़ा गहन है, बाहरी पदार्थोंके ज्ञानसे जाननेमें नहीं आता, विचारबुद्धि होने पर जाना जाता है, इसकारण सब की बुद्धिरूपी गुहामें स्थित है, मानो बड़े दुर्गम देशमें स्थित है, जो धीर पुरुष ऐसे आत्माको अध्यात्मयोग कहिये चित्तको विषयोंसे खेंच कर आत्मवस्तुमें समाधिके द्वारा जान जाता है वह हर्ष शोक आदि द्वन्द्वोंके पार होजाता है ॥ १२ ॥

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेत-
माप्य स मोदते मोदनीयꣳ हि लब्ध्वा विवृत-
ꣳ सद्म नचिकेतसं मन्ये ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मर्त्यः) मनुष्य (धर्म्यम्) सर्वधर्मस्वरूप (एतत्) इस आत्मवस्तु को (श्रुत्वा) सुनकर (सम्परिगृह्य) भलीप्रकार ग्रहण करके (एतत्) इस (अणुम्) सूक्ष्म आत्माको (प्रवृह्य) शरीर आदिसे भिन्न करके (आप्य) पाकर (सः) वह (मोदनीयम्) हर्षयोग्यको (लब्ध्वा) पाकर (मोदते) प्रसन्न होता है (नचिकेतसम्) नचिकेता को (विवृतम्) खुलेहुए द्वारवाले (सद्म) घरको (मन्ये) मानता हूं ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-हे नचिकेतः ! मैं तुम्हारे अर्थ जिस आत्मतत्त्वका उपदेश करूंगा उस सकल धर्मस्वरूप वा परमधर्मस्वरूप वा धर्मसे प्राप्त होनेवाले वा धर्म की समान सूक्ष्म आत्माको मरणधर्मी मनुष्य, गुरु से सुनकर-भलीप्रकार आत्मभावसे ग्रहण करके, तथा उद्यमपूर्वक शरीरादिसे भिन्न करके निर्लेप स्वरूपसे पाजाता है, वह उस हर्षदाताको पाकर परमानन्द पाता है। हेनचिकेतः ! मैं तुझको भी ऐसेही, सन्मुख ही खुला हुआ है ब्रह्मरूपी भवनका द्वार जिसके ऐसा मानताहूँ अर्थात् तू मोक्षका अधिकारी है ॥ १३ ॥

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृता-कृतात् । अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्)जो (धर्मात्) धर्मसे (अन्यत्र) और जगह (अधर्मात्) अधर्मसे (अन्यत्र) भिन्न (अस्मात्) इस (कृताकृतात्) कार्य कारणसे (अन्यत्र) पृथक् (च) और (भूतात्) भूतकालसे (च) और (भव्यात्) भविष्यत्कालसे (अन्यत्र) अलग (अस्ति) है (तत्) उसको (पश्यसि) देखते हो (तत्) तिसकारण (वद) कहो ॥ १४ ॥

(भावार्थ)-यह सुनकर नचिकेताने कहाकि हे यमराज। यदि आप मुझको आत्मतत्त्वके ग्रहण करने

के योग्य पात्र समझते हैं और यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मेरे अर्थ आत्मतत्त्वका उपदेश करिये, जो आत्मवस्तु शास्त्रमें कहेहुए धर्मानुष्ठान और अधर्माचरणके फलसे भिन्न, कार्य कारण, भूत और भविष्यत् इन सबसे अलग है, उस ब्रह्म वस्तुको आप जानते हैं, इसकारण मेरे अर्थ उसका वर्णन करिये ॥ १४ ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ--(सर्वे) सब (वेदाः) वेद (यत्पदम्) जिसपदको (आमनन्ति) वर्णन करते हैं (च) और (सर्वाणि) सब (तपांसि) तप (यत्) जिस को (वदन्ति) कहते हैं (यत्) जिसका (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य को (चरन्ति) करते हैं (तत्) उस (पदम्) पदको (ते) तेरे अर्थ (संग्रहेण) संक्षेपसे (ब्रवीमि) कहता हूं (इति) इसप्रकार (एतत्) यह पद (ओम्) ओम् का वाच्य है ॥१५॥

(भावार्थ)-नचिकेताके इसप्रकार कहनेपर यमराज कहनेलगे कि-सब वेद जिसको प्राप्त करने योग्य कहकर उपदेश करते हैं, जिसको पानेके लिये ही सब प्रकारकी तपस्या की जाती है, जिसको पाने की इच्छासे गुरुके यहां निवास करके ब्रह्मचर्यका

पालन करते हैं, वह ब्रह्मपद मैं तुम्हारे अर्थ संक्षेप से कहता हूं, वह आत्मा ॐकाररूप है ॥ १५ ॥

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ।

अन्वय और पदार्थ (हि) निश्चय (एतत्) यह (एव) ही (अक्षरम्) अविनाशी (ब्रह्म) अपरब्रह्म है (एतत् एव) यह ही (अक्षरम्) अविनाशी (परम्) परब्रह्म है (एतत् एव) इसही (अक्षरम्) अविनाशी को (ज्ञात्वा) जान कर (यः) जो (यत्) जो (इच्छति) चाहता है (तस्य) उसका (तत्) वह (भवति) होता है ॥ १६ ॥

(भावार्थ)—यह ॐकार ही अविनाशी अपर [सगुण] ब्रह्म है यह ॐकार ही अविनाशी पर [निर्गुण] ब्रह्म है, यह ही अविनाशी ब्रह्म है, ऐसा जानकर जो उपासना करता है वह जब अपरब्रह्म को जानना चाहता है तो अपर [सगुण] ब्रह्मको जान लेता है और परब्रह्मको जानना चाहता है तो परब्रह्मको जान लेता है ॥ १६ ॥

एतदेवालम्बनं श्रेष्ठमेतदेवालम्बनं परम् ।
एतदेवालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते १७

अन्वय और पदार्थ —(एतत्-एव) यह ही (आलम्बनम्) आश्रय (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ है (एतत् एव) यह ही (आलम्बनम्) आश्रय (परम्)

दूसरा है (एतत्-एव) इस ही (आलम्बनम्) आश्रयको (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्मलोक में (महीयते) महिमा पाता है ॥ १७ ॥

भावार्थ–यह ॐकाररूप आलम्बन ही ब्रह्मको पानेके सकल आश्रयोंमें श्रेष्ठ है अर्थात् उपासनाका प्रतीक है और यह ही परब्रह्मका बोध करानेवाला आश्रय है, इसप्रकार इस आलम्बनको जान कर साधक परब्रह्म वा अपरब्रह्म रूप ब्रह्मलोकमें महिमा पाता है अर्थात् ब्रह्मकी समान उपासना करने योग्य होजाता है ॥ १७ ॥

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ (अयम्) यह आत्मा (न) नहीं (जायते) उत्पन्न होता है (वा) या (न) नहीं (म्रियते) मरता है (विपश्चित्) सर्वज्ञ है (कुतश्चित्) किसीसे (कश्चित्) कोई (न) नहीं (बभूव) हुआ (अयम्) यह (अजः) अजन्मा (नित्यः) नित्य (शाश्वतः) क्षीणतारहित (पुराणः) वृद्धिरहित है (शरीरे) शरीरके (हन्यमाने) नाशको प्राप्त होतेहुए (न) नहीं (हन्यते) नाशको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

(भावार्थ)—इस सदा चेतनस्वरूप रहने वाले आत्माका जन्म नहीं होता है, और इसका मरण भी,

नहीं होता है; यह सर्वज्ञ है, यह कभी किसी अन्य कारणसे उत्पन्न नहीं हुआ और अन्य पदार्थके रूपका भी नहीं हुआ, इस कारण यह आत्मा अजन्मा है, नित्य है, इसमें कभी क्षीणता नहीं होती, जो वस्तु अवयवोंकी वृद्धिसे पढ़ती है वही नई कहलाती है, जैसे कि–घड़ा वस्त्र आदि, परन्तु आत्मा ऐसा नहीं है इसकारण उसको पुराण कहते हैं, सार यह है कि–आत्मा सब प्रकारके विकारोंसे रहित है, इसीकारण शस्त्र आदिसे शरीरका वध होने पर भी आत्माका वध नहीं होता है, किंतु शरीर में स्थित भी आत्मा आकाशआदिकी समान असंग रहता है ॥ १८ ॥

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

अन्वय और पदार्थ–(चेत्) यदि (हन्ता) मारने वाला (हन्तुम्) वध करनेको (मन्यते) मानता है (चेत्) यदि (हतः) वध किया हुआ (हतम्) अपनेको मारागया (मन्यते) मानता है (तौ) वह (उभौ) दोनों (न) नहीं (विजानीतः) जानते हैं (अयम्) यह (न) नहीं (हन्ति) मारता है (न) नहीं (हन्यते) मारा जाता है १९

भावार्थ—जो पुरुष शरीरको ही आत्मा समझता है वह हो मैं आत्माका हनन करूँगा ऐसा

मानता है और कोई, किसीको दूसरे पुरुषसे मरण होते हुए देख कर आत्मा मारा गया, ऐसा मान लेता है, परन्तु वास्तवमें यह दोनों अज्ञानी हैं, आत्माके स्वरूपको जानते ही नहीं, क्योंकि— आत्मा विकाररहित पदार्थ है, इसकारण वह न किसीका विनाश करता है और न किसीसे विनष्ट होता है ॥ १९ ॥

अणोरणीयान् महतो महीयानात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥२०॥

अन्वय और पदार्थ (अणोः) सूक्ष्मसे (अणीयान्) अतिसूक्ष्म (महतः) महान्से (महीयान्) अतिमहान् (आत्मा) आत्मा (अस्य) इस (जन्तोः) प्राणीके (गुहायाम्) हृदयमें (निहितः) स्थित है (तम्) उस (आत्मनः) आत्माकी (महिमानम्) महिमाको (धातुः) मनके (प्रसादात्) निर्मल होनेसे (अक्रतुः) निष्काम (वीतशोकः) शोकरहित पुरुष (पश्यति) देखता है ॥ २० ॥

भावार्थ—आत्माको जाननेका प्रकार कहते हैं कि यह सूक्ष्म वस्तुसे भी परमसूक्ष्म है और बड़ी वस्तुसे भी बहुत ही बड़ा है, यह आत्मा ब्रह्मसे लेकर चींटी पर्यन्त सकल प्राणियोंके हृदयरूप गुफामें स्थित है, जो पुरुष कामनारहित है अर्थात् जिसकी बुद्धि

बाहरी विषयोंसे हट गई है वह मनके निर्मल होने पर आत्माकी महिमाका दर्शन पासकता है अर्थात् आत्मा वृद्धि क्षय आदिसे रहित है इस बातको जान सकता है और ऐसी शक्ति होजाने पर उसको लाभ हानि आदिके कारण हर्ष शोक नहीं होता है ॥२०॥

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥२१॥

अन्वय और पदार्थ-[आत्मा] आत्मा (आसीनः) स्थित [सन्-अपि] होताहुआ भी (दूरम्) दूरको (व्रजति) जाता है (शयानः) अचल [सन्-अपि] होता हुआ भी (सर्वतः) सब ओर (याति) जाता है (मदामदम्) हर्षसहित और हर्षरहित (तम्) उस (देवम्) देवको (मदन्यः) मुझसे अन्य (कः) कौन (ज्ञातुम्) जाननेको (अर्हति) योग्य है ॥ २१ ॥

(भावार्थ)-आत्मा स्थिर होकर भी मन आदि की उपाधिके साथ मिल कर ब्रह्मलोकपर्यन्त दूर जाता है. और शयान अर्थात्- अचल होकर भी स्वप्न आदिमें इन्द्रियोंके साथ मिलकर सब ओर विषयोंमें जाता है, आत्मामें विरुद्ध धर्म रहते हैं उपाधिके कारण कहीं हर्षयुक्त है तो कहीं शोकयुक्त है, ऐसे नानारूपसे भासनेवाले आत्माको मुझसे अन्य और कौन जान सकता है ? ॥ २१ ॥

अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनवस्थेषु) अनित्य (शरीरेषु) शरीरोंमें (अवस्थितम्) स्थित (अशरीरम्) शरीररहित (महान्तम्) बड़े (विभुम्) सर्वव्यापक (आत्मानम्) आत्माको (मत्वा) जानकर (धीरः) बुद्धिमान् (न) नहीं (शोचति) शोक करता है ॥ २२ ॥

(भावार्थ)—देव पितर मनुष्य आदिके अनित्य शरीर में स्थित होकर भी जो वास्तवमें अशरीरी कहिये नित्य निर्विकार है, महान् और आकाशको समान सर्वव्यापक है, जो बुद्धिमान् इस आत्माके स्वरूपको, मैं आत्मा हूँ, इसप्रकार दृढभावसे जान जाताहै उसको कभी शोक नहीं करना पड़ता है २२

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ॥ २३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (प्रवचनेन) वेदके पढ़नेसे (न) नहीं (लभ्यः) प्राप्त होनेयोग्य है (मेधया) ग्रन्थके अर्थको धारण करनेकी शक्तिसे (न) नहीं (बहुना) बहुतसे (श्रुतेन) शास्त्रोंको सुननेसे [च] भी

(न) नहीं [लभ्यः] प्राप्त होने योग्य है (एषः) यह परमात्मा (यम्) जिसको (वृणुते) वरण करता है (तेन-एव) उस करके ही (एषः) यह (लभ्यः) प्राप्त होनेयोग्य है (तस्य) उसके[समीपमें] समीपमें (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (स्वाम्) अपने (तनूम्) स्वरूपको (वृणुते) प्रकाशित करता है ॥ २३ ॥

(भावार्थ)-यह आत्मा अनेकों वेदोंके पाठकरनेमात्र से प्राप्त नहीं होता, ग्रन्थके उपदेशको धारण करने की शक्तिमात्रसे नहीं प्राप्त होता है और वेदान्तके सिवाय अन्य बहुतसे शास्त्रोंका अभ्यास करनेसे भी नहीं प्राप्त होता है, किन्तु साधक जिस आत्माकी प्रार्थना करता है उस आत्माके द्वारा ही इस आत्मा का जानना बनसकता है,जो आत्माका साक्षात्कार करना चाहता है, उसके समीपमें आत्मा अपने स्वरूपको आप ही प्रकाशित करदेता है ॥ २३ ॥

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ॥
नाशांतमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् २४

अन्वय और पदार्थ-(दुश्चरितात्) पापकर्मसे (अविरतः) दूर न होनेवाला (न) नहीं (अशान्तः) शान्तिको प्राप्त न होनेवाला(न) नहीं (असमाहितः) चित्तको एकाग्र न करनेवाला (न) नहीं (वा) या (अशान्तमानसः) अशान्त मनवाला (अपि) भी (न) नहीं [प्राप्नोति] पाता है (एनम्)

इसका (प्रज्ञानेन) परमज्ञानके द्वारा (आप्नुयात्) प्राप्त होता होय ॥ २४ ॥

(भावार्थ)-जो पुरुष पाप कर्मोंमें आसक्त हो रहे हैं, जो इन्द्रियोंकी चंचलताके कारण सदा अशांत रहते है, जिनके चित्त विक्षेपोंसे व्याकुल रहते हैं और जो सदा विषयोंमें मग्न रहते हैं वे आत्मस्वरूपको नहीं पासकते, परन्तु जो पापकर्मसे बचेहुए हैं, जिनकी इन्द्रियें चंचल नहीं हैं. जिनका चित्त सावधान है और मन शांत है, वे ही श्रेष्ठ गुरुको पाकर ज्ञानके प्रभावसे आत्मस्वरूप को पाजाते हैं २४

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनम् ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥ २५ ॥

अन्वय और पदार्थ---(यस्य) जिसका (ब्रह्म) ब्राह्मण (च) और (क्षत्रम्) क्षत्रिय (च) भी (उभे) दोनों (ओदनम्) अन्न (भवतः) होते हैं (मृत्युः) मृत्यु (यस्य) जिसका (उपसेचनम्) शाकरूप है (सः) वह (यत्र) जिस शुद्धचिद्रूपमें [अस्ति] है (तम्) उसको (कः) कौन [साधनहीनः] साधनहीन (इत्था-इत्थम्) इसप्रकारका है ऐसा (वेद) जानता है ॥२५॥

(भावार्थ)-जगत्की स्थितिके कारणरूप धर्म अधर्म को निरूपण करनेवाले ब्राह्मण और पालन करनेवाले क्षत्रिय आदि हिरण्यगर्भ और प्रकृतिरूप सारा जगत् जिस आत्माका अन्न [भोजन] स्वरूप और सबका संहार करनेवाला मृत्यु भी जिस आत्माके ज्ञानको

छुपड़नेके दूध आदि की समान वा शाक आदिकी समान है, वह आत्मा जिस चिदानन्दस्वरूपमें रहता है उसको साधनवान् पुरुषकी समान साधन से हीन साधारण बुद्धि वाला कौन पुरुष जानसकता है अर्थात् कोई नहीं जानसकता, किन्तु साधन सम्पन्न पुरुष ही आत्माके वास्तविक स्वरूपको जानसकता है ॥ २५ ॥

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहाम्प्रविष्टौ परमे परार्द्धे । छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ- (सुकृतस्य) अपने किये हुए कर्मके (ऋतम्) अवश्यंभावी फलको (पिबंतौ) भोगतेहुए (लोके) शरीररूप लोकमें (परमे) परमोत्तम (परार्द्धे) हृदयाकाशमें (गुहाम्-प्रविष्टौ) बुद्धिरूप गुफाके विषैं प्रवेश किये हुए [जीवपरमौ] जीव और परमात्मा (छायातपौ) छाया और धूप की समान [तिष्ठतः] स्थित हैं (इति) ऐसा (ब्रह्मविदः) ब्रह्मवेत्ता (च) और (ये) जो (त्रिणाचिकेताः) तीनवार नाचिकेत अग्निके द्वारा अनुष्ठान करनेवाले (पञ्चाग्नयः) गृहस्थ [सन्ति] हैं [ते-अपि] वे भी (वदन्ति) कहते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ--जीव और परमात्मा ये दोनों अपने किये हुए कर्मके फलको भोगते हैं, उनमें जीव ही अपने

कर्मके फलको साक्षात्सम्बन्धसे भोगता है और परमात्मा भोगकर्त्ता न होने पर भी जीवके सम्बन्धसे भोगनेवालासा कहा जाता है, [अपराधीकी रक्षा करनेवाला सारथी निरपराध होनेपर भी साधारण लोगोंकी दृष्टिमें अपराधीकी समान दण्ड भोगने का अधिकारी प्रतीत होता हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है] इन दोनोंका दर्शन इस शरीररूप लोकमें हो बुद्धिरूप गुफामें होता है, ये जीव और परमात्मा दोनों परमोत्तम हृदयाकाशमें प्रवेश किये हुए हैं, छाया और धूपकी समान जीव और परमात्मा विरुद्ध धर्मवाले हैं अर्थात् जीव संसारी है और परमात्मा संसारी नहीं है, ऐसा ब्रह्मज्ञानी पुरुष कहते हैं और केवल अकर्मी ब्रह्मवेत्ता ही ऐसा नहीं कहते हैं किन्तु जो पञ्चाग्नि गृहस्थ हैं जिन्होंने कि तीन वार नचिकेता अग्निके द्वारा अनुष्ठान किया है वे भी ऐसा ही कहते हैं ॥ १ ॥

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् ।
अभयंतितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (ईजानानाम्) कर्म करने वालोंका (सेतुः) पार करने वाला है [तम्] उस (नाचिकेतम्) नाचिकेत अग्निको (यत्) जो (तितीर्षताम्) तरनेकी इच्छा करने वालोंका (अभयम्) निर्भय (पारम्) पार है [तत्] उस (अक्षरम्) अविनाशी (ब्रह्म) ब्रह्मको

[ज्ञातुम्] जाननेको (शकेमहि) समर्थ हैं ॥ २ ॥

(भावार्थ)—जो नचिकेता नामवाला अग्नि, कर्म करनेवाले यजमानोंको दुःखसागरसे तारनेको सेतुरूपी है, उस नचिकेता नामक अग्निको जानने और चयन करनेमें हम समर्थ हैं और जो भयशून्य तथा संसारको तरनेकी इच्छा करने वाले ब्रह्मज्ञानियोंका अवलम्बन है उस अविनाशी ब्रह्मको जानने में भी हम समर्थ हैं, इसकारण हमको अपने अधिकारके अनुसार इन दोनोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ॥ २ ॥

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥३॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मानम्) आत्माको (रथिनम्) रथी (शरीरम्-एव) शरीरको ही (तु) तो (रथम्) रथ (विद्धि) जान (बुद्धिम्-तु) बुद्धिको तो (सारथिम्) सारथि (च) और मनः, एव) मनको ही [प्रग्रहम्] लगाम (विद्धि) जान ॥

भावार्थ--कर्मफलको भोगनेवाले संसारी आत्मा को रथका स्वामी जानो और शरीरको रथ जानो क्योंकि-शरीरमें जीवात्मा रहता है, जैसे रथको घोड़े खेंचते हैं, तैसे ही शरीररूपी रथको भी सदा इन्द्रियेंरूपी घोड़े खेंचते रहते हैं, निश्चयवाली बुद्धि को सारथिरूप जानो, क्योंकि-शरीरको जहां तहां [illegible] करनेवाली बुद्धि ही है और

संकल्पविकल्परूप मनको लगाम जानो, क्योंकि-जैसे लगामके पकड़नेसे घोड़े अपने काममें लगजाते हैं, तैसे ही नाक कान आदि इन्द्रियें भी मनसे प्रेरित होकर ही अपने काममें लगती हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥४॥

अन्वय और पदार्थ-(मनीषिणः) चतुर पुरुष (इन्द्रियाणि) इन्द्रियोंको (हयान्) घोड़े (तेषु) उन इन्द्रियोंमें [गृहीतान्] ग्रहण किये हुए (विषयान्) विषयोंको (गोचरान्) मार्ग (आहुः)कहते हुए (आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम्) शरीर इन्द्रियें और मनसे युक्त (आत्मानम्) आत्माको (भोक्ता इति) भोक्ता इस नामसे (आहुः) कहते हुए ॥ ४ ॥

भावार्थ-ऐसे रथकी कल्पना करनेमें चतुर पुरुष चक्षु आदि इन्द्रियोंको घोड़े कहते हैं, क्योंकि-जैसे घोड़े रथको खेंचकर लेजाते हैं तैसे ही इन्द्रियें भी शरीरको खेंचकर लेजाती हैं, इन इन्द्रियरूप घोड़ोंके चलनेका मार्ग रस आदि विषय हैं, क्योंकि-यह सदा विषयोंमें ही फिरती रहती हैं, शरीर इन्द्रियें और मनसे युक्त हुए आत्माको भोक्ता कहिये संसारी अर्थात् इस शरीररूपी रथका अधिष्ठाता कहते हैं, केवल आत्मामें भोक्तापन नहीं है किन्तु उसको मन बुद्धि आदिका किया हुआ ही भोक्तापन है ॥ ४ ॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥५॥

अन्वय और पदार्थ—(तु) परन्तु (यः) जो (सदा) निरन्तर (अयुक्तेन) असावधान (मनसा) मन करके [सह] सहित (अविज्ञानवान्) विवेक-हीन (भवति) होता है (तस्य) उसकी (इन्द्रियाणि) इन्द्रियें (सारथेः) सारथिके (दुष्टाश्वा इव) दुष्ट घोड़ोंके समान (अवश्यानि) अवश [भवन्ति] होती हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—बुद्धि नाम वाला सारथि यदि चतुर नहीं होता है अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्तिके विवेक से हीन होता है तथा लगामरूप मन यदि असावधान होता है अर्थात् छूटा पड़ा रहता है तो उस मूढ़ सारथिके इन्द्रियरूप घोड़े, सारथिके वशसे बाहर हुए दुष्ट घोड़ोंकी समान वशमें से निकल जाते हैं तब विषयरूप मार्गमेंसे उनको लौटाना कठिन होजाता है ॥ ५ ॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ६

अन्वय और पदार्थ—(तु) किन्तु (यः) जो (सदा) सर्वदा (युक्तेन) सावधान (मनसा) मन करके [सह] सहित (विज्ञानवान्) विवेकी (भवति) होता है (तस्य) उसकी (इन्द्रियाणि)

इन्द्रियें (सारथेः) सारथिके (सदश्वा इव) श्रेष्ठ घोड़ोंकी समान (वश्यानि) वशीभूत [भवन्ति] होती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—यदि बुद्धि नामक सारथी विवेकी होता है और लगामरूप मन सावधान अर्थात् उस के हाथमें होता है तो उस चतुर सारथिके इन्द्रिय रूप घोड़े, सारथिके वशीभूत घोड़ोंकी समान वश में रहते हैं अर्थात् उनको विषयरूप प्रवृत्तिमार्गमेंसे लौटाकर निवृत्तिमार्गमेंको लेजाया जासकता है॥६॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कःसदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ७

अन्वय और पदार्थ–(यः–तु) जो तो (अविज्ञानवान्) अविवेकी (अमनस्कः) असावधान मनवाला (सदा) सर्वदा (अशुचिः) अपवित्र (भवति) होता है (सः) वह (तत्) उस (पदम्) ब्रह्मपदको (न) नहीं (आप्नोति) प्राप्त होता है (च) और (संसारम्) संसारको (अधिगच्छति) प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ) जो रथका स्वामी जीव; विवेकहीन बुद्धिरूप सारथीवाला होता है, जिसकी कि-मनोरूप लगाम छूटी हुई अर्थात् सावधानतारहित और सदा मलिन होती है यह रथी पहले कहेहुए अविनाशी ब्रह्मपदको नहीं पाता है और इतनाही नहीं किन्तु जन्ममरणरूप संसारको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदाशुचिः
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ८

अन्वय और पदार्थ-(यः,तु) जो तो (विज्ञानवान्) विवेकी (समनस्कः) सावधान मनवाला (सदा) सर्वदा (शुचिः) पवित्र (भवति) होता है (सः तु) वह तो (तत्) उस (पदम्) पदको (आप्नोति) प्राप्त होता है (यस्मात्) जिससे (भूयः) फिर (न) नहीं (जायते) जन्मता है ।

(भावार्थ) -जो विवेकवान् बुद्धिरूप सारथि और एकाग्र चित्तवाला तथा सदा पवित्र रहनेवाला रथका स्वामी है वह ही उस अक्षर ब्रह्मपदको प्राप्त होता है कि-जिस पदसे गिरकर फिर संसारमें जन्म नहीं लेता है ॥ ८ ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमंपदम् ९

अन्वय और पदार्थ-(यः तु) जो तो (विज्ञानसारथिः) विज्ञान है सारथि जिसका ऐसा (मनःप्रग्रहवान्) मनोरूपी लगामवाला (नरः) मनुष्य [अस्ति] है (सः) वह (अध्वनः) संसारमार्गके (पारम्) पारकी समान (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (तत्) उस (परम्) पर (पदम्) पदको (आप्नोति) प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-जो विद्वान् पुरुष, प्रत्यक्ष ब्रह्मज्ञान

रूप विवेकवाली बुद्धिरूप सारथिसे युक्त है और मनरूप लगाम जिसके सारथिके वशमें है अर्थात् सावधान है वह पुरुष संसारगतिके परलेपारकी समान सर्वव्यापक परमात्मा वासुदेवके परम पदको प्राप्त होजाता है, फिर उसको जन्म मरण आदि संसारका कोई बन्धन नहीं रहता है॥ ९॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसश्च परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः १०

अन्वय और पदार्थ-(अर्थाः) विषय (हि) निश्चय (इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रियों से (पराः) श्रेष्ठ हैं (च) और (मनः) मन (अर्थेभ्यः) विषयोंसे (परम्) श्रेष्ठ है (च) और (बुद्धिः) बुद्धि (मनसः) मनसे (परा) श्रेष्ठ है (महान्) महान् (आत्मा) आत्मा (बुद्धेः) बुद्धिसे (परः) श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

(भावार्थ)-निःसन्देह रूप रस आदि विषय इन्द्रियोंसे सूक्ष्म और श्रेष्ठ हैं, क्योंकि--इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति विषयोंके अधीन है, उन विषयोंसे मन सूक्ष्म और श्रेष्ठ है क्योंकि-मन विषयोंको स्वाधीन करता है, मनसे बुद्धि सूक्ष्म और श्रेष्ठ है, क्योंकि वह मनको निश्चय कराने वाली और नियामक है और बुद्धिसे महान् आत्मा अर्थात् अव्यक्तसे प्रथम उत्पन्न हुआ सूत्रात्मा नामका हिरण्यगर्भका तत्त्व बड़ा और श्रेष्ठ है क्योंकि-वह सबकी बुद्धियोंका नियामक तथा बोधरूप है और सब अबोधरूप हैं

(तु) किन्तु (सूक्ष्मदर्शिभिः) सूक्ष्मदर्शियोंके द्वारा (अग्रया) एकाग्रतायुक्त (सूक्ष्मया) सूक्ष्म (बुद्ध्या) बुद्धि करके (दृश्यते) देखाजाता है ॥ १२ ॥

(भावार्थ)–यह परमात्मा पुरुष ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यंत सकल चराचर भूतोंमें विराजमान होकर भी, अज्ञोंके कल्पना कियेहुए अनेकों आकाररूप अविद्या से ढकाहुआ होनेके कारण प्रकाशित नहीं होता है, परन्तु सूक्ष्मदृष्टि वाले विवेकी पुरुष एकाग्रतावाली निर्मल उत्तम और सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा इस आत्मा का दर्शन कर लेते हैं ॥ १२ ॥

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि। ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छांत आत्मनि ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(प्राज्ञः) विवेकी (वाक्) वाणीको (मनसि) मनमें (यच्छेत्) विलीन करै (तत्) उसको (ज्ञाने) ज्ञानस्वरूप (आत्मनि) बुद्धिमें (यच्छेत्) विलीन करै (ज्ञानम्) बुद्धिको (महति) महान् (आत्मनि) हिरण्यगर्भमें (नियच्छेत्) विलीन करै (तत्) उसको (शान्ते) शांत (आत्मनि) आत्मामें (यच्छेत्) विलीन करै १३

भावार्थ-विवेकी पुरुष वाक् आदि सकल इंद्रियोंको मनमें लेजाकर ठहरादेय, उनको मनसे अलग न मानै उस मनको ज्ञानस्वरूप बुद्धिमें लीन करदेय अर्थात्

मनको बुद्धिसे अलग न विचारै, उस ज्ञानस्वरूप बुद्धिको महान् आत्मा अर्थात् हिरण्यगर्भ मायोपाधिक जीवात्मामें और उस जीवात्माको सकल विकाररहित, शान्त, सबके भीतर वर्त्तमान तथा सब की बुद्धियोंके विश्वासके साक्षी परमात्मामें विलीन करै अर्थात् परमात्मासे अलग न मानै ॥ १३ ॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत । क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदंति।

अन्वय और पदार्थ -[जन्तवः] हे प्राणियों ! [अज्ञाननिद्रातः] अज्ञानकी निद्रासे (जाग्रत) जागो (उत्तिष्ठत) उठो (वरान्) श्रेष्ठोंको (प्राप्य) पाकर [परमात्मानम्] परमात्माको (निबोधत) जानो [यथा] जैसे (क्षुरस्य) छुरेकी (निशिता) तीखी (धारा) धार (दुरत्यया) दुर्गम है [तथा] तिसीप्रकार (तत्) उस (पथः) मार्गको (कवयः) पण्डित (दुर्गम्) दुर्गम (वदन्ति) कहते हैं ।१४।

भावार्थ—इसप्रकार मिथ्या ज्ञानके कारण फैले हुए नाम रूप और कर्म आदिको आत्मपुरुषमें विलीन करके मनुष्य कृतकृत्य और परमशांत होजाता है, इसकारण हे मोक्षकी इच्छावाले प्राणियों ! तुम अविद्याकी नींदसे जागो अर्थात् विषयोंमें की आसक्तिको त्यागो और आत्माका दर्शन करनेके लिये उठ बैठो, सब अनर्थोंकी मूल कारण

भयानक अज्ञाननिद्राका नाश करो, तत्त्वज्ञानी आचार्योंको ढूंढकर और उनसे उपदेश पाकर सर्वान्तर्यामी परमात्माको "अहमस्मि—मैं हूं" इसप्रकार जानजाओ, उपेक्षा न करो, भगवती श्रुति माताकी समान कृपा करके कहती है कि तुम्हारे जाननेयोग्य विषय बड़ी सूक्ष्म बुद्धिसे प्राप्त होसकता है, जैसे छुरेकी धार कोई पैरोंसे नहीं खूंद सकता तैसेही विषयोंको त्यागनारूप तत्त्वज्ञानका मार्ग भी बड़ाही दुर्गम है, ऐसा बुद्धिमान् कहते हैं॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) जो (अशब्दम्) शब्दरहित (अस्पर्शम्) स्पर्शरहित (अरूपम्) रूपरहित (तथा) तैसे ही (अरसम्) रसरहित (च) और (अगन्धवत्) गन्धरहित (अव्ययम्) क्षीण न होने वाला (नित्यम्) नित्य (अनादि) आदिरहित (अनन्तम्) अन्तरहित (महतः) महत्तत्त्वसे (परम्) पर (ध्रुवम्) एकरस (अस्ति) है (तत्) उसको (निचाय्य) जानकर [साधकः] साधक (मृत्युमुखात्) मृत्युके मुखसे (प्रमुच्यते) छूटजाता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस परमात्म वस्तुका अति सूक्ष्मपना

दिखाते हैं, कि--जो आत्मवस्तु शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध रूप पाँच विषयोंसे छुआ भी नहीं जाता है, जो पदार्थ शब्दादि विषयोंसे युक्त होते हैं उनका ही क्षय होता है, आत्मा शब्दादि विषयों से भिन्न है, इसकारण उसका क्षय नहीं होता है. और इसीकारण वह नित्य तथा आदि अन्तसे रहित, सोपाधिक पदार्थोंके स्पर्शसे रहित, शुद्ध एकरस वस्तु है, ऐसे आत्माको जानकर पुरुष मृत्युके मुखसे छुट जाता है अर्थात् उसमें अविद्या का रचा कामना और कर्म आदि कुछ नहीं रहता है.।

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् ।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ।

अन्वय और पदार्थ-(मेधावी) बुद्धिमान् (मृत्युप्रोक्तम्) यमराजके कहे हुए (नाचिकेतम्) नचिकेताके पाये हुए (सनातनम्) सनातन (उपाख्यानम्) उपाख्यानको (उक्त्वा) कह कर (च) और (श्रुत्वा) सुनकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्मलोकमें (महीयते) पूजित होता है ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-बुद्धिमान् पुरुष यमराजके कहे हुए और नचिकेताके पाये हुए पुरातन उपाख्यानको ब्राह्मणोंको सुनाकर और श्रेष्ठ आचार्यसे सुनकर आत्मस्वरूप होकर ब्रह्मलोकमें पूजाजाता है ॥१६॥

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते,
तदानन्त्याय कल्पते ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ (यः) जो (इमम्) इस (परमम्) अत्यन्त (गुह्यम्) गूढ़ ज्ञानको (ब्रह्मसंसदि) ब्राह्मणोंकी सभामें (वा) या (श्राद्धकाले) श्राद्धके समय (प्रयतः) पवित्र हुआ (श्रावयेत्) सुनावै (तत्) वह श्राद्ध (आनन्त्याय) अनन्तफल देनेको (कल्पते) समर्थ होता है (तत्) वह (आनन्त्याय) अनन्तफल देनेको (कल्पते) समर्थ होता है ॥ १७ ॥

(भावार्थ)-और जो पुरुष ब्राह्मणकी मण्डलीमें वा श्राद्धके समय भोजन करतेहुए ब्राह्मणोंके समीप में पवित्र हो इन्द्रियों और मनको वशमें कियेहुए इस परमगोपनीय ग्रन्थको सुनाता है उसका किया हुआ श्राद्ध अनन्तकालको देनेवाला होता है ॥ १७॥

इति तृतीयावल्ली समाप्ता.

—०—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ्
पश्यति नान्तरात्मन् । कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मा-
नमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(स्वयम्भूः) परमात्मा (खानि) इन्द्रियोंको (पराञ्चि) बहिर्मुख (व्यतृणत्) हनन करता हुआ (तस्मात्) तिस कारण (पराङ्) अनात्मभूतविषयोंको (पश्यति) देखता है (अन्तरात्मन्—अन्तरात्मानम्) अन्तरात्माको (न) नहीं (पश्यति)देखता है (कश्चित्) कोई (धीरः) धीर पुरुष (आवृत्तचक्षुः) विषयों से चक्षु को हटाता हुआ (अमृतत्वम्) अमरभाव को (इच्छन्) इच्छा करता हुआ (प्रत्यक्) प्रत्यक्षीभूत (आत्मानम्) आत्माको (ऐक्षत्) देखता हुआ ॥ १ ॥

भावार्थ—जब तक मुक्तिको रोकनेवाला कारण मालूम न होजाय तब तक उसको दूर करनेका यत्न नहीं होसकता; इस कारण उस रोकने वाले कारण को बताते हैं कि—कान आदि इन्द्रियें सदा शब्दादि विषयोंको प्रकाशित करनेमें ही प्रवृत्त रहती हैं, इसकारण इनकी वृत्ति बहिर्मुख है, यदि इनकी प्रवृत्ति अन्तर्मुख होजाय तो मुक्ति मिलसकती है, परन्तु बहिर्मुख प्रवृत्ति होना इनका स्वभाव है, इन श्रोत्र आदि इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरको झुकने वाली बहिर्मुखवृत्ति बनाकर मानो ब्रह्माने इनकी हिंसा की है, क्योंकि—बहिर्मुख इन्द्रियोंका आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं होसकता और जो पराङ्मुख हैं अर्थात् विषयोंकी ओरको ही दृष्टि रखते हैं वह

अनात्मस्वरूप शब्दादि विषयोंको ही प्राप्त करते हैं, अन्तरात्माका दर्शन नहीं पासकते और जो विवेकी पुरुष हैं वह मुक्ति पानेकी इच्छा करतेहुए तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंको विषयोंसे लौटातेहुए सर्वव्यापी परमात्माका दर्शन पाजाते हैं ॥ १ ॥

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति वितस्य पाशम् । अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥२॥

अन्वय और पदार्थ-(बालाः) अल्पबुद्धि पुरुष (पराचः) बाहरी (कामान्) अभिलषित विषयों को (अनुयन्ति) अनुसरण करते हैं (ते) वह (विततस्य) विस्तार वाले (मृत्योः) मृत्युके (पाशम्) पाशको (यन्ति) प्राप्त होते हैं (अथ) और (धीराः) विवेकी पुरुष (ध्रुवम्) नित्य (अमृतत्वम्) अमरपदको (विदित्वा) जानकर (अध्रुवेषु) अनित्य पदार्थोंमें [किञ्चित् अपि] कुछ भी (न) नहीं (प्रार्थयन्ते) याचना करते हैं ॥२॥

(भावार्थ)---जो अल्पबुद्धि आत्मदर्शनसे पराङ्मुख हैं वह सब बाहरी विषयोंकी ओरको ही दौड़ते हैं और इसीकारण मृत्युके बड़े भारी पाशसे बँधजाते हैं अर्थात् जन्म-मरण-जरा-रोग आदि अनेकों अनर्थोंसे भरेहुए देह इन्द्रियादिके संयोग वियोगरूप दशाको प्राप्त होजाते हैं, इसकारण जो

विवेकी पुरुष हैं वह आत्मस्वरूप मोक्षको जानकर सकल अनित्य पदार्थोंमें से किसी भी पदार्थकी प्रार्थना नहीं करते हैं ॥ २ ॥

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते ॥
एतद्वै तत् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(येन) जिस (एतेन) इस आत्मा करके (एव) ही (रूपम्) रूपको (रसम्) रसको (गन्धम्) गन्धको (शब्दान्) शब्दोंको (स्पर्शान्) स्पर्शोंको (च) और (मैथुनान्) मैथुनके सुखोंका (विजानाति) जानता है (अत्र) यहाँ (किम्) क्या (अवशिष्यते) बाकी रहता है (एतत) यह (वै) निश्चय (तत्) वह आत्मा है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिसको जान लेने पर ज्ञानी पुरुष फिर किसी वस्तुकी याचना नहीं करते हैं उसको जाननेकी रीति कहते हैं कि—सब प्राणी आत्माके द्वारा ही रूप, रस गन्ध, शब्द, स्पर्श और मैथुनके सुखका अनुभव करते हैं, अतएव इस संसारमें ऐसा कोई पदार्थ बचा हुआ नहीं है जो आत्मासे जाना न जासके अर्थात् आत्मा प्रकाशवान् वस्तु है इसकारण वह सब पदार्थोंको प्रकाशित रखता है, हे नचिकेतः! तुमने जिस आत्माके विषयमें प्रश्न किया था, देवताओंको भी इसके विषयमें

सन्देह है, जो धर्म आदिसे भिन्न पदार्थ है, जो विष्णुका परमपद है, जिससे श्रेष्ठ दूसरी कोई वस्तु नहीं है, ऐसी यह वस्तु ही वह आत्मा है ॥ ३ ॥

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥

अन्वय और पदार्थ—(स्वप्नान्तम्) स्वप्नमें के पदार्थ समूहको (च) और (जागरितान्तम्) जागते मेंके पदार्थसमूहको (उभौ) दोनोंको (येन) जिसके द्वारा (अनुपश्यति) देखता है, [तम्] उस (महान्तम्) महान् (विभुम्) व्यापक (आत्मानम्) आत्माको (मत्वा) जानकर (धीरः) ज्ञानी (न) नहीं (शोचति) शोक करता है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-स्वप्नमें जानने योग्य वस्तु और जाग्रत् अवस्थामें जानने योग्य वस्तु, इन दोनों वस्तुओंको जिस आत्माके द्वारा देखता है, विद्वान् पुरुष उस व्यापक आत्माको 'अहम् अस्मि, मैं हूँ' इस भावसे साक्षात्कार करके शोक आदिके पार होजाता है ॥ ४ ॥

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ।
एतद्वै तत् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ (यः) जो (इमम्) इस (मध्वदम्)कर्मफलको भोगने वाले (जीवम्)

प्राण आदिके (आत्मानम्) आत्माको (अनित-कात्) समीपसे (भूतभव्यस्य) बीते हुए और होनेहारका (ईशानम्) नियन्ता (वेद) जानता है [सः] वह (ततः) तिसके अनन्तर (न) नहीं (विजुगुप्सते) रक्षा करना चाहता है (एतत्) यह (वै) निश्चय (तत्) वह आत्मा है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-जो पुरुष कर्मफलके भोगने वाले, प्राण आदिके धारनेवाले, भूत भविष्य और वर्त-मान तीनों कालमें सकल वस्तुओंके स्वामी आत्माको समीपमें अर्थात् हृदयाकाशमें जान लेता है वह इस आत्माकी रक्षा करनेकी इच्छा नहीं करता है, क्यों कि जिसने अद्वैत आत्माको जान लिया, वह फिर किसकी किससे रक्षा करना चाहेगा ? हे नचिकेतः ! तुमने जिस आत्माके विषयमें प्रश्न किया था वह आत्मा यह ही है ॥ ५ ॥

यः पूर्वन्तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत । गुहा-म्प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत एतद्वैतत्

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (अद्भ्यः) जलों से (पूर्वम्) पहिले (अजायत) उत्पन्न हुआ (तपसः) तपोरूप ब्रह्मसे (पूर्वम्) पहिले (जातम्) उत्पन्न हुआ (गुहाम्) गुहाको (प्रविश्य) प्रवेश करके (भूतेभिः) पंचभूतोंके साथ (तिष्ठन्तम्) स्थित हुए (तम्) उसको (यः) जो (व्यपश्यत्)

देखता हुआ (एतत्) यह (वै) निःसन्देह (तत्) वह ब्रह्म है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-जिस प्रत्यगात्माका पहिले ईश्वर भाव से वर्णन किया है वह ही सर्वात्मस्वरूप है, यह बात दिखाते हैं कि-जो हिरण्यगर्भ जलादि पञ्चभूतों से पहिले तपःस्वरूप ब्रह्मसे प्रथम ही उत्पन्न हुआ और देवता आदि शरीरोंको उत्पन्न करके सब प्राणियोंके हृदयाकाशरूप गुहामें प्रवेश करके शब्दादि विषयों का अनुभव करता हुआ कार्यकारणस्वरूप पञ्चभूतों के साथमें स्थित है, उसको जो मुमुक्षु देखता है वह उस प्रसंग में प्राप्त हुए ब्रह्मको ही देखता है, क्यों कि-जैसे सोनेसे बनाहुआ कुण्डल सोना ही होता है तैसे ही ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ हिरण्यगर्भ भी ब्रह्म ही है, अतः जो हिरण्यगर्भको देखता है वह ब्रह्मको ही देखता है ॥ ६ ॥

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी । गुहाम्प्रविश्यतिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत एतद्वै तत् ॥७॥

अन्वय और पदार्थ-(या) जो (देवतामयी) सकल देवस्वरूपा (अदितिः) अदिति (प्राणेन) हिरण्यगर्भरूप प्राण करके (सम्भवति) उत्पन्न होती है (या) जो (भूतेभिः) पञ्चभूतोंके साथ (व्यजायत) उत्पन्न हुई [सर्वप्राणिनाम्) सर्व प्राणियोंके (गुहाम्) हृदयाकाशमें (प्रविश्य) प्रवेश

करके (तिष्ठन्तीम्) स्थित होती हुई को [यः] जो [पश्यति] देखता है [सः] वह [तस्याः] उसके [कारणम्] कारण [ब्रह्म-एव]ब्रह्मको ही [पश्यति] देखता है (एतत्) यह (वै) निश्चय करके (तत्) वह ब्रह्म है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-जो सकल देवतास्वरूपिणी है,हिरण्यगर्भरूप प्राणस्वरूपसे उत्पन्न होती है, जो पञ्चभूतों के साथ उत्पन्न हुई है और शब्दादि विषयोंका अदन (भोग) करने से अदिति कहाती है तथा जो सकल प्राणियोंके हृदयाकाश में प्रविष्ट होकर स्थित है, उसको जो देखता है वह उसके कारणस्वरूप ब्रह्मको ही देखता है, यह ही वह ब्रह्म है ७

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः । दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः । एतद्वैतत् ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अरण्योः) अग्निको प्रज्वलित करने के काष्ठोंमें (निहितः)स्थापित (गर्भिणीभिः) गर्भिणियों करके (गर्भइव) गर्भको समान (सुभृतः) सुरक्षित (जागृवद्भिः) जागते हुए (हविष्मद्भिः) यज्ञकी सामग्रीवाले (मनुष्येभिः) मनुष्यों करके (दिवेदिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) स्तुतियोग्य (अग्निः) अग्नि है (एतत्) यह (वै) निःसन्देह (तत्) वह ब्रह्म है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-जैसे गर्भिणी स्त्रियें शुद्ध अन्न आदि का भोजन करके गर्भको सुरक्षित और पुष्ट करती हैं, तैसे ही योगी पुरुष और यज्ञकर्त्ता ऋत्विक् जिस अग्निको, अरणि नामक नीचे ऊपरके काष्ठोंमें स्थापित करते हैं अर्थात् योगी पुरुष अध्यात्मयोग-काल में जिसको अध्यात्मरूपसे अपने हृदयमें छिपा रखते हैं और जागते हुए अर्थात् प्रमादरहित कर्मिष्ठ पुरुष प्रतिदिन घृत आदि हवनकी सामग्री लिये हुए जिस अग्निकी स्तुति करते हैं वह जातवेदा अग्नि ही ब्रह्म है ॥ ८ ॥

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति । तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद् वै तत् ।

अन्वय और पदार्थ-(यतः) जिससे (सूर्यः) सूर्य (उदेति) उदित होता है (च) और (यत्र) जिसमें (च) भी (अस्तम्) अस्तको (गच्छति) प्राप्त होता है (तम्-तत्र) उसमें (सर्वे) सब (देवाः) देवता (अर्पिताः) स्थित हैं (तत्) उसको (कश्चन) कोई (उ) भी (न) नहीं (अत्येति) लांघता है (एतत्) यह (वै) निश्चय (तत्) वह ब्रह्म है ।९।

(भावार्थ)-जिस प्राणस्वरूप आत्मासे सूर्यका उदय होता है और जिस प्राणस्वरूप आत्मामें ही सूर्य अस्तको प्राप्त होता है, उसी आत्मामें सब देवताओंका प्रवेश है, उस सर्वस्वरूप ब्रह्म को कोई

भी लांघ नहीं सकता अर्थात् इस आत्मस्वरूप से भिन्न कोई भी नहीं है यह ही वह ब्रह्म है ॥९॥

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति

अन्वय और पदार्थ-(यत्-एव) जो ही (इह) यहां है (तत्) वह [एव] ही (अमुत्र) वहां है (यत्) जो (अमुत्र) वहाँ है (तत्) वह (अनु-इह) उपाधि के अनुसार यहां है (यः) जो (इह) इस ब्रह्म के विषय में (नाना-इव) नानारूपवालासा (पश्यति) देखता है (सः) वह (मृत्योः) मृत्यु से (मृत्युम्) मृत्यु को (आप्नोति) प्राप्त होता है ॥

भावार्थ-जो ब्रह्म यहाँ कार्यकारणरूप उपाधिसे युक्त हुआ, अज्ञानी पुरुषोंको सांसारिक धर्मवालासा प्रतीत होता है, वह ही अपने स्वरूपमें स्थित हुआ; वहां नित्य ज्ञानघनस्वभाव वाला, सांसारिक सकल धर्मों से रहित है और जो ब्रह्म वहां इस आत्मामें स्थित है, वह ही यहाँ नामरूप कार्य और कारणरूप उपाधिके अनुसार भासता है, अन्य नहीं है। अन्तः-करण आदि उपाधिके स्वभाव और भेददृष्टिके कारण अविद्यासे मोहित हुआ जो पुरुष इस एक-रूप ब्रह्मके विषैं "मैं परब्रह्मसे अन्य हूं और परब्रह्म मुझसे अन्य है" ऐसे भेदभावसे देखता है, वह पुरुष मरणसे मरणको पाता है अर्थात् वार २ जन्म मरण के चक्करमें पड़ता है ॥ १० ॥

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन । मृत्योः
स मृत्युङ्गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ—(मनसा-एव) मन करके ही (इदम्) यह (आप्तव्यम्) पाने योग्य है (इह) इसमें (नाना) अनेकभाव (किञ्चन) कुछ (न) नहीं (अस्ति) है (यः) जो (इह) इसमें (नाना-इव) नानारूप वाला सा (पश्यति) देखता है (सः) वह (मृत्योः) मृत्युसे (मृत्युम्) मृत्युको (गच्छति) प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—आचार्य और शास्त्रके उपदेशके द्वारा निर्मल हुए मनसे अर्थात् एकताके अनुभवसे यह एकरस ब्रह्म प्राप्त होसकता है, आत्मा ही यह ब्रह्म है, आत्मासे अन्य नहीं है, इसकारण इसमें भेद नहीं है, जो पुरुष अविद्यासे अन्धाहुआ इस ब्रह्ममें भेदभावको देखता है वह वार २ जन्म मरणके चक्करमें पड़ता है ॥ ११ ॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वैतत्

अन्वय और पदार्थ—(अंगुष्ठमात्रः) अँगूठेकी समान (पुरुषः) पुरुष (मध्य आत्मनि) शरीरमें (तिष्ठति) स्थित है [सः] वह (भूतभव्यस्य) भूत भविष्यत्का (ईशानः) नियामक है (ततः)

जिससे (न) नहीं (विजुगुप्सते) रक्षा करना चाहता है (एतत्) यह (वै) निःसंदेह (तत्) वह ब्रह्म है ॥ १२ ॥

भावार्थ–हृदयकमल अंगुष्ठ परिमाणका है, इस कारण उसके छिद्रमें का अन्तःकरण भी अंगुष्ठ परिमाणवाला ही है और उस अन्तःकरणरूप उपाधिवाला पुरुष भी अंगुष्ठ परिमाणका कहाता है, वह अंगुष्ठमात्र पुरुष शरीरके मध्यमें स्थित है और भूत भविष्यत् आदि तीनोंकालका नियामक है, उस आत्माको जानकर फिर इस आत्माकी रक्षा करनेकी इच्छा नहीं करता है, यह आत्मपुरुष ही वास्तवमें परब्रह्म है ॥ १२ ॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः । ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः एतद्वैतत् ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अंगुष्ठमात्रः) अंगूठे के समान परिणामवाला (पुरुषः) पुरुष (अधूमकः) धुएँसे रहित (ज्योतिः–इव) प्रकाशकी समान (भूतभव्यस्य) भूत भविष्यत् का (ईशानः) नियामक (अस्ति) है (सः-एव) वह ही (अद्य) इस समय वर्त्तमान है (सः,उ) वह ही (श्वः) कल होगा (एतत्) यह (एव) ही (तत्) वह ब्रह्म है ॥ १३ ॥

(भावार्थ)–यह अँगुष्ठ समान पुरुष धूमरहित

अग्नि के उजाले की समान है, योगी पुरुष अपने हृदयदेश में इस ब्रह्मपदार्थको पाचुके हैं, यह भूत भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों कालका स्वामी है यह प्राणियोंके शरीरोंमें जैसा आज वर्त्तमान है, कलको भी ऐसा ही रहेगा, यह ही वास्तविक ब्रह्म पदार्थ है ॥ १३ ॥

यथोदकं दुर्गे वृष्टम्पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुधावति ।१४।

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसा (पर्वतेषु) पर्वतों में (दुर्गे) ऊँचे स्थान पर (वृष्टम्) बरसा हुआ (उदकम्) जल (विधावति) बिखर कर दौड़ता है (एवम्)ऐसे ही (धर्मान्)धर्मों को(पृथक्) अलग (पश्यन्) देखता हुआ (तान् एव) उनको ही (अनुधावति) अनुवर्त्तन करता है १४॥

(भावार्थ) जैसे जल पर्वतोंमें ऊँचे शिखर पर बरस कर इधर उधरको बिखर कर बहता हुआ नष्ट होजाता है, तैसे ही आत्माके धर्म सत्त्वादि गुणों को जो शरीर में भिन्न२ देखता है वह उनके ही पीछे दौड़ता रहता है अर्थात् बार २ अनेकों शरीरों को पाता है कैवल्यपदको नहीं पाता ॥ १४ ॥

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥१५॥

अन्वय और पदार्थ-(गौतम) हे गौतम (यथा) जैसे (शुद्धे) शुद्धमें (आसिक्तम्) बरसाहुआ (उदकम्) जल (तादृक्) तैसा (एव) ही (शुद्धम्) शुद्ध (भवति) होता है (एवम्) ऐसे ही (विजानतः) जाननेवाले (मुनेः) मुनिको (आत्मा) आत्मा (तादृक्) तैसा ही (भवति) होता है १७

भावार्थ -हे नचिकेतः ! जैसे शुद्ध और सरल स्थान में पडाहुआ जल तैसा ही शुद्ध और एकरस होता है, तैसे ही एकदर्शी मनन करनेवाले पुरुषकी दृष्टिमें आत्मा एकरूप ही होता है, इसकारण आत्माके विषयमें कुतर्कियोंकी भेददृष्टि और नास्तिकोंकी कुदृष्टिको छोडकर सहस्रों माता पितासे भी अधिक हितकारी वेद भगवान्‌के उपदेश कियेहुए आत्माकी एकताके ज्ञानका अवश्य आदर करना चाहिये १५

चतुर्थ वल्ली समाप्त ।

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः । अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्वैतत् ॥१॥

अन्वय और पदार्थ—(अजस्य) जन्मरहित (अवक्रचेतसः) नित्यज्ञानस्वरूप [आत्मनः] आत्माका (एकादशद्वारम्) ग्यारह द्वारवाला (पुरम्) नगर [अस्ति] है [तत्स्वामिनम्] उस नगरके स्वामीको (अनुष्ठाय) ध्यान करके (न) नहीं (शोचति) शोक करता है (च) और (विमुक्तः) अविद्याकृत बन्धनोंसे छूटाहुआ [संसारात्] संसारसे (विमु-

च्यते) मुक्त होजाता है (एतत्) यह (वै) निश्चय (तत्) वह ब्रह्म है ॥ १ ॥

भावार्थ-आत्मा जन्म जरा आदि विकारोंसे रहित और अवक्रचित्त अर्थात् नित्य प्रकाशस्वरूप है। दोनों नेत्र, दोनों नासिकाके छिद्र, दोनों कान, मुख, नाभि, मूत्रद्वार, मलद्वार और ब्रह्मरन्ध्र इन ग्यारह द्वारों वाले शरीररूपी नगरमें राजाकी समान जो स्थिर रहता है, ऐसे इस नगरके स्वामीका जो पुरुष ध्यान करता है, उसके ऊपर शोकका प्रभाव नहीं पड़सकता और इस शरीरमें रहता हुआ ही वह साधक, अविद्याकी रचीहुई वासना और कर्मोंके जालसे छूटकर संसारमें फिर जन्म धारण नहीं करता है अर्थात् संसारबन्धनसे छूटजाता है ॥ १ ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-[अयम्] यह (आत्मा) आत्मा (शुचिषत्) आकाशवासी (हंसः) सूर्य (अन्तरिक्षसत्) अन्तरिक्षवासी (वसुः) वायु (वेदिषत्) वेदिवासी (होता) अग्नि (दुरोणसत्) कलशवासी (अतिथिः) सोमरस (नृषत्) मनुष्योंमें निवास करनेवाला (वरसत्) देवताओंमें रहनेवाला (ऋतसत्) यज्ञमें रहनेवाला (व्योमसत्) आकाशमें रहनेवाला (अब्जाः) जलोंसे उत्पन्न होनेवाला

(गोजाः) पृथिवी पर अन्नरूपसे उत्पन्न होनेवाला (ऋतजाः) यज्ञोंके अंगरूपसे उत्पन्न होनेवाला (अद्रिजाः) पर्वतों से उत्पन्न होनेवाला (ऋतम्) सत्यस्वरूप (बृहत्) महान् [अस्ति] है ॥ २ ॥

भावार्थ—यह आत्मा केवल शरीररूपी नगरमें ही नहीं रहता है, किन्तु सब प्रकारके पुरोंमें रहता है यही दिखाते हैं कि—यही आत्मा आकाशवासी सूर्य है, यही वायुरूपसे आकाशमें विराजमान है, यही अग्निरूपसे यज्ञकी वेदीमें रहता है और यही सोमरसरूपसे कलशके भीतर है, यही सब मनुष्योंमें रहता है, सकल देवताओंमें रहता है, यज्ञमें रहता है, आकाशमें विराज रहा है, यही शंख सीपी आदिके रूपसे जलमें से उत्पन्न होता है, पृथिवी पर जौ आदि अन्नके आकारमें उत्पन्न होता है, यज्ञके अंगरूपसे यज्ञमें उत्पन्न होता है, और यही नदी आदिके रूपमें पर्वतोंसे उत्पन्न होता है, यह सबके आत्मस्वरूपसे स्थित होकर भी सत्यस्वरूप है, इस में किसी प्रकारकी मलिनता नहीं है, किन्तु यह सर्वव्यापक और सबसे बड़ा है ॥ २ ॥

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥३॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (प्राणम्) प्राण वायुको (ऊर्ध्वम्) ऊपरको (उन्नयति) लेजाता

ओरको (अस्यति) प्रेरणा करता है (मध्ये) हृद-याकाशमें (आसीनम्) स्थित (वामनम्) वामन पुरुषको (विश्वे) सकल (देवाः) देवता (उपासते) उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—वही आत्मा प्राणवायुको ऊपर को लेजाता है और अपानवायुको नीचेको धकेलदेता है, उस हृदयाकाश वा हृदयकमलमें रहने वाले वामन कहिये भजनयोग्य पुरुषकी सकल देवता अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियोंके अधिष्ठात्री देवता, रूप-रस आदिकी ज्ञानस्वरूप भेंट अर्पण करके इस आत्मा की राजाकी समान उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः । देहा-द्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते । एतद्वैतत् ॥

अन्वय और पदार्थ-(विस्रंसमानस्य) एक दिन शरीरसे अवश्य अलग होनेवाले (शरीरस्थस्य) शरीरमें स्थित (अस्य) इस (देहिनः) आत्माके (देहात्) शरीरसे (विमुच्यमानस्य) वियुक्त होने वालेका (अत्र) इस शरीरमें (किम्) क्या (परि-शिष्यते) बाकी रहजाता है (एतत्) यह (वै) निश्चय (तत्) वह ब्रह्म है ॥ ४ ॥

भावार्थ-पुरके स्वामीके पुरमेंसे निकल जाने पर जैसे उस पुरकी सब वस्तुओंका विध्वंस होजाता है, इसीप्रकार जब देहरूप पुरमें रहनेवाला आत्मा इस देहको अवश्य छोड़नेके नियमानुसार छोड़देता है

अर्थात् देहसे अलग होजाता है, तब क्या रहजाता है ? अर्थात् प्राण आदि प्रपञ्च कुछ भी नहीं रहता सब हलचल होकर नष्ट होजाता है, इस आत्माको ही वास्तविक ब्रह्म जानो ॥ ४ ॥

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥५॥

अन्वय और पदार्थ—(कश्चन) कोई (मर्त्यः) प्राणी (न) नहीं (प्राणेन) प्राण करके (न) नहीं (अपानेन) अपान करके (जीवति) जीता है [सर्वे] सब (इतरेण) अन्य करके (तु) तो (जीवन्ति) जीते हैं (यस्मिन्) जिसमें (एतौ) यह (उपाश्रितौ) स्थित हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—प्राण अपान आदि वायु और चक्षु आदि इन्द्रियोंसे कोई जीवित नहीं रहसकता, क्योंकि—यह सब ही उत्पन्न होकर एक दिन नष्ट होनेवाले हैं, यह केवल दूसरेका प्रयोजन साधनेमात्रको हैं, अतः जिसके लिये यह उत्पन्न हुए हैं, उसकी सत्ता के बिना रह ही नहीं सकते, जैसे मनुष्यके प्रयोजन के साधन घर आदि मनुष्यके प्रयत्नके बिना नष्टहो-जाते है, तैसे ही प्राण और इन्द्रियें आदि भी किसी नित्य पदार्थके आश्रयके बिना रह ही नहीं सकते, इससे सिद्ध हुआ कि-प्राण आदि सब अविनाशी आत्माके आश्रयसे जीवित रहते हैं ॥ ५ ॥

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥६॥

अन्वय और पदार्थ—(गौतम) हे नचिकेतः ! (हन्त इदानीम्) इस समय (ते) तेरे अर्थ (इदम्) इस (गुह्यम्) गोपनीय (सनातनम्) सनातन (ब्रह्म) ब्रह्मको (च) और (मरणम्) मरणको (प्राप्य) प्राप्त होकर (आत्मा) आत्मा (यथा) जिसप्रकार (भवति) होता है (तत्) सो (प्रवक्ष्यामि) कहूँगा ॥ ६ ॥

भावार्थ-हे नचिकेतः ! मैं अब तुझसे गोपनीय सनातन ब्रह्मतत्त्वको, जिसको जान लेने पर सकल संसारसे उपराम हो जाता है और उसको न जाननेसे मरणके अनन्तर प्राणीकी क्या दशा होती है सो भी कहूँगा ॥ ६ ॥

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥७॥

अन्वय और पदार्थ–(अन्ये) कोई (देहिनः) प्राणी (यथाकर्म) कर्मानुसार (यथाश्रुतम्) ज्ञान प्राप्तिके अनुसार (शरीरत्वाय) शरीर धारण करनेके निमित्त (योनिम्) योनिद्वारको (प्रपद्यन्ते) प्राप्त होते हैं (अन्ये) दूसरे (स्थाणुम्) स्थावर भावको (अनुसंयन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—कोई अविद्यासे अन्धे हुए देहाभि-

मानी पुरुष जंगम शरीरको ग्रहण करनेके लिये रज वीर्यके साथ होकर योनिके द्वारमें प्रवेश करते हैं और जो दूसरे अत्यन्त अधम हैं वे मरणको प्राप्त होकर स्थावरभावको धारण करते हैं, इस जन्ममें जिन्होंने जैसा कर्म किया है, उसके ही अनुसार शरीर पाते हैं और जो शास्त्रसे जैसा ज्ञान पाते हैं उसके ही अनुसार शरीर धारते हैं ॥ ७ ॥

य एष सुप्तेषु जागर्त्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वैतत् ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-[सर्वप्राणिषु] सब प्राणियों के (सुप्तेषु) सोनेपर (यः) जो (एषः) यह (पुरुषः) पुरुष (कामं कामम्) हरएक इच्छित वस्तुको (निर्मिमाणः) रचता हुआ (जागर्ति) जागता है (तत्-एव) वह ही (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्-एव) वह ही (अमृतम्) अमृत (उच्यते) कहा जाता है (तस्मिन्) तिसमें (सर्वे) सब (लोकाः) लोक (श्रिताः) आश्रित हैं (कश्चन) कोई (तत्-उ) उसको (न) नहीं (अत्येति) लाँघता है (एतत्) यह (वै) निःसन्देह (तत्) वह ब्रह्म है ॥ ८ ॥

भावार्थ--जिस समय सब प्राणी सोजाते हैं,

उस समय जो पुरुष जागता हुआ स्त्री आदि सकल इच्छित विषयोंको रचा करता है, वह ही उज्ज्वल ब्रह्म है, वह ही अविनाशी गोपनीय पदार्थ है, पृथ्वी आदि सब लोक उसीके आश्रयसे विद्यमान हैं उसके बिना कोई ठहर ही नहीं सकता, इसको ही वास्तविक ब्रह्म जानो ॥ ८ ॥

अग्निर्यथैको भुवनम्प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ (यथा) जैसे (एकः) एक (अग्निः) अग्नि (भुवनम्) भुवनमें (प्रविष्टः) प्रविष्ट हुआ (रूपं रूपम्) रूप २ के भेदसे (प्रति-रूपः) उस २ रूपका (बभूव) हुआ (तथा) तैसे ही (एकः) एक (सर्वभूतान्तरात्मा) सकल प्राणियोंका अन्तरात्मा (रूपं रूपम्) नाना रूपोंके भेदसे (प्रतिरूपः) तिस २ रूपका (च) और (बहिः) बाहर [स्थितः] है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे एक ही प्रकाशस्वरूप अग्नि सारे जगत्में प्रविष्ट होकर काष्ठ आदि जलनेकी वस्तुएँ जितने आकारों वाली होती हैं उतने ही आकारों वाला प्रतीत होता है, तैसे ही सकल भूतोंका अन्तर्यामी आत्मा एक होकर भी हरएक आकार के भेदसे उतने ही भिन्न २ आकारों वाला प्रतीत होता है, वास्तवमें वह आकाशकी समान सब-

देहोंसे बाहर अर्थात् अविकारी है ॥ ९ ॥

वायुर्यथैको भुवनम्प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (एकः) एक (वायुः) वायु (भुवनम्) भुवनमें (प्रविष्टः) प्रविष्ट हुआ (रूपं रूपम्) रूप २ के भेदसे (प्रतिरूपः) उस उस रूपका (बभूव) हुआ (तथा) तैसे ही (एकः) एक (सर्वभूतान्तरात्मा) सकल प्राणियोंका अन्तरात्मा (रूपं रूपम्) नाना रूपोंके भेदसे (प्रतिरूपः) तिस २ रूपका (च) और (बहिः) बाहर [स्थितः] स्थित है ॥ १० ॥

भावार्थ--जैसे एक ही वायु सारे जगत्में व्याप कर प्राण आदि अनेकों आकारमें अनेकों प्रकारका प्रतीत होरहा है, तिसीप्रकार एक ही सकल प्राणियों का अन्तरात्मा सकल प्राणियोंके भीतर । विद्यमान होकर भिन्न २ प्रकारका प्रतीत होरहा है और सकल पदार्थोंके बाहर भी है ॥ १० ॥

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वलोकस्य) सब लोक का (चक्षुः) चक्षुरूप (सूर्यः) सूर्य (यथा) जैसे

(चाक्षुषैः) स्थूल चक्षुओंके ग्रहण योग्य (बाह्य-दोषैः) बाहरके दोषों करके (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता है (तथा) तैसे ही (एकः) एक (बाह्यः) निर्लिप्त (सर्वभूतान्तरात्मा) सकल प्राणियोंका अन्तरात्मा (लोकदुःखेन) लोकके दुःख करके (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ--सब लोकोंका चक्षुःस्वरूप सूर्य जैसे लोकोंके स्थूल चक्षुओंको लगने वाली, बाहरकी अशुचि वस्तुओंसे लिप्त नहीं होता है, तैसे ही एक, सकल भूतोंका अन्तर्यामी आत्मा जगत्के सुख दुःखादिसे लिप्त नहीं होता है, क्योंकि-वह निर्लिप्त स्वतन्त्रस्वभाव है ॥ १२ ॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एकः) एक (वशी) नियन्ता (सर्वभूतान्तरात्मा) सकल प्राणियोंका अन्तर्यामी (यः) जो (एकम्) एक (रूपम्) रूप को (बहुधा) अनेकरूप (करोति) करता है (तम्) उसको (ये) जो (धीराः) धीरपुरुष (आत्मस्थम्) अपनेमें स्थित (अनुपश्यन्ति) देखते हैं (तेषाम्) उनको (शाश्वतम्) नित्य (सुखम्) सुख [भवति] होता है (इतरेषाम्) औरोंको (न) नहीं [भवति] होता है ॥ १२ ॥

(भावार्थ)—जो एक सर्वश नियन्ता और सबका अन्तरात्मा है, जो अपने एक रूपको अनेक-रूप करता है, उसको जो ज्ञानी अपने शरीरमें ही स्थित देखते हैं उनको ही मोक्षरूप अविनाशी सुख मिलता है और जिनका चित्त बाहरी विषयोंमें आसक्त रहता है वे इस आनन्दको नहीं पाते ॥ १२ ॥

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् । १३ ।

अन्वय और पदार्थ—(अनित्यानाम्) अनित्य वस्तुओंके [मध्ये] मध्यमें (नित्यः) नित्य (चेतनानाम्) चेतना वालोंका (चेतनः) चेतन (यः) जो (एकः) एक (बहूनाम्) बहुतोंके (कामान्) इच्छित वस्तुओंको (विदधाति) देता है (तम्) उसको (ये) जो (धीराः) धीर पुरुष (आत्मस्थम्) अपनेमें स्थित (अनुपश्यन्ति) देखते हैं (तेषाम्) उनको (शाश्वती) नित्य (शान्तिः) शान्ति [भवति] होती है (इतरेषाम्) औरोंको (न) नहीं [भवति] होती है ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो आत्मा सकल नाशवान् पदार्थोंमें नित्य है, जो ब्रह्मादिको भी चेतना देता है अर्थात् जैसे अग्नि जल, आदिमें मिलकर उनमें जलाने आदिकी शक्तिको उत्पन्न करदेता है तैसे ही आत्मा

भी ब्रह्मादि सकल चेतनावाले पदार्थोंको चेतनाकी शक्ति देता है, जो एक होकर भी अनेकों कामना-वाले संसारियोंको कर्मोंके अनुसार इच्छित वस्तुएं अनायासमें ही देदेता है। जो धीर पुरुष ऐसे आ-त्माको अपने शरीरमें ही स्थित देखते हैं वे संसार से उपरामरूप परमशान्तिको पाते हैं और जिनको यह आत्मसाक्षात्कार नहीं होता है उनको शान्ति नहीं मिलती है ॥ १३ ॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् ।
कथन्नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥

अन्वय और पदार्थ–[धीराः] ज्ञानी [यत्] जो [ब्रह्म] ब्रह्म है (तत्) सो (एतत्) यह है (इति) ऐसा [मत्वा] मानकर (अनिर्देश्यम्) वर्णनमें न आनेवाला (परमम्) परम (सुखम्) सुख (मन्य-न्ते) मानते हैं (तत्) उसको [अहम्] मैं (कथम् नु) कैसे (विजानीयाम्) जानूँ (तत्) वह (किम्) क्या (भाति) स्वयं दीख होता है (वा) या (वि-भाति) स्पष्टरूपसे प्रकाशित होता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—आत्मविज्ञानरूप परमसुख यद्यपि अनिर्देश्य है अर्थात् प्राकृत पुरुष न उसका वर्णन ही करसकता है न विचार ही कर सकता है तथापि जो संसारकी वासनाओंको त्यागनेवाले ब्रह्मज्ञानी हैं वे उस सुखको प्रत्यक्षरूपसे पाजाते हैं, यमराज के ऐसे कथनको सुनकर नचिकेताने कहा कि— हे

मृत्यो ! मैं ऐसे सुखको किसप्रकारसे जानसकता हूँ ?, वह प्रकाशस्वरूप वस्तु क्या सर्वदा ही प्रदीप्त रहती है ? और क्या स्पष्टरूपसे उसका दर्शन होता है? ॥ १४ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ (तत्र) उसमें (सूर्यः) सूर्य (न) नहीं (भाति) प्रकाशित होता है (चन्द्रतारकम्) चन्द्रमा और तारागण (न) नहीं [भाति] प्रकाशित होता है (इमाः) यह (विद्युतः) बिजलियें (न) नहीं (भान्ति) प्रकाशित होती हैं (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि (कुतः) कहाँ (तम्) उस (भान्तम्-अनु-एव) प्रकाशित होते हुएके पीछे ही (सर्वम्) सब (भाति) प्रकाशित होता है (तस्य) उसकी (भासा) दीप्तिसे (इदम्) यह (सर्वम्) सब (विभाति) प्रकाशित होता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—यमराजने नचिकेताके प्रश्नको सुनकर उत्तर दिया कि—जो सबका प्रकाशक है वह सूर्य भी आत्मस्वरूप ब्रह्मवस्तुको प्रकाशित नहीं करसकता, तथा चन्द्रमा, तारागण और बिजलियें भी उसको प्रकाशित नहीं करसकतीं, फिर हमारी दृष्टिसे प्रत्यक्ष होनेवाले अग्निकी तो बात ही कौन है ? अधिक क्या कहें, सूर्य आदि जो भी प्रकाश करनेवाले हैं, वे

भी उस नित्य प्रकाशस्वरूप आत्माके प्रकाशसे ही प्रकाशित होते हैं, उसके प्रकाशसे ही सब प्रकाशको पारहे हैं, उसकी सत्ताके विना किसीका प्रकाश हो ही नहीं सकता ॥ १५ ॥

पञ्चमी वल्ली समाप्त ।

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनस्तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥ तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वैतत् १

अन्वय और पदार्थ-(ऊर्ध्वमूलः) ऊपरको है जड़ जिसकी ऐसा (अवाक्शाखः) नीचेको गई हैं शाखा जिसकी ऐसा (एषः) यह (सनातनः) अनादिकालसे चला आने वाला (अश्वत्थः) संसाररूप पीपलका वृक्ष है (तत् एव) वह ही (शुक्रम्) उज्ज्वल है (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्-एव) वह ही (अमृतम्) अमृत (उच्यते) कहा जाता है (तस्मिन्) उसमें (सर्वे) सब (लोकाः) लोक (श्रिताः) आश्रित हैं (तत्) उसको (कश्चन-उ) कोई भी (न) नहीं (अत्येति) लांघता है (एतत्) यह (वै) निश्चय (तत्) वह ब्रह्म है ॥ १ ॥

भावार्थ-जैसे मनुष्य रुईको देखकर सेमलके वृक्ष के होनेका निश्चय करते हैं, तैसे ही संसाररूप वृक्ष को देखकर उसके मूलकारण ब्रह्मका निश्चय करनेके लिये इस छठी वल्लीका प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि-इस संसाररूप वृक्षकी मूल (जड़) ऊपरको है

अर्थात् विष्णुका परमपद ही इस वृक्षका मूल है, यह संसारवृक्ष क्षण २ में जन्म, मरण, बुढ़ापा, शोक आदि अनेकों अनर्थोंसे बदलकर औरका और ही होता रहता है, जैसे केलेका खंभा असार पदार्थ है, तैसे ही यह संसारवृक्ष भी असार वस्तु है, इस संसाररूपी वृक्षके विषयमें अनेकों पाखण्डी पुरुष अनेकों प्रकारकी कल्पना करते हैं, परन्तु जो तत्त्व-जिज्ञासु हैं वे ही इसके तत्त्वका निश्चय करते हैं, परब्रह्म ही इस वृक्षका मूल है, यह बात वेदान्तके वाक्योंसे निश्चित होचुकी है, अविद्याके कारण उत्पन्न हुई कामना और कर्म आदि ही इस वृक्षका बीज है, तथा ज्ञान और क्रियाशक्ति रूप हिरण्यगर्भ ही इस बीजका पहिला अंकुर है, सकल प्राणी इसके शुद्ध हैं, यह वृक्ष सदा तृष्णारूप जलाशयसे सींचाजाता है, ज्ञानेन्द्रियोंके विषय शब्द आदि इसके कोंपल हैं, स्मृतियें आदि शास्त्रोंके उपदेश ही पत्ते हैं, यज्ञ दान तपस्या आदि अनेकों क्रियाएं इस वृक्षके सुन्दर फूल हैं, प्राणियोंका सुख दुःख आदि ज्ञान ही अनेकों प्रकारका रस है और इस वृक्षकी जड़, कर्मोंके फलकी तृष्णारूप प्राणियोंके दिये हुए जलसे अत्यन्त दृढ़ होरही है, सत्य आदि नामक सात लोकोंमें ब्रह्मादिरूप पक्षी इस वृक्ष पर घोंसले बना बनारहे हैं, प्राणियोंके सुख दुःख आदिके कारण हर्ष शोक आदिके द्वारा होनेवाले नाच, गान,

बाजा और विलाप आदि नानाप्रकारके शब्दोंसे यह संसाररूप वृक्ष चारों ओर व्याप्त रहता है, वेदान्तशास्त्रके बताए हुए आत्मज्ञानसे उत्पन्न हुई असङ्गतारूप शस्त्र ही इस वृक्षको काटसकता है, यह संसारवृक्ष हर समय कामना और कर्मरूप वायुसे पीपलके वृक्षकी समान चलायमान रहता है, स्वर्ग, नर्क तिर्यक् और प्रेत आदि इसकी शाखा हैं, यह वृक्ष अनादिकालसे चलाआता है, जो वस्तु इस संसारवृक्षकी जड़ है, उसीको तुम शुद्ध ब्रह्म जानो, इस ब्रह्मके आश्रयसे ही सत्य आदि सकल लोक विद्यमानहैं, इसके विना कोई नहीं रह सकता, हे नचिकेता! यह ही परब्रह्म है॥ १॥

यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥२॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (किञ्च) कुछ (इदम्) यह (जगत्) संसार है (सर्वम्) सब [प्राणरूपात्-ब्रह्मणः] प्राणरूप ब्रह्मसे (निःसृतम्) निकला है (प्राणे) प्राणब्रह्ममें (एव) ही (एजति) चेष्टा करता है (उद्यतम्) उद्यत हुए (वज्रम्) वज्र समान (महद्भयम्) परम भयानक (एतत्) इसको (ये) जो (विदुः) जानजाते हैं (ते) वे (अमृताः) अमर (भवन्ति) होजाते हैं॥ २॥

भावार्थ-हे नचिकेता! जो कुछ दीखरहा है यह सब जगत् परब्रह्मसे उत्पन्न होकर अपने २ नियम

के अनुसार चलरहा है, जगत् की उत्पत्ति आदिका कारण रूप परब्रह्म बड़े भयका स्थान और उद्यत हुए वज्रकी समान है, जैसे वज्रहस्त स्वामीको देखकर सेवक लोग नियमके साथ उसकी आज्ञा बजाने लगते हैं, तैसे ही चन्द्रमा-सूर्य नक्षत्र और तारागण आदि से भराहुआ यह अनन्त जगत् परब्रह्मके शासनमें नियमके साथ हरसमय अपने २ कार्यको करता रहता है, जो पुरुष इस तत्त्वको जानते हैं वे मृत्युके मुखसे रक्षा पाते हैं॥ २॥

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ ३ ॥

अन्वय पदार्थ-(अस्य) इसके (भयात) भयसे (अग्निः) अग्निः (तपति) जलता है [अस्य] इस के (भयात्) भयसे (सूर्यः) सूर्य (तपति) ताप देता है (च) और [अस्य-एव] इसके ही (भयात्) भयसे (इन्द्रः) इन्द्र (वायुः) वायु (च) और (पञ्चमः) पाँचवां (मृत्युः) मृत्यु (धावति) दौड़ता है ॥ ३ ॥

भावार्थ-इस परब्रह्मके भयसे अग्नि जलानेका काम करता है, सूर्य तपानेका काम करता है तथा इसके ही भयसे इन्द्र और वायु इसप्रकार यह चार तथा पाँचवां मृत्यु दौड़ता है अर्थात् यह पांचों परमात्माके भयसे अपने २ कामको करते हैं ॥ ३ ॥

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः।

ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चेत्) जो (इह) इस जन्म में (शरीरस्य) शरीरके (विस्रसः) पतनसे (प्राक्) पहिले (बोद्धुम्) जाननेको (अशकत्) समर्थ हुआ [तर्हि] तो [विमुच्यते) छूटजाता है [न चेत्] नहीं तो (ततः) तिस अज्ञानके कारण (सर्गेषु) जिनमें प्राणियोंकी सृष्टि होती है ऐसे (लोकेषु) लोकोंमें (शरीरत्वाय) शरीर धारण करनेको (कल्पते) समर्थ होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—यदि इस जन्ममें ही शरीरपातसे पहले प्राणी ब्रह्मको जानलेय तो मुक्त होजाता है और यदि नहीं जानसके तो रचित होनेवाले प्राणियोंकी आवासभूमिरूप पृथिवी आदि लोकोंमें शरीरको धारण करता है, इसकारण मनुष्यशरीरको पाकर अवश्य ही आत्मज्ञानकी प्राप्तिका उद्योग करना चाहिये, क्योंकि—अन्य योनिमें आत्मदर्शन हो ही नहीं सकता ॥ ४ ॥

यथाऽऽदर्शे यथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छाया-तपयोरिव ब्रह्मलोके ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ--(यथा) जैसे (आदर्शे) दर्पणमें (तथा) तैसे (आत्मनि) बुद्धिमें, (यथा) जैसे (स्वप्ने) स्वप्नमें (तथा) तैसे (पितृलोके)

पितृलोकमें (यथा) जैसे (अप्सु) जलमें (परि-ददृशे-इव) देखता सा है (तथा) तैसे (गंधर्व-लोके) गन्धर्वलोकमें (छायातपयोः इव) छाया और धूपकी समान (ब्रह्मलोके) ब्रह्मलोकमें [ब्रह्मदर्शनम्] ब्रह्मका दर्शन [भवति,] होता है ॥

भावार्थ—जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्बरूपसे अपना शरीर दीखता है तैसे ही दर्पणकी समान अति-निर्मल अपनी बुद्धिमें बुद्धि आदिसे विलक्षण रूप वाले अपने आत्माका दर्शन होसकता है, परन्तु स्वप्न देखनेकी दशामें जैसे वासनारूप हुए जाग्रत अवस्थाके विषय प्रत्यक्ष दीखते हैं, तैसे ही पितृ-लोकमें बुद्धि आदिसे अविविक्तरूपसे आत्मदर्शन होता है और जैसे जलमें शरीरके सब अवयव मिलेहुए दीखते हैं, तिसी प्रकार गन्धर्वलोकमें शरीर आदिसे अपृथक् रूपमें आत्माका साक्षात्कार होता है, इसप्रकार अविविक्त-रूपमें आत्मदर्शन और२ लोकोंमें भी होजाता है, यह शास्त्रके प्रमाण से जाना जाता है। जैसे छाया और धूप सर्वदा भिन्न २ वस्तु हैं तैसे ही आत्मा भी शरीर इन्द्रिय आदिसे सर्वथा भिन्न पदार्थ है, इस ज्ञानका अनु-भव एक ब्रह्मलोकमें ही होता है, परन्तु ब्रह्मलोककी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है, क्योंकि—वह अत्यन्त उत्कृष्ट कर्म और ज्ञानके विना नहीं मिल सकती है, अतः इस शरीरमें ही आत्मदर्शनके लिये यत्न करना चाहिये॥ ५ ॥

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥६॥

अन्वय और पदार्थ-(धीरः) धीर पुरुष (इंद्रियाणाम्) इन्द्रियोंका (यत्) जो (पृथक्भावम्) पृथक् भाव है [तत्] उसको (च) और [आत्मनः] आत्मासे (पृथक्) भिन्न (उत्पद्यमानानाम्) उत्पन्न होनेवाली [तासाम्] उन इन्द्रियों के (उदयास्तमयौ) उदय और अस्तको (च) भी (मत्वा) जानकर (न) नहीं (शोचति) शोक करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—अपने२ विषयको ग्रहण करनेके लिये अपने २ कारण आकाश आदिसे भिन्न होने वाली श्रोत्र आदि इन्द्रियोंको अत्यन्त शुद्ध आत्मस्वरूपसे पृथक् समझ लेने पर और उनकी जाग्रत् अवस्था तथा निद्रावस्थाको जानकर धीर पुरुष फिर मोह आदिके पार होजाता है ॥ ६ ॥

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ।७।

अन्वय और पदार्थ-(इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रियोंसे (मनः) मन (परम्) श्रेष्ठ है (मनसः) मनसे (सत्त्वम्) बुद्धि (उत्तमम्) उत्तम है (सत्त्वात्) बुद्धिसे (महान्) महान् (आत्मा) आत्मा (अधि) अधिक है (महतः) महत्से (अव्यक्तम्)

अव्यक्त (उत्तमम्) श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

भावार्थ-इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे हिरण्यगर्भसम्बन्धी महत्तत्त्व श्रेष्ठ है और इस महत्तत्त्वसे अव्यक्त अर्थात् सकल कार्यकारण रूप शक्तियोंका समूह श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिंग एव च ।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥

अन्वय और पदार्थ-(अव्यक्तात्-तु) अव्यक्त से तो (व्यापकः) व्यापक (च) और (अलिङ्गः) अशरीर (पुरुषः) पुरुष (एव) ही (परः) श्रेष्ठ है (यम्) जिसको (ज्ञात्वा) जानकर (जन्तुः) प्राणी (मुच्यते) मुक्त होता है (च) और (अमृतत्वम्) अमरभावको (गच्छति) प्राप्त होता है ।८।

भावार्थ-अव्यक्तकी अपेक्षा, सर्वव्यापक और अशरीरी वा संसारके सकल धर्मोंसे रहित परमात्मपुरुष श्रेष्ठ है, जिसको जानकर प्राणी जीवित अवस्थामें ही अविद्याके बन्धनसे मुक्त होजाता है और शरीरपात होने पर अमरपद पाता है ॥ ८ ॥

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्य) इस आत्माका (रूपम्) रूप (सन्दृशे) दर्शनके विषयमें (न)

नहीं (तिष्ठति) स्थित है (कश्चन) कोई (एनम्) इसको (चक्षुषा) चक्षु करके (न) नहीं (पश्यति) देखता है (हृदा) हृदय करके (मनीषा) संशय रहित बुद्धि करके (मनसा) मनःस्वरूप सम्यक् दर्शन करकै (अभिक्लृप्तः) प्रकाशित [भवति] होता है (ये) जो (एतत्) इसको (विदुः) जान लेते हैं (ते) वे (अमृताः) अमर (भवन्ति) होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—अशरीरी आत्माके दर्शनका प्रकार कहते हैं कि—इस प्रत्यगात्माका रूप दर्शनका विषय नहीं है, इसकारण इस स्थूल दृष्टिसे इसको कोई नहीं देखसकता है, किन्तु जब साधककी बुद्धि संकल्प-विकल्प-रहित होकर निर्मल होजाती है तब मनन करनेपर हृदयमें ही वह प्रकाशित होजाता है. जो साधक इस आत्माका साक्षात्कार पाजाते हैं वह अमर होजाते हैं ॥ ६ ॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह बुद्धिश्च
न विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम् ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (पञ्च) पांच (ज्ञानानि) ज्ञानेन्द्रिय (मनसासह) मन करके सहित (अवतिष्ठन्ते) स्थिर होते हैं (बुद्धिः च) बुद्धि भी (न) नहीं (विचेष्टेत) चेष्टा करती (ताम्) उस को (परमाम्-गतिम्) परम गति (आहुः)कहते है ॥

भावार्थ—जब मन सहित श्रोत्र आदि पांचों ज्ञानेन्द्रियें अपने २ व्यापारको छोड़कर स्थिर होजाती हैं,

अर्थात् अपने २ विषय से लौटकर आत्माकी ओरको जाती हैं और वह निश्चयात्मक बुद्धि भी अपने कार्य में चेष्टा करना छोड़देती है, इस अवस्थाको ज्ञानी परमगति कहते हैं ॥ १० ॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥११॥

अन्वय और पदार्थ—(ताम्) उस (स्थिराम्) स्थिर (इन्द्रियधारणाम्) इंद्रियोंकी धारणाको (योगम्-इति) योग इस नामसे (मन्यन्ते) मानते हैं (तदा) तब (अप्रमत्तः) प्रमादरहित (भवति) होता है (हि) निःसन्देह (योगः) योग (प्रभवाप्ययौ) उत्पत्ति और अपायधर्मवाला है ॥ ११ ॥

भावार्थ—उस इन्द्रियोंके स्थिर होने की दशाको योग कहते हैं, उस समय योगी प्रमादरहित होता है, क्योंकि–योगकी जैसे उत्पत्ति है तैसे ही इसका नाश भी होसकता है, इसकारण योगीको योगसमृद्धिमें होनेवाले विघ्नोंको दूर करनेके विषयमें सदा सावधान रहना चाहिये ॥ ११ ॥

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥१२॥

अन्वय और पदार्थ-[तत्] वह (वाचा) वाणी करके (न-एव) नहीं ही (मनसा) मन करके (न) नहीं (चक्षुषा) चक्षु करके (न) नहीं (प्राप्तुम्) पानेको (शक्यः) शक्य (अस्ति) है (इति) ऐसा

(ब्रुवतः) कहनेवालोंसे (अन्यत्र) अन्यमें (तत्) वह (कथम्) कैसे (उपलभ्यते) प्राप्त होता है ॥१२॥

भावार्थ-परमात्मा वाणी, मन या चक्षुसे नहीं प्राप्त होता है अतः 'परमात्मा है' ऐसा जो कहते हैं उनसे अन्य अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाणवादी नास्तिक उसको कैसे पासकते हैं ।॥ १२ ॥

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥

अन्वय और पदार्थ-[परमात्मा] परमात्मा (अस्ति) है (इति) इसप्रकार (उपलब्धव्यः) प्राप्त होने योग्य है (तत्त्वभावेन) चिन्मयमात्र भाव करके (च) भी [उपलब्धव्यः] प्राप्त होने योग्य है (उभयोः) दोनोंका (भावः) भाव [ज्ञातव्यः] जानना चाहिये [पूर्वम्] पहिले (अस्ति) है (इति) इसप्रकार प्राप्त हुएका (तत्त्वभावः) निरुपाधिक भाव (प्रसीदति) अभिमुख होता है ॥ १३ ॥

भावार्थ-वह परमात्मा है, इसप्रकार उसको प्राप्त करना चाहिये और तत्त्वभावसे अर्थात् निर्विषय चिन्मयमात्र भावसे भी उसको प्राप्त करना चाहिये यह सोपाधिक और निरुपाधिक दोनों भाव जानने योग्य है, पहिले 'है' अर्थात् सोपाधिकरूपसे वा विश्वरूपसे है, ऐसा मानना चाहिये, तब उसका तत्त्वभाव अर्थात् निरुपाधिक चिन्मयमात्र भाव पीछे से प्रकाशित होजाता है ॥ १३ ॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ १४॥

अन्वय और पदार्थ—(ये) जो (कामाः) मनोरथ (अस्य) इसके (हृदि) हृदयमें (श्रिताः) आश्रित हैं (ते) वह (सर्वे) सब (यदा) जब (प्रमुच्यते) विनष्ट होजाते हैं (अथ)इसके अनन्तर(मर्त्यः) प्राणी (अमृतः) अमर (भवति) होता है (अत्र) यहाँ (ब्रह्म) ब्रह्मको (समश्नुते) पाता है ॥१४॥

(भावार्थ)—जो सकल कामनाएं मरणधर्मी जीवके हृदय में चिपटी हुई हैं वह सम्पूर्ण जिस समय विनष्ट होजाती हैं तब यह मरणधर्मी ही अमर होजाता है और इस जीवनमें ही बंधनके सकल कारण शांत होकर ब्रह्मको पाजाता है अर्थात् जीवन्मुक्त होजाता है ॥ १४ ॥

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥

अन्वय और पदार्थ—(यदा) जब (इह) इस लोकमें (हृदयस्य) हृदयको (सर्वे) सब (ग्रन्थयः)-ग्रन्थि (प्रभिद्यन्ते) छिन्न होजाती हैं (अथ) इसके अनन्तर (मर्त्यः) प्राणी (अमृतः) अमर (भवति) होता है (एतावत्) इतना (अनुशासनम्) उपदेश है ॥ १५ ॥

(भावार्थ)—जब इस लोकमें हृदयकी सब

ग्रन्थियें छिन्न होजाती हैं तब ही प्राणी अमर होता है, इतना ही इस शास्त्र का उपदेश है ॥ १५ ॥

शतञ्चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(हृदयस्य) हृदयकी (शतम्) सौ (च) और (एका) एक (च) भी (नाड्यः) नाड़ियें हैं (तासाम्) उनमेंकी (एका) एक (मूर्धानम्) मस्तकको (अभिनिःसृता) निकली है (तया) उसके द्वारा (ऊर्ध्वम्) ऊपरको (आयन्) आताहुआ (अमृतत्वम्) अमरभावको (एति) प्राप्त होता है (विष्वक्) नाना प्रकारकी गतिवाली (अन्याः) और नाड़ियें (उत्क्रमणे) बाहरजानेमें [निमित्तम्] निमित्त (भवन्ति) होती हैं ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-अब मन्द अधिकारियोंकी गति का वर्णन करते हैं कि हृदयकी एक सौ एक नाड़ी हैं, उनमें सुषुम्ना नामक नाड़ी मस्तक वेधकर निकली है, अन्तकालमें जीव इस नाड़ीके द्वारा ऊपर को आकर अमरभावको पाता है, चारों ओरको फैली हुई अन्य नाड़ियें बाहर जानेकी अर्थात् संसारगतिको पानेकी कारण होती हैं ॥ १६ ॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये

सन्निविष्टः । तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन् मुंजादिवेषीकां धैर्येण तं विद्याच्छुक्रममृतमिति विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अंगुष्ठमात्रः) अंगुष्ठप्रमाण (पुरुषः) पुरुष (अन्तरात्मा) अन्तर्यामी पुरुष (जनानाम्) मनुष्योंके (हृदि) हृदयमें (सदा) सर्वकाल (सन्निविष्टः) प्रविष्ट [अस्ति] है (मुञ्जात्) मूंजमेंसे (इषीकाम्-इव) सींककी समान (तम्) उसको (स्वात्) अपने (शरीरात्) शरीरसे (धैर्येण) धीरताके साथ (प्रवृहेत्) पृथक् करे (तम्) उसको (शुक्रम्) निर्मल (अमृतम्) अमर (इति) ऐसा (विद्यात्) जानै ॥१७॥

(भावार्थ)-अंगुष्ठमात्र परमात्म पुरुष सबके हृदयोंमें सर्वदा प्रविष्ट है, जैसे मूंजमेंसे सींक को खेंचलेते हैं, तैसे ही अपने शरीरमेंसे उसको धीरताके साथ अलग करै अर्थात् शरीर आदिसे भिन्न जाने, उसको शुद्ध और अमृतरूप मानै [अन्त के वाक्यको दो वार उपनिषत्की समाप्ति को सूचित करनेके लिये कहा है ॥ १७ ॥

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् । ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेवम् ॥१८॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (न-

चिकेतः) नचिकेता (मृत्युप्रोक्ताम्) यमकी कही हुई (एताम्) इस (विद्याम्) विद्याको (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण (योगविधिम्, च) योगकी विधिको भी (लब्ध्वा) पाकर (ब्रह्म) ब्रह्मको (प्राप्तः) प्राप्त हुआ (विरजः) निर्मल (विमृत्युः) मृत्युरहित (अमृत्) हुआ (अन्यः) दूसरा (यः) जो (एवम्) इसप्रकार (अध्यात्मम्) आत्मविद्याको (वित्) जानता है [सः] वह (अपि) भी (एवम्) ऐसा [भविष्यति] होगा ॥ १८ ॥

[भावार्थ]-तदनन्तर नचिकेता, यमराजकी कही हुई इस विद्या और सम्पूर्ण योगकी विधिको पाकर धर्म अधर्म आदिके मलसे रहित और अविद्या तथा कामनाओंके त्यागसे अमर होगया। और जो कोई पुरुष भी इसप्रकार अध्यात्मविद्या को जानलेगा वह भी नचिकेताके समान मुक्ति-पदको पाजायगा ॥ १८ ॥

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ-[सः] वह परमात्मा (नौ) हम दोनोंको (सह) साथ ही (अवतु) रक्षा करै (नौ) हम दोनोंको (सह) साथ(भुनक्तु)रक्षाकरै (आवाम्) हम दोनों (सह) साथ (वीर्यम्) सामर्थ्यको (करवावहै) प्राप्त करैं (नौ) हमारा

(अधीतम्) पढ़ाहुआ (तेजस्वी) तेजवाला (अस्तु) हो (मा) नहीं (विद्विषावहै) द्वेष करें ॥ १९ ॥

(भावार्थ)-प्रमादसे होने वाले दोषकी शान्ति के निमित्त यह शान्तिमन्त्र है-उपनिषद्विद्याके द्वारा प्रकाशित होनेवाले परमात्मा,हम पढ़ने पढ़ानेवालोंको विद्या देकर रक्षा करें, विद्याके फलका प्रकाश करके हम दोनोंका पालन करें, जिससे कि हम विद्याकी दीहुई शक्तिको पासकें, हम दोनों साथ ही सामर्थ्यको पावें, हमारा पढ़ाहुआ तेजस्वी हो और हममें परस्पर कभी किसी प्रकार का द्वेष न हो ॥ १९ ॥

इति श्री कृष्णयजुर्वेदीय कठोपनिषद् का मुरादाबाद-निवासि-भारद्वाज गोत्र-गौड़ वंश्य-पण्डित भोलानाथात्मज-सनातनधर्मपताकासम्पादक—स्व० कु० रामस्वरूपशर्मा कृत अन्वय पदार्थ और भाषा भावार्थ समाप्त

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ तत्सत्

अथर्ववेदीया-

प्रश्नोपनिषद्

इस उपनिषत् में कबन्धी आदि छः शिष्योंने प्रश्न किये हैं और पिप्पलाद नामा आचार्यने उनका उत्तर दिया है, इसकारण इसका नाम प्रश्न-उपनिषद् रक्खा है ।

प्रथमः प्रश्नः

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौशल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठः परं ब्रह्मान्वेषनाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भारद्वाजः) भरद्वाजका पुत्र (सुकेशाः) सुकेशा (च) और (शैब्यः) शिविका पुत्र (सत्यकामः) सत्यकाम (च) और (सौर्यायणी) सौर्यका पुत्र (गार्ग्यः) गर्गगोत्री (च)

और (आश्वलायनः) अश्वलका पुत्र (कौशल्यः) कौशल्य (च) और (भार्गवः) भृगुका पुत्र (वैदर्भिः) विदर्भदेशोत्पन्न (कात्यायनः) कत्यका पुत्र (कबन्धी) कबन्धी (ते) वे (ह) प्रसिद्ध (एते) यह (ब्रह्मपराः) ब्रह्मप्राप्तिमें तत्पर (ब्रह्मनिष्ठाः) ब्रह्मविचारमें निष्ठावाले [आसन्] थे (ते) वह (ह) निश्चय (परब्रह्म) परब्रह्मको (अन्वेषमाणाः) खोजते हुए (एषः) यह (ह) ही (वै) निश्चय (तत्) सो (सर्वम्) सब (वक्ष्यति) कहैगा (इति) ऐसा [मत्वा] मानकर (समित्पाणयः) हाथोंमें समिधा लियेहुए (भगवन्तम्) पूज्य (पिप्पलादम्) पिप्पलादको (उपसन्नाः) समीपमें प्राप्त हुए ॥ १ ॥

(भावार्थ)—भरद्वाजका पुत्र सुकेशा, शिबिका पुत्र सत्यकाम, सौर्यका पुत्र गार्ग्य, अश्वलका पुत्र कौशल्य, भृगुका पुत्र वैदर्भि और कत्यका पुत्र कबन्धी, यह ब्रह्मपरायण और ब्रह्मनिष्ठ थे, यह ब्रह्मकी खोजमें तत्पर होकर "यह हमको ब्रह्मके विषयमें सब कुछ बतादेंगे" ऐसा विचार कर भगवान् पिप्पलादके समीप समिधा पुष्प आदि हाथ में लेकर पहुँचे और वह भेंट उनको अर्पण कर चरणोंमें प्रणाम करते हुए बोले कि—हे भगवन्! हमको ब्रह्मविद्याका उपदेश करो ॥ १ ॥

तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मच-

र्येण श्रद्धया सम्वत्सरं सम्वत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ यदि विज्ञास्यामः सर्वं वक्ष्याम इति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (ऋषिः) ऋषि (तान्) उनको (ह) स्पष्ट (उवाच) कहता हुआ (भूयः-एव) फिर भी (तपसा) तप करके (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य करके (श्रद्धया) श्रद्धा करके (सम्वत्सरम्) एकवर्ष पर्यंत (सम्वत्स्यथ) स्थित रहोगे [ततः] तिसके अनन्तर (यथाकामम्) इच्छानुसार (प्रश्नान्) प्रश्नोंको (पृच्छथ) पूछो (यदि) जो (विज्ञास्यामः) जानते होंगे [तर्हि] तो (सर्वम्) सब (ह) स्पष्ट (वः) तुम्हारे प्रति (वक्ष्यामः) कहेंगे (इति) इसप्रकार ॥ २ ॥

भावार्थ-उन पिप्पलाद ऋषिने स्पष्ट कह दिया कि-तुम तपस्वी हो तथापि अभी और भी तपस्या ब्रह्मचर्य और आस्तिकताके साथ एक वर्ष पर्यन्त मेरे समीप रहो, तदन्तर इच्छानुसार चाहे सो प्रश्न करना, यदि मैं जानता होऊँगा तो उन सबका उत्तर तुमको स्पष्ट करके समझा दूँगा ॥ २ ॥

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) सम्वत्सरके अनंतर (कात्यायनः) कत्यका पुत्र (कबन्धी) कबन्धी

(उपेत्य) समीप आकर (इति) यह (पप्रच्छ) पूछता हुआ (भगवन्) हे भगवन् ! (इमाः) यह (ह) प्रसिद्ध (प्रजाः) प्राणी (कुतः वै) कहांसे (प्रजायन्ते) उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—तदन्तर जब एक वर्ष नियमानुसार बीत गया तब कत्यके पुत्र कबन्धीने ऋषिके समीप जाकर प्रश्न किया कि—हे भगवन् ! यह जगत्भर के प्राणी कहांसे उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते रयिञ्च प्राणञ्चेतो मे वहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (तस्मै) तिस के अर्थ (ह) स्पष्ट (इति) इसप्रकार (उवाच) बोला (प्रजापतिः) प्रजापति (वै) निश्चय (प्रजा-कामः) प्राणियोंको रचनेकी इच्छा करता हुआ (सः) वह (तपः) तपको (अतप्यत) तपता हुआ (एतौ) यह (मे) मेरे अर्थ (वहुधा) बहुत प्रकारकी (प्रजाः) प्रजाओंको (करिष्यतः) करेंगे (इति) ऐसा [मत्वा] मानकर (सः) वह (रयिम्) अन्नको (च) और (प्राणम्) प्राणको (एतत्) इस (मिथुनम्) जोड़ेको (उत्पादयते) उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ-पिप्पलाद मुनिने जिस कबन्धीको उत्तर दिया कि-प्राणियोंको रचनेकी इच्छा करनेवाले ब्रह्मदेव सर्वात्माने संकल्परूप तप किया अर्थात् चित्त आदिसे उसके संसारको जगाया, तदनन्तर सृष्टिके साधन अन्नरूप, (चन्द्रमाकी किरणोंके अमृतसे अन्न उत्पन्न होता है अतः अन्नरूप कहा) और अन्नके भोक्ता प्राणरूप अग्नि (सूर्य) इन दोनोंके जोड़को इस विचारसे उत्पन्न किया कि—" यह दोनों मेरी अनेकों प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न करेंगे" ॥ ४ ॥

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्च तस्मान्मूर्त्तिरेव रयिः ५

अन्वय और पदार्थ (आदित्यः) सूर्य (वै) निश्चय (ह) प्रसिद्ध (प्राणः) प्राण है (रयिःएव) अन्न ही (चन्द्रमाः) चन्द्रमा है (यत्) जो (मूर्त्तम्) स्थूल (च) और (अमूर्त्तम्) सूक्ष्म (अस्ति) है (एतत्) यह (सर्वम्) सब (वै) निश्चय (रयिः) अन्नरूप है (तस्मात) तिसकारण (मूर्त्तिः) स्थूल (रयिः-एव) अन्न ही है ॥ ५ ॥

भावार्थ—उन दोनोंमें सूर्य निःसन्देह प्रसिद्ध प्राणरूप अन्नका भोक्ता अग्नि है और अन्नरूप चन्द्रमा है, यह भोक्ता और अन्नरूप दोनों एक ही प्रजापति हैं, यही गौणदशामें अन्न और मुख्य-दशामें भोक्ता है, क्योंकि—जो स्थूल तथा सूक्ष्म

रूप मूर्त्त और अमूर्त्त जगत् है, यह सब अन्नरूप
ही है तिससे भिन्नरूप किये हुए अमूर्त्त से जो अन्न
में मूर्त्ति (स्थूल) मूर्त्ति है, वह ही अन्न है क्योंकि-
वह अमूर्त्त (सूक्ष्म) प्राणरूप भोक्ता से भोगा
जाता है. सार यह है कि-अभेददृष्टिसे जो कुछ
स्थूल और सूक्ष्म है वह सब रयि अर्थात् भोग्य-
रूप ही है, परन्तु भेददृष्टिसे तो स्थूल ही रयि
अर्थात् भोग्यरूप है ॥ ५ ॥

अथादित्य उदयन् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति
तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते यद्
दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं
यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान्
प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (आदित्यः)
सूर्य (उदयन्) उदित होता हुआ (यत्-यदा) जब
(प्राचीम्) पूर्व (दिशम्) दिशा को (प्रविशति)
प्रवेश करता है (तदा) तब (सः) वह (तेन)
उस करके (प्राच्यान्) पूर्वदिशासंबन्धी (प्राणान्)
प्राणों को (रश्मिषु) किरणों में (सन्निधत्ते) स्था-
पित करता है (यत्-यदा) जब (दक्षिणाम्)
दक्षिण दिशाको (यत्) जब (प्रतीचीम्) पश्चिम
दिशाको (यत्) जब (उदीचीम्) उत्तरदिशा
को (यत्) जब (अधः) नीचेको (यत्) जब

(ऊर्ध्वम्) ऊपर को (यत्) जब (अंतरा-दिशाः) कोणों की दिशाओं को (यत्) जब (सर्वम्) सबको (प्रकाशयति) प्रकाशित करता है (तेन) तिस करके (सर्वान्) सब (प्राणान्) प्राणों को (रश्मिषु) किरणोंमें सन्निधत्ते) स्थापित करता है॥

(भावार्थ)-ऊपर भोक्ता और भोग्यरूप कहा, इससे सर्वरूप हुआ, तिस सर्वरूपता को दिखाते हैं कि-जिस समय आदित्य उदयको प्राप्त होकर पूर्वदिशामें प्रवेश करता है, उस समय वह अपने प्रकाशकी व्याप्तिसे पूर्वदिशाके सकल प्राणोंको अपनी किरणों के अन्तर्गत करलेता है, जब दक्षिण में, जब पश्चिम में, जब उत्तर में, जब नीचे, जब ऊपर और जब बीच की दिशारूप अग्नि आदि कोणोंमें प्रकाश करता है तब उस प्रकाशसे तहां के सकल प्राणियोंको अपनी किरणोंके अन्तर्गत कर लेता है, इस कारण सर्वव्यापक आत्मा है ॥ ६ ॥

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते तदेतदृचाभ्युक्तम् ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (एषः) यह (वैश्वानरः) सर्वात्मा (विश्वरूपः) सकल प्रपञ्च स्वरूप (प्राणः) प्राणभूत (अग्निः) अग्नि (उदयते) उदित होता है (तत्) सो (एतत्) यह (ऋचा) मंत्र करके (अभ्युक्तम्) विशेषसे कहा गया है ॥

भावार्थ—वह यह आदित्य सकल जीवस्वरूप

और सकल स्थावर जङ्गमरूप विश्वात्मा है अतएव प्राण और अग्निरूप है, यही सूर्यरूपसे प्रतिदिन सब दिशाओंमें अपना रूप प्रकाशित करता हुआ उदित होता है, इसको मन्त्रने भी नीचे लिखे प्रकारसे कहा है ॥७॥

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(विश्वरूपम्) अनेकरूप (हरिणम्) किरणोंवाले (जातवेदसम्) ज्ञानवान् (परायणम्) सकल प्राणियोंके आश्रय (ज्योतिः) सकल प्राणियोंके चक्षुःस्वरूप (एकम्) अद्वितीय (तपन्तम्) तापक्रिया के करनेवाले [सूर्यम्] सूर्य को [ब्रह्मविदः] ब्रह्मज्ञानी [विज्ञातवन्तः] जानते हुए ((एषः) यह (सहस्ररश्मिः) सहस्रों किरणों वाला (शतधा) सैंकड़ों प्रकारका (वर्त्तमानः) वर्त्तमान (प्रजानाम्) प्राणियोंका (प्राणः) प्राणस्वरूप (उदयति) उदित होता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)—विश्वरूप, किरणोंवाले, ज्ञानवान्, सर्वाधार, अद्वितीय, जगच्चक्षु और तापक्रिया के करनेवाले सूर्यदेव को ब्रह्मज्ञानी जानते हैं, यह सहस्ररश्मि, प्राणियोंके भेदसे अनेकरूपका प्रतीत होनेवाला तथा सकल प्राणियोंका प्राणस्वरूप आदित्यदेव उदयको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

सम्वत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणञ्चो-त्तरञ्च । तद्ये ह वै तदिष्टापूर्त्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते । त एव पुनरा-वर्त्तन्ते तस्मादेते ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रति-पद्यन्ते एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सम्वत्सरः) सम्वत्सर (वै) निश्चय (प्रजापतिः) प्रजापति है (तस्य) उसका (दक्षिणम्) दक्षिण (उत्तरम्) उत्तर (च) भी (अयने) मार्ग [स्तः] हैं (ये) जो (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय (इष्टापूर्त्ते) इष्टापूर्त्त को (कृतम्) कर्म है [इति-मत्वा] ऐसा मानकर (उपासते) उपासना करते हैं (ते) वह (चान्द्रमसम्) चन्द्रमा के (लोकम्) लोकको (एव) ही (अभिजयन्ते) प्राप्त होते हैं (ते) वह (पुनः एव) फिर भी (आव-र्त्तन्ते) लौटकर आते हैं (तस्मात्) तिससे (एते) यह (प्रजाकामाः) संतानकी इच्छावाले (ऋषयः) ऋषि (दक्षिणम्) दक्षिणमार्गको (प्रतिपद्यन्ते) प्राप्त होते हैं (एषः) यह (ह) प्रसिद्ध (वै) ही (रयिः) रयि (पितृयाणः) पितृमार्ग है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)—सम्वत्सर ही प्रजापति है, इसके उत्तर और दक्षिण यह दो अयन कहिये मार्ग हैं, जो प्रसिद्ध यज्ञादि कर्म और वापी, कूप, तड़ाग आदि पूर्त्त को कर्त्तव्य समझकर करते रहते हैं, वह केवल

चन्द्रलोक को ही प्राप्त होते हैं, वह बारम्बार प्रजारूपसे उत्पन्न होते हैं, अतएव प्रजाकी इच्छावाले वह ऋषि दक्षिणमार्गसे गमन करते हैं, यह दक्षिण मार्ग चन्द्रमासे अधिष्ठित होनेके कारण चन्द्रस्वरूप पितृयान कहिये पितरोंका मार्ग है ॥ ९ ॥

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते । एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्त्तन्ते इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ॥१०॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और [अन्ये] दूसरे (तपसा) तप करके (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य करके (श्रद्धया) श्रद्धा करके (विद्यया) विद्या करके (आत्मानम्) आत्मस्वरूपको (अन्विष्य) खोजकर (उत्तरेण) उत्तर मार्ग करके (आदित्यम्) सूर्यलोकको (अभिजयन्ते) प्राप्त होते हैं (एतत्) यह (वै) निश्चय (प्राणानाम्) प्राणोंका (आयतनम्) आश्रय (एतत्) यह (अमृतम्) अमर (अभयम्) अभय (एतत्) यह (परायणम्) परागति [अस्ति] है (एतस्मात्) इससे [केचित्] कोई (पुनः) फिर (न) नहीं (आवर्त्तन्ते) लौटते हैं (इति) इसकारण (एषः) यह (निरोधः) निरोध है (तत्-तस्मिन्) तिसमें (एषः) यह (श्लोकः) श्लोक है ॥ १० ॥

(भावार्थ)-परन्तु दूसरे, इन्द्रियोंको वशमें रखना रूप तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और ज्ञानके द्वारा स्थावर जंगमके आत्मा और प्राणरूप सूर्यको 'मैं यह ही हूँ' ऐसा जानकर उत्तर मार्गसे सूर्यलोकको पाते हैं, यह सूर्यलोक ही सकल प्राणोंका समष्टिरूप आश्रय अविनाशी और भयरहित है, यह ही परम आश्रय है, इससे फिर कोई नहीं लौटता है, इसकारण यह ही अंतिम गति है, क्योंकि-इसको पाकर फिर लौटना नहीं पड़ता है, संसारकी गतिको रोकनेसे अथवा इससे अज्ञानी हटे रहते हैं इसकारण इसको निरोध कहते हैं, इस विषयमें अगला ग्यारहवां श्लोकरूप ऋग्वेदका[१।१६४।१२] मंत्र कहागयाहै।

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः पर अर्द्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ—[कालविदः] कालके ज्ञाता [तम्] उसको (पञ्चपादम्) पाँच ऋतु हैं चरण जिसके ऐसा (द्वादशाकृतिम्) बारह मास हैं आकृति जिसकी ऐसा (पितरम्) पिता (दिवः) द्युलोकके (परे-अर्द्धे) उत्तरार्द्धमें (पुरीषिणम्) जलकी वर्षा करनेवाला (आहुः) कहते हैं (अथ) और (परे) श्रेष्ठ (अन्ये) दूसरे (इमे) यह (तु) तो (विचक्षणम्) ज्ञानस्वरूप आदित्यको (सप्तचक्रे) सात चक्रवाले (षडरे) छः अरेवाले

[रथे] रथमें (अर्पितम्) स्थित हैं [इति] ऐसा (आहुः) कहते हैं ॥ ११ ॥

(भावार्थ)—कालज्ञानी पुरुष इस सम्वत्सरात्मक आदित्यको, पांच ऋतु हैं पांच चरण जिसके ऐसा (हेमन्त और शिशिरको एक मानकर पांच ऋतु कहा है) द्वादश मास ही हैं अवयव जिसके ऐसा और सबका जनक होनेसे पिता स्वरूप तथा आकाशरूप अन्तरिक्ष लोकसे पर और ऊँचे स्थानरूप तीसरे स्वर्गमें जलको वर्षा करनेवाला कहते हैं, परन्तु दूसरे ज्ञानी कहते हैं कि–वह सर्वज्ञ है और सात अश्व तथा छः ऋतु एवं निरन्तर गति वाले कालचक्रस्वरूप इसमें सकल जगत् इस प्रकार स्थित है जैसे रथकी नाभिमें अरे होते हैं, परन्तु सूर्यरूप प्रजापति दोनों ही प्रकारसे सकल जगत्का कारण है ॥ ११ ॥

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः । शुक्लः प्राणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन् ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ–(मासः) महीना (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय (प्रजापतिः) प्रजापति है (तस्य) उसका (कृष्णपक्षः) कृष्णपक्ष (एव) ही (रयिः) अन्नरूप चन्द्रमा है (शुक्लः) शुक्ल पक्ष (प्राणः) प्राण है (तस्मात्) तिससे (एते) यह (ऋषयः) ऋषि (शुक्ले) शुक्लपक्षमें (इष्टिम्)

यागको [कुर्वन्ति] करते हैं (इतरे) दूसरे (इतरस्मिन्) दूसरे पक्षमें (कुर्वन्ति) करते हैं ॥ १२ ॥

(भावार्थ)—जिसमें यह विश्व स्थित है वह सम्वत्सर नामक प्रजापति अपने अवयव रूप मास में पूर्णरूपसे है, मास ही अन्न और अन्नका भोक्ता युगुलरूप चन्द्रमा है, दूसरा भाग शुक्लपक्ष है, वह प्राणरूप अग्निमय भोक्ता सूर्य है, जो शुक्लपक्षरूप प्राणको सर्वरूप देखते हैं, कृष्णपक्षको उससे भिन्न नहीं देखते वह देखनेवाले ऋषि यागको कृष्णपक्ष में करते हुए भी शुक्लपक्षमें ही करते हैं और जो शुक्लपक्षको सर्वात्मा प्राणरूपसे नहीं देखते, किंतु प्राणरूपसे न देखनारूप कृष्णपक्षके भावको प्राप्त हुए शुक्लपक्षको देखते हैं वह इच्छित यागको शुक्ल पक्षमें करते हुए भी कृष्णपक्षमें ही करते हैं ॥१२॥

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति । ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहोरात्रः) दिनरात (वै) निश्चय (प्रजापतिः) प्रजापति है (तस्य) उसका (अहः, एव) दिन ही (प्राणः) प्राण है (रात्रिः एव) रात ही (रयिः) अन्नरूप चन्द्रमा है (ये) जो (दिवा) दिन में (रत्या) रति करके (संयु-

युज्यन्ते) संयुक्त होते हैं (एते) यह (वै) निश्चय (प्राणम्) प्राणको (प्रस्कन्दन्ति) निकाल देते हैं (यत्) जो (रात्रौ) रातमें (रत्या) रति करके (संयुज्यन्ते) संयुक्त होते हैं (तत्) सो (ब्रह्मचर्यम् एव) ब्रह्मचर्य ही है ॥ १३ ॥

(भावार्थ)—मासरूप प्रजापति भी दिन रात रूप अवयवोंसे पूर्ण होता है, अतः वह दिन रात भी प्रजापति है, उसका दिन ही प्राणरूप अन्नका भोक्ता सूर्य है और रात ही अन्नरूप चन्द्रमा है, जो मूर्ख पुरुष दिनमें स्त्रीके साथ मैथुनरूप रति करते हैं वह दिनरूप प्राणको गमाते हैं, अतः दिन में स्त्रीसहवास नहीं करना चाहिये और जो रात में ऋतुकालमें रतिक्रियामें लगते हैं, वह उनका ब्रह्मचर्य ही है ॥ १३ ॥

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अन्नम्) अन्न (वै) निश्चय (प्रजापतिः) प्रजापति है (ततः) तिससे (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय (तत्) वह (रेतः) वीर्य (जायते) उत्पन्न होता है (तस्मात्) तिस से (इमाः) ये (प्रजाः) प्रजाएँ (प्रजायन्ते) उत्पन्न होती हैं (इति) यह प्रकार है ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस क्रमसे दिन रातरूप प्रजापति अन्न

रूपसे परिणामको पाता है, इससे अन्नरूप ही प्रजापति है, तिस भक्षण किये हुए अन्नसे प्रसिद्ध पुरुषका वीर्यरूप और स्त्रीका रजरूप रेत उत्पन्न होता है। तिससे मनुष्य आदि यह सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, हे कबन्धी ! तुमने बूझा था कि—प्रजा किससे उत्पन्न होती हैं ? सो इस प्रकार दिन रात पर्यन्त, चन्द्रसूर्यरूप युगुल (जोड़े) आदिके क्रमसे अन्नरूप रेतके द्वारा वह प्रजा उत्पन्न होती है, यह निर्णय हुआ ॥ १४ ॥

तद्ये ह तत् प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते । तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तत्) तिस कारणसे (ये) जो (ह) प्रसिद्ध (तत्) उस (प्रजापतिव्रतम्) प्रजापतिव्रतको (चरन्ति) करते हैं (ते) वह (मिथुनम्) पुत्री और पुत्रके जोड़ेको (उत्पादयन्ते) उत्पन्न करते हैं (येषाम्) जिनका (तपः) तप (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य है (येषु) जिनमें (सत्यम्) सत्य (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (तेषाम् एव) उनको ही (एषः) यह (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मलोक है॥

भावार्थ–इसकारण जो गृहस्थ ऋतुकालमें भार्यागमनरूप ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, वह पुत्र और पुत्रीको उत्पन्न करते हैं, जिनमें इन्द्रियोंको वश में रखना रूप तपस्या और नियमके साथ गुरुके

समीप वेद को पूर्णरूपसे पढ़नारूप ब्रह्मचर्य है, तथा जिनमें असत्यभाषणका त्यागरूप सत्य पूर्णरूपसे है, ऐसे इष्ट, पूर्त और दानके करने वाले तथा ऋतुकालमें स्त्रीसहवास करने वाले उन पुरुषोंको ही, चन्द्रमण्डलमें पितृयानरूप ब्रह्मलोक प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(येषु) जिनमें (जिह्मम्) कुटिलता (अनृतम्) मिथ्याभाषण (च) और (माया) माया (न) नहीं है (इति) ऐसे (तेषाम्) उनको (असौ) यह (विरजः) शुद्ध (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मलोक होता है ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-साधारण गृहस्थोंमें अनेकों विरुद्ध व्यवहारोंके कारण जैसी कुटिलता होती है वह जिनमें नहीं है, सर्वसाधारण जैसे क्रीड़ा आदिके समय असत्य भाषण करते हैं वह जिनमें नहीं है तथा जिनमें और भी कोई मायावीपन का दोष नहीं है उनको ही साधनों के अनुसार निर्मल ब्रह्मलोक प्राप्त होता है, यह चन्द्रलोकरूप ब्रह्मलोककी प्राप्ति केवल कर्मानुष्ठान करनेवालोंकी ही गति है ॥ १६ ॥

इति प्रथमः प्रश्नः समाप्तः

द्वितीयः प्रश्नः

अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ। भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत्प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (एनम्) इसको (ह) प्रसिद्ध (भार्गवः) भृगुपुत्र (वैदर्भिः) वैदर्भि (इति) इसप्रकार (पप्रच्छ) पूछताहुआ (भगवन्) हे भगवन् (कति) कितने (एव) ही (देवाः) इन्द्रियोंकी शक्तिरूप देवता (प्रजाम्) प्राणीके शरीरको(विधारयन्ते) धारण करते हैं (कतरे) कौनसे (एतत्) इसको (प्रकाशयन्ते) प्रकाशित करते हैं (पुनः) फिर (एषाम्) इनमें (कतरः) कौन (वरिष्ठः) श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर उन पिप्पलाद ऋषि से भृगुपुत्र वैदर्भि ने प्रश्न किया कि--हे भगवन्! आकाश आदि पञ्च महाभूत, चक्षु आदि पांच ज्ञानेन्द्रियें, वाणी आदि पांच कर्मेन्द्रियें, मन और प्राण इन तत्त्वों के अभिमानी देवताओंमें कितने इस शरीरको धारण करते हैं, और ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियोंके अभिमानी देवोंमें कौनसे अपने २ महात्म्य को प्रकाशित करते हैं तथा इन सबोंमें कौन सबसे श्रेष्ठ है? ॥ १ ॥

तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष देवो वायु-
रग्निरापः पृथिवी वाङ् मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च ।
ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य
विधारयामः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मै) तिसके अर्थ (सः) वह (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (आकाशः) आकाश (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय (एषः) यह (देवः) देव (वायुः) वायु (अग्निः) अग्नि (आपः) जल (पृथिवी) पृथिवी (वाक्) वाणी (मनः) मन (चक्षुः) चक्षु (च) और (श्रोत्रम्) श्रोत्र [अस्ति] है (ते) वह [एकदा] एकसमय [स्वमाहात्म्यम्] अपने माहात्म्यको (प्रकाश्य) प्रकाशित करके (अभि-वदन्ति) परस्पर कहते हैं (वयम्) हम (एतत्) इस (बाणम्) शरीरको (अवष्टभ्य) व्यापकर (विधारयामः) धारण करते हैं ॥ २ ॥

(भावार्थ)-तिसके निमित्त पिप्पलाद ऋषिने स्पष्ट कहा कि-वह सब देवता (शक्तियें) आकाश वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाक्, मन, चक्षु और श्रोत्र ये । इन्होंने एक समय अपनी २ सामर्थ्यको प्रकाशित करके कहा, कि-हम हरएक इस शरीरको व्यापकर वा स्थित रखकर रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच । मा मोहमापद्यथाऽह-

मेवैतत् पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य वि-
धारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवुः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—[तदा] तब (वरिष्ठः) श्रेष्ठ (प्राणः) प्राण (तान्) उनको (उवाच) बोला (मा) मत (मोहम्) मोहको (आपद्यथ) प्राप्त होओ (अहम्-एव) मैं ही (एतत्) इस (आत्मानम्) अपने आपको (पंचधा) पांच भाग में (विभज्य) बांटकर (एतत्) इस (बाणम्) शरीरको (अवष्टभ्य) व्यापकर (विधारयामि) धारण करता हूं (इति) इसमें (ते) वह (अश्रद्दधानाः) श्रद्धाहीन (बभूवुः) हुए ॥ ३ ॥

(भावार्थ) उस समय परमश्रेष्ठ प्राणने उनसे कहा कि–तुम मोहमें न पड़ो अर्थात् अज्ञानवश मिथ्या-भिमान न करो, मैं ही अपनेको पांच भागमें बाँटकर इस शरीरमें व्याप्त होकर इसकी रक्षा करता हूं, परन्तु उन्होंने प्राणके इस कथन पर विश्वास नहीं किया ३

सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्का-
मत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने
सर्व एव प्रातिष्ठन्ते । तद्यथा मक्षिका मधुकर-
राजानमुत्क्रामतं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च
प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः
श्रोत्रञ्च ते प्रीताः प्राणं स्तुवन्ति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-[तदा] तब (सः) वह (अभिमानात्) अभिमानसे (ऊर्ध्वम्) ऊपरको (उत्क्रामते-इव) बाहर निकलताहुआ सा होता है (तस्मिन्) तिसके (उत्क्रामति) उत्क्रमण करने पर (अथ) अनंतर (इतरे) और (सर्वे एव) सब ही (उत्क्रामन्ते) बाहरको निकलते हैं (च) और (तस्मिन्) उसके (प्रतिष्ठमाने) स्थित रहने पर (सर्वे एव) सब ही (प्रतिष्ठन्ते) स्थित रहते हैं (तत्) सो (यथा) जैसे (मधुकरराजानम्) मधु मक्खियोंके राजाके (उत्क्रामन्तम्) उड़ने पर (सर्वा एव) सबही (मक्षिकाः) मक्खियें (उत्क्रामन्ते) उड़ती हैं (च) और (तस्मिन्) उसके (प्रतिष्ठमाने) स्थित होनेपर (सर्वाः-एव) सब ही (प्रातिष्ठन्ते) स्थित होती हैं (एवम्) ऐसे ही (वाक्) वाणी (मनः) मन (चक्षुः) चक्षु (च) और (श्रोत्रम्) श्रोत्र (अकुर्वन्) करते हुए [अतः] इससे (ते) वह (प्रीताः) प्रसन्न हुए (प्राणम्) प्राणको (स्तुवन्ति) स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ-तब प्राण अभिमानमें भरकर ऊपरकी ओरको शरीरसे बाहर निकल गया, तब तो उसके पीछे ही और सब इन्द्रियें भी बाहरको निकलीं और जब प्राण फिर आकर स्थित हुआ तब ही सब इन्द्रियें भी उसके पीछे २ आकर स्थित होगईं, जैसे मधुमक्खियोंका राजा जब ऊपरको उड़ता है तब

और सब मक्खियें भी उसके पीछे २ उड़कर जाती हैं और जब वह बैठजाता है तो सब बैठजाती हैं, ऐसा ही वाणी, मन, चक्षु और श्रोत्र आदिकी शक्तियोंने भी किया, तदन्तर वह सब (इन्द्रियोंके अधिष्ठात्री देवता) प्रसन्न होकर प्राणकी स्तुति करने लगे ॥ ४ ॥

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतञ्च यत् ५

अन्वय और पदार्थ—(एषः) यह (अग्निः) अग्निरूप हुआ (तपति) जलता है (एषः) यह (सूर्यः) सूर्यरूप है (एषः) यह (पर्जन्यः) मेघरूप है (एषः) यह (मघवान्) इन्द्ररूप है (एषः) यह (वायुः) वायुरूप है (पृथिवी) पृथिवी है (देवः) देव (रयिः) चन्द्रमा है (यत्) जो (सत्) मूर्त्त (च) और (असत्) अमूर्त्त (च) और (अमृतम्) अमृत [एषः एव] यह ही है ॥ ५ ॥

भावार्थ-यह प्राण अग्निरूप होकर प्रज्वलित होता है, यह सूर्यरूपसे प्रकाश करता है यह मेघ होकर बरसता है, यह इन्द्र होकर प्रजाका पालन और असुरोंका नाश करता है, यह आवह प्रवह आदि सात प्रकारका वायु होकर मेघ और तारामंडलको चलाता है, पृथिवी होकर सब जगत्को धारण करता है, यह देव चन्द्रमा होकर सबका पोषण करता है, अधिक क्या कहैं स्थूल और सूक्ष्म-

रूप जगत् तथा देवताओंकी स्थितिका कारण जो अमृत सो सब यह ही है ॥ ५ ॥

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(रथनाभौ) रथ की नाभि में (अराः एव) तिरछे काष्ठोंकी समान (प्राणे) प्राणमें (सर्वम्) सब (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (ऋचः) ऋग्वेदके मंत्र (यजूंषि) यजुर्वेदके मंत्र (सामानि) सामवेदके मंत्र (यज्ञः) यज्ञ (क्षत्रम्) क्षत्रिय (च) और (ब्रह्म) ब्राह्मण [सर्वम्] सब [प्राणे] प्राण में [प्रतिष्ठितम्] स्थित है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-रथके पहियेकी नाभिमें जैसे तिरछे काष्ठ स्थित होते हैं तैसे ही प्राणमें सब जगत् स्थित है ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, यज्ञ, क्षत्रिय और ब्राह्मण सब यज्ञमें ही स्थित हैं ॥ ६ ॥

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे । तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्राण) हे प्राण [त्वम्-एव] तू ही (प्रजापतिः) विराट् है (त्वम्-एव) तू ही (गर्भे) गर्भमें (चरसि) विचरता है (त्वम्-एव) तू ही (प्रतिजायसे) प्रतिबिम्बरूपसे उत्पन्न होता है (यः) जो (प्राणैः) चक्षु आदि इंद्रियोंके साथ

(प्रतितिष्ठसि)स्थित होता है (इमाः) यह (प्रजाः तु) प्रजा तो (तुभ्यम्) तेरे अर्थ (बलिम्) भेटक (हरन्ति) लाते हैं ॥ ७ ॥

(भावार्थ) हे प्राण ! पितामातास्वरूप कहिये विराट रूप प्रजापति तू ही पिताके शरीरमें वीर्यरूप से और माताके गर्भमें संतानरूपसे विचरता है, तू ही माता पिताकी आकृतिका होकर उत्पन्न होता है और हे प्राण ! तू जो चक्षु आदिकं साथ सकल शरीरोंमें स्थित है तिस तेरे अर्थ ही यह सकल मनुष्य आदि प्राणी चक्षु आदि के द्वारा भोग्यविषयरूप भेट अर्पण करते हैं इसकारण यह सब तुझ भोक्ताका ही भोग्य है ॥ ७ ॥

देवानामासि वन्हितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा ।
ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ--[त्वम्] तू (देवानाम्) देवताओंके (वन्हितमः) हविका पहुंचानेवाला परम श्रेष्ठ (पितॄणाम्) पितरोंकी (प्रथमा) पहली (स्वधा) स्वधा (असि) है (आङ्गिरसाम्) शरीरके रसरूप (ऋषीणाम्) इन्द्रियोंका (चरितम्) चेष्टित (अथर्वा) अथर्वा (सत्यम्) देहादिके धारणादिका उपकार (अथवा) या (ऋषीणाम्) ऋषियोंका (सत्यम्) सत्य (चरितम्) आचरण (आङ्गिरसाम्) आङ्गिरस ऋषियोंमें (अथर्वा) अथर्वा (असि) है ॥ ८ ॥

(भावार्थ) हे प्राण ! तू देवताओंमें होम किये हुए पदार्थोंका पहुंचानेवाला परम श्रेष्ठ है नांदीमुख श्राद्धमें पितरोंके निमित्त जो अन्नदियाजाता है उस को स्वधा कहते हैं,वह देवताओंकी पूजासे भी पहिले दियाजाता है, उसको पितरोंके समीप पहुँचानेवाला तू ही है, चक्षु आदि इंद्रियोंका चेष्टित और उनकी देह आदिको धारण करने आदिकी सत्ता तू ही है अथवा तू ही ऋषियोंका सत्याचरण और आङ्गिरस ऋषियोंमें अथर्वा है ॥ ८ ॥

इन्द्रस्त्वं प्राणतेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता ।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्राण) हे प्राण (त्वम्) तू (इन्द्रः) इन्द्र है (तेजसा) तेज करके (रुद्रः) रुद्र (परिरक्षिता) पालनकर्त्ता विष्णु (असि) है (त्वम्) तू (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षमें (चरसि) विचरता है (त्वम्) तू (ज्योतिषाम्) ज्योतियोंका (पतिः) स्वामी (सूर्यः) सूर्य है ॥ ९ ॥

भावार्थ-हे प्राण तू ही इन्द्र है, तू ही संहारक तेजसे जगत्का प्रलयकर्त्ता रुद्र है, तू ही स्थितिकाल में जगत्का पालनकर्त्ता विष्णु है, तू ही निरन्तर अन्तरिक्षमें विचरता है और तू ही सकल ज्योतियों का स्वामी सूर्य है ॥ ९ ॥

यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः ।

आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति॥

अन्वय और पदार्थ-(प्राण) हे प्राण (यदा) जब (अभिवर्षसि) बरसता है (अथ) अनन्तर (ते) तेरी (इमाः) यह (प्रजाः) प्रजाएँ (कामाय) इच्छाके अर्थ (अन्नम्) अन्न (भविष्यति) होगा (इति) ऐसा [मत्वा] मानकर (आनंदरूपाः) आनन्दको प्राप्त हुई (तिष्ठन्ति) स्थित होती हैं [अथवा, प्राणते, इतिपाठे] अथवा 'प्राणते' ऐसा पाठ माना जाय तो (इमाः) यह (प्रजाः) प्रजाएँ (प्राणते) चेष्टा करती हैं ॥ १० ॥

भावार्थ-हे प्राण जब तू मेघ होकर वर्षा करता है उस समय तेरी रची हुई यह प्रजाएँ इच्छानुसार अन्न होगा, ऐसा मानकर आनन्दित होती हैं १०

व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्वनः ११

अन्वय और पदार्थ-(प्राण) हे प्राण (त्वम्) तू (व्रात्यः) असंस्कृत (एक ऋषिः) एकर्षि नामक अग्नि (विश्वस्य) सकल भक्ष्य द्रव्योंका (अत्ता) भक्षक (सत्पतिः) श्रेष्ठ पति (वयम्) हम (आद्यस्य) भक्षण योग्य पदार्थके (दातारः) देनेवाले हैं (त्वम्) तू (मातरिश्वनः) वायुका (पिता) पिता है [मातरिश्वन् नः इति पाठे-तु हे मातरिश्वन्, नः, पिता-[हे वायो ! तू हमारा, पिता है] ॥११॥

भावार्थ-हे प्राण ! तू सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ

उससमय किसी संस्कार करनेवालेके न होनेसे तू संस्कार न किया हुआ अर्थात् स्वभावसे शुद्ध है और ऋषियोंमें प्रसिद्ध एकर्षि नामका अग्नि होकर सकल हवियोंका भोक्ता और सकल विश्वका श्रेष्ठ पति है, हम तेरे भक्षणके योग्य हविके दाता हैं, तू वायुका पिता है [अथवा पाठान्तरमें] हे वायो ! तू हमारा पिता है ॥ ११ ॥

या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि । या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(या) जो (ते)तेरी (तनूः) मूर्त्ति (वाचि)वाणीमें (प्रतिष्ठिता) स्थित है (या) जो (चक्षुषि) चक्षुमें (च) और (या) जो (मनसि) मनमें (सन्तता) व्याप्त है (ताम्) उसको (शिवाम्) शांत (कुरु) कर (मा) मत (उत्क्रमीः) उत्क्रमण कर ॥ १२ ॥

भावार्थ-हे प्राण ! जो तुम्हारी मूर्त्ति बोलनारूप चेष्टाको करती हुई वाणीमें स्थित है,जो श्रोत्रेन्द्रिय में, जो चक्षुमें, और जो मनमें व्याप्त हो रही है उसको शान्तभावसे स्थित करो उसको बाहर न निकालो, उससे ही हम सबोंका कल्याण है ॥१२॥

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम् मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञाञ्च इति ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(इदम्) यह (सर्वम्) सब (च) और (यत्) जो (त्रिदिवे) स्वर्गमें (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (प्राणस्य) प्राणके (वशे) वशमें [अस्ति] है (माता) माता (पुत्रान्-इव) पुत्रोंको जैसे (रक्षस्व) रक्षाकर (नः) हमारे अर्थ (श्रीःश्रियः) लक्ष्मियोंको (च) और (प्रज्ञाम्) बुद्धिको (च) भी (विधेहि)कर (इति)इसप्रकार [सर्वेन्द्रियैः उक्तम्] सब इन्द्रियोंने कहा ॥ १३ ॥

(भावार्थ)–हे प्राण ! हम अधिक क्या कहैं इस लोक में जो कुछ भोग की सामग्री है और स्वर्ग में भी जो कुछ देवताओंके उपयोग का भंडार है वह सब प्राणके ही वश में है हे प्राण ! जैसे माता पुत्रों की रक्षा करती है, तैसे ही तुम हमारी रक्षा करो वेद धनरूप ब्राह्मणों को और ऐश्वर्यरूप क्षत्रियादि की लक्ष्मियें तथा अपनी स्थिति-युक्त बुद्धि हमें, दो, इसप्रकार सकल इन्द्रियों ने प्राणकी स्तुति की और सकल सामर्थ्य वाला प्राणरूप प्रजापति ही है ऐसा निश्चय किया है ॥ १३ ॥

इति द्वितीयः प्रश्नः

—o—

तृतीयः प्रश्नः

अथ हैनं कौशल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ भगवन् कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्छरीरे

आत्मानम्वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) इस के अनन्तर (एनम्) इन को (ह) प्रसिद्ध (आश्वलायनः) अश्वल का पुत्र (कौशल्यः) कौशल्य (इति) इस प्रकार (पप्रच्छ) पूछता हुआ (भगवन्) हे भगवन् (एषः) यह (प्राणः) प्राण (कुतः) किससे (जायते) उत्पन्न होता है (अस्मिन्) इस (शरीरे) शरीर में (कथम्) कैसे (आयाति) आता है (वा) या (आत्मानम्) अपने को (प्रविभज्य) विभक्त करके (कथम्) कैसे (प्रातिष्ठते) स्थित होता है (केन) किस वृत्ति करके (उत्क्रमते) शरीरसे बाहर निकलता है (बाह्यम्) बाहर की वस्तु को (कथम्) कैसे (अध्यात्मम्) आध्यात्मिक वस्तु को (कथम्) कैसे (अभिधत्ते) धारण करता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)—तदनन्तर अश्वल के पुत्र कौशल्य ऋषिने पिप्पलाद मुनिसे बूझा कि—हे भगवन् ! यह प्राण कहांसे उत्पन्न होता है ? और इस शरीर में किसप्रकार आता है ? फिर यह अपने आपको विभक्त करके किसप्रकार स्थित होता है? किस वृत्ति से इस शरीरमेंसे बाहरको निकलता है और बाहरी अधिभूत अधिदैवको तथा भीतरी आध्यात्मिक वस्तुओंको किस प्रकार धारण करता है ॥ १ ॥

तस्मै स होवाचातिप्रश्नान् पृच्छसि ।
ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि ॥२॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मै) तिसके अर्थ (सः) वह (ह) स्पष्ट (इति) ऐसा (उवाच) बोला (अतिप्रश्नान्) कठिन प्रश्नों को (पृच्छसि) पूछता है (ब्रह्मिष्ठः) ब्रह्मविचारमें मग्न (असि) है (तस्मात्) तिससे (ते) तेरे अर्थ (अहम्) मैं (ब्रवीमि) कहता हूँ ॥ २ ॥

(भावार्थ)— तिससे पिप्पलाद मुनि ने कहा कि—पहिले तो प्राण को ही जानना कठिन है, तिस पर भी तू परमदुर्ज्ञेय प्राण का जन्म आदि बूझता है, यह तेरे प्रश्न बड़े कठिन हैं, तथापि तू वेदवेत्ता है इसप्रकार मैं तुझसे कहता हूं, सुन॥२॥

आत्मन एष प्राणो जायते यथैषा पुरुषे छायैत-स्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ३

अन्वय और पदार्थ-(आत्मनः) आत्मा से (एषः) यह (प्राणः) प्राण (जायते) उत्पन्न होता है (यथा) जैसे (पुरुषे) पुरुषमें (एषा)यह (छाया) छाया है [तथा] तैसे ही (एतस्मिन्) इस आत्मा में (एतत्) यह (आततम्) विस्तृत है (मनोकृतेन) मनके संकल्प करके (अस्मिन्) इस (शरीरे) शरीर में (आयाति) आता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-यह प्राण परमात्मा से उत्पन्न होता

है जैसे मनुष्य में छाया रहती है तैसे ही आत्मा में यह प्राणात्मक छाया समान मिथ्यारूप वाला तत्त्व रहता है, मन के सङ्कल्प इच्छा आदि करके किये हुए कर्म से इस शरीर में आता है ॥३ ॥

यथा सम्राडेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते । एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राणः । इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेव सन्निधत्ते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यथा) जैसे (सम्राट् एव) चक्रवर्त्ती राजा ही (अधिकृतान्) कर्मचारियों को (एतान्) इन (ग्रामान्) ग्रामों के प्रति (एतान्) इन (ग्रामान्) ग्रामों को (अधितिष्ठस्व) अधिपति बनकर शासन करो (इति) इस प्रकार (विनियुङ्क्ते) नियुक्त करता है (एवम्-एव) ऐसे ही (एषः) यह (प्राणः) प्राण (इतरान्) अन्य (प्राणान्) प्राणों को (पृथक्-पृथक् एव) अलग अलग ही (सन्निधत्ते) स्थापित करता है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)—जैसे चक्रवर्त्ती राजा ही तुम इतने ग्रामों का शासन करो, तुम इतने ग्रामों का शासन करो, इस प्रकार कर्मचारियों को अधिकार पर नियुक्त करता है, तैसे ही यह प्राण ही चक्षु आदि इन्द्रियरूप अन्य प्राणों को भिन्न २ स्थानों में स्थापित करता है ॥ ४ ॥

पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः । एष ह्येतद्धुतमन्नं समन्नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति।

अन्वय और पदार्थ–(पायूपस्थे) मलद्वार और मूत्र द्वार में (अपानम्) अपानवायु को [संनिधत्ते] स्थापित करता है (स्वयम्) अपने आप (प्राणः) प्राण (मुखनासिकाभ्याम्) मुख और नासिका से [निर्गच्छन्] निकलता हुआ (चक्षुःश्रोत्रे) चक्षु श्रोत्र में (प्रातिष्ठते) स्थित होता है (मध्ये–तु) मध्य में तो (समानः) समान वायु [अवस्थितः] स्थित है (हि) निश्चय (एषः) यह (एतत्) इस (हुतम्) होमे हुए (अन्नम्) अन्न को (समन्नयति) समानरूप में पहुँचाता है (तस्मात्) तिससे (एताः) यह (सप्त) सात (अर्चिषः) दीप्तियें (भवन्ति) होती हैं ॥ ५ ॥

(भावार्थ ,---मलद्वार और मूत्रद्वाररूप जननेन्द्रिय में मल मूत्र को बाहर को ढकेलने वाले अपानवायु को स्थापित किया है प्राण अपने आप मुख और नासिका के द्वार से निकल कर नेत्र और कर्ण में निवास करता है, मध्यमें समान वायु स्थित है, यह ही जठराग्निमें हवन किये हुए अर्थात् खाये हुए अन्न को समानरूप से लेजाता है, अर्थात् शरीर के भिन्न २ भागों में समानभाव से पहुँचा

देता है इस से ही अर्थात् पेट में स्थित अन्नरूप ईंधन से होने वाले जठराग्निके संतापसे ही सात लपटें निकलती हैं अर्थात् प्राण के द्वारा ही, दो चक्षु, दो कर्ण, दो नासिका के गोलक और एक मुख इन सातोंमें को दर्शन श्रवण आदि से रूप आदि विषयों का प्रकाश होता है ॥ ५ ॥

हृदि ह्येष आत्मा अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥

अन्वय और पदार्थ—(हि) निश्चय (एषः यह (आत्मा) आत्मा (हृदि) हृदयमें [अस्ति] है (अत्र) यहां (नाडीनाम्) नाड़ियोंका (एतत्) यह (एकशतम्) एकसौ एक [अस्ति] है (तासाम्) उनमें (एकैकस्याम्) एक २ में (शतम्-शतम्) सौ सौ [अस्ति] है [तासाम्] उनमें (द्वासप्ततिः-द्वासप्ततिः) बहत्तर बहत्तर (प्रतिशाखानाड़ीसहस्राणि) हरएक शाखा-नाड़ीके सहस्र (भवन्ति) होते हैं (आसु) इनमें (व्यानः) व्यान (चरति) विचरता है ॥ ६ ॥

भावार्थ-हृदयमें ही यह आत्मा [चिदाभास-जीव] है, इस हृदयमें एकसौ एक प्रधान नाड़ियें हैं, उन नाड़ियोंमें हरएकमें, एक २ सौ शाखानाड़ी हैं,

और फिर उनमें भी एक २ शाखानाड़ीमें बहत्तर बहत्तर सहस्र शाखानाड़ियें होती हैं। इन सब नाड़ियोंमें व्यान कहिये सब शरीरमें व्यास होकर रहनेवाला वायु विचरता है ॥ ६ ॥

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति । पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥

अन्वय और पदार्थ–(अथ)इसके अनंतर (एकया) एक करके (ऊर्ध्वः) ऊपरको गया हुआ (उदानः) उदान वायु (पुण्येन) पुण्यकर्म करके (पुण्यम्) पुण्य (लोकम्) लोकको (पापेन) पाप कर्म करके (पापम्) पाप लोकको (उभाभ्याम्–एव) पाप पुण्य दोनों करके ही (मनुष्यलोकम्) मनुष्यलोक को (नयति) लेजाता है ॥ ७ ॥

भावार्थ–उनमें से एक सुपुम्ना नामक नाड़ी ऊपरको गई है, उसके द्वारा उदान वायु ऊपरको जाकर जीवको पुण्यकर्मके द्वारा देवयोनि आदि पुण्यलोकको, पापकर्मके द्वारा पशु पक्षी आदिकी योनिरूप पापलोकको और पाप पुण्य दोनों ही प्रकारके कर्मसे मनुष्ययोनिमें पहुंचाता है ॥ ७ ॥

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः । पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(आदित्यः) सूर्य (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय (बाह्यः) बाहरका (प्राणः) प्राण है (एषः) यह (हि) निश्चय (एनम्) इस (चाक्षुषम्) चक्षु इन्द्रियमें स्थित (प्राणम्) प्राण के प्रति (अनुगृह्णानः) अनुग्रह करता हुआ (उद्यति) उदित होता है (पृथिव्याम्) पृथिवीमें (या) जो (देवता) देवता है (सा) वह (एषा) यह (पुरुषस्य) पुरुषके (अपानम्) अपानवायुको (अवष्टभ्य) वशमें करके [वर्त्तते] है (यत्) जो (अन्तरा) मध्यमें (आकाशः) आकाश है (सः) वह (समानः) समान (वायुः) वायु (व्यानः) व्यान है ॥ ८ ॥

भावार्थ—आदित्य ही बाहरका प्राण है, जो कि—चक्षुमें स्थित प्राणको सहायता देता हुआ अर्थात् रूपकी प्राप्तिके लिये चक्षुमें प्रकाश देता हुआ उदित होता है, पृथिवीमें जो देवता है अर्थात् जो देवता 'मैं पृथिवी हूँ' ऐसा मानती है वह मनुष्यके अपान को वशमें किये हुए है अर्थात् अपानको नीचेको खेंचकर सहायता देता है, स्वर्ग और पृथिवीके मध्य में जो आकाश है उसमें स्थित वायु, मञ्च पर स्थित पुरुषकी समान, आकाश शब्दसे कहा जाता है, वह वायुके ऊपर अनुग्रह करता रहता है और सामान्यसे जो बाहरका वायु है वह व्यान वायुको सहायता देता रहता है ॥ ८ ॥

तेजो ह वै उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः ।
पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तेजः) तेज (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय (उदानः) उदान है (तस्मात्) तिससे (उपशान्ततेजाः) शांत हुआ है तेज जिस का ऐसा पुरुष (मनसि) मनमें (सम्पद्यमानैः) प्रवेश करते हुए (इन्द्रियैः) इन्द्रियों करके [सह] सहित (पुनर्भवम्) अन्य शरीरको [प्राप्नोति] प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)—बाहरी तेज ही उदान है अर्थात् उदान वायुको सहायता देता रहता है , इस कारण जिस मनुष्यका बाहरी तेज शान्त होजाता है, उस मनुष्यकी आयु क्षीण हुई समझना चाहिये, वह मनमें प्रविष्ट हुई इन्द्रियोंके साथ अन्य शरीरको पाता है ॥ ६ ॥

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः । सहात्मना यथासंकल्पितं लोकं नयति १०

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह जीव [मरण-काले] मरणके समयमें (यच्चित्तः) जैसे चित्तवाला (भवति) होता है (तेन) उस चित्तके साथ (प्राणम्) प्राणवृत्तिके प्रति (आयाति) आता है (प्राणः) प्राण (तेजसा) उदानवृत्ति करके (युक्तः) युक्त हुआ (आत्मना सह) जीवात्मा सहित (यथा-

संकल्पितम्) जैसा संकल्प किया है उस (लोकम्) लोकको (नयति) लेजाता है ॥ १० ॥

भावार्थ–मरणकालमें इस जीवका चित्त जैसा होता है, वैसे ही चित्तके साथ वह प्राणको प्राप्त होता है अर्थात् इन्द्रियोंकी वृत्ति क्षीण होकर केवल मुख्य प्राणवृत्तिके साथ ही स्थित रहता है, वह प्राण तेज अर्थात् उदानवृत्तिसे युक्त होकर शरीरके स्वामी जीवात्माके साथ तादात्म्यको पाता है और पुण्य–पाप–रूप कर्मके वशीभूत हुआ, मनमें जैसी वासना भरी होती हैं उनके अनुसार योनिमें पहुँचा देता है ॥ १० ॥

य एवं विद्वान् प्राणं वेद । न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (विद्वान्) ज्ञानी (प्राणम्) प्राणको (एवम्) इसप्रकार (वेद) जानता है (अस्य) इसकी (ह) प्रसिद्ध (प्रजा) सन्तान (न) नहीं (हीयते) नष्ट होती है [सः] वह (अमृतः) अमर (भवति) होता है (तत्) तिसमें (एषः) यह (श्लोकः) मन्त्र है ॥ ११ ॥

भावार्थ–जो ज्ञानी पुरुष इसप्रकारसे प्राणके रहस्यको जानजाता है उसकी पुत्र पौत्र आदि प्रजा विनष्ट नहीं होती है और वह अमर होजाता है, इस उद्देश्यको ही यह मन्त्र कहता है ॥ ११ ॥

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वञ्चैव पञ्चधा ।
अध्यात्मञ्चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञा-
यामृतमश्नुते ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्राणस्य) प्राणकी (उत्प-त्तिम्) उत्पत्ति को (आयतिम्) आगमन को (स्था-नम्) स्थिति को (च) और (विभुत्वम्) व्यापकत्व को (एव) ही (पञ्चधा) पांच प्रकार को (अध्या-त्मम्) अध्यात्म को (च) भी (विज्ञाय) जानकर (एव) ही (अमृतम्) अमरभाव को (अश्नुते) भोगता है ॥ १२ ॥

भावार्थ-प्राणकी परमात्मासे उत्पत्तिको, मनके किये हुए कर्मसे शरीरमें आगमनको, उपस्थ आदि स्थानोंमें स्थितिको और चक्रवर्ती राजा की समान प्राणवृत्तिके भेदसे पांचप्रकारसे स्थापनरूप स्वामीपन को तथा चक्षु आदिके आकारसे स्थितिरूप अध्यात्म को जानकर साधक अमरभावको पाता है ॥१२॥

इति तृतीयः प्रश्नः

—०—

चतुर्थः प्रश्नः

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ । भगवन्ने-तस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति कस्यैतत् सुखं

भवति कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति १

अन्वय और पदार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (ह) स्पष्ट (एनम्) इसको (सौर्यायणी) सौर्यका पुत्र (गार्ग्यः) गार्ग्य (इति) इस प्रकार (पप्रच्छ) पूछता हुआ (भगवन्) हे भगवन् (एतस्मिन्) इस (पुरुषे) जीवके शरीरमें (कानि) कौन (स्व पन्ति) सोते हैं (कानि) कौन (अस्मिन्) इसमें (जाग्रति) जागते हैं (कतरः) कौन (एषः) यह (देवः) देव (स्वप्नान्) स्वप्नोंको (पश्यति) देखता है (कस्य)किसका (एतत्) यह (सुखम्) सुख (भवति) होता है (कस्मिन्-नु) किसमें (सर्वे) सब (सम्प्रतिष्ठिताः) सम्यक प्रकारसे स्थित (भवन्ति) होते हैं ॥ १ ॥

(भावार्थ)–तदनन्तर सौर्यके पुत्र गार्ग्यमुनिने पिप्पलाद ऋषिसे प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! इस जीवके शरीरमें कौन २ सी इन्द्रियें शयन करती हैं अर्थात् अपने कार्यसे उपरत रहती हैं ? कौन २ सी इन्द्रियें जागती रहती हैं अर्थात् अपने कार्यको करती हैं,? कौनसी शक्ति स्वप्न देखती है ? यह जाग्रत् स्वप्न अवस्थामें अनुभव में आनेवाला सुख किस को होता है ? और यह सब किसमें जाकर लीन होजाते हैं ॥ १ ॥

तस्मै स होवाच। यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं

गच्छन्तः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति । तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तस्मै) तिसकेअर्थ (सः) वह (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (गार्ग्य) हे गार्ग्य (यथा) जैसे (अस्तम्) अस्तको (गच्छतः) जातेहुए (अर्कस्य) सूर्यकी (सर्वाः) सब (मरीचयः) किरणें (एतस्मिन्) इस (तेजोमण्डले) सूर्यमें (एकीभवन्ति) एकताको प्राप्त होजाती हैं (पुनः) फिर (उदयतः) उदय होते हुए की (ताः) वह किरणें (पुनः) फिर (प्रचरन्ति) फैलती हैं (एवम्) ऐसे (ह) ही (वै) निश्चय (तत्) वह (सर्वम्) सब (परे) उत्तम (देवे) प्रकाशवाले (मनसि) मन में (एकीभवति) एकरूप होजाता है (तेन) तिस कारण (तर्हि) उस समय (एषः) यह (पुरुषः) पुरुष (न) नहीं (शृणोति) सुनता है (न) नहीं (रसयते) स्वाद लेता है (न) नहीं (स्पृशते) छूता है (न) नहीं (अभिवदते) बोलता है (न) नहीं (आदत्ते) ग्रहण करता है (न) नहीं (आनन्दयते) आनन्द मानता है (न) नहीं (विसृ-

जते) मल त्यागता है (न) नहीं (इयायते) चलता है [तदा] तब (स्वपिति) सोता है (इति) ऐसा (आचक्षते) कहते हैं ॥ २ ॥

(भावार्थ)-पिप्पलाद ने कहा कि-हे गार्ग्य ! जैसे सूर्य के अस्त होते समय उसकी सब किरणें इस तेजोमण्डल सूर्य में ही प्रविष्ट होकर एकीभूत (लीन) होजाती हैं तथा फिर सूर्य का उदय होते समय वह किरणों का समूह फिर उस तेजोमण्डल में से निकल कर बाहर फैलजाता है तिसी प्रकार यह विषय और इन्द्रियें आदि सब अपने से श्रेष्ठ देव(शक्ति)रूप मन में एकीभूत कहिये लीन होजाते हैं, इसीकारण उस समय यह पुरुष न सुनता है,न देखता है, न सूँघता है, न स्वाद लेता है, न छूता है, न बोलता है, न कुछ ग्रहण करता है न मूत्रेन्द्रिय का आनन्द पाता है, न मल का त्याग करता है, और न गमन करता है अर्थात् कुछ भी नहीं करता है, उस समय यह सो रहा है ऐसा कहते हैं ॥ २ ॥

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद् गार्हपत्यात्प्रणीयते प्राणयनादाहवनीयः प्राणः ।

अन्वय और पदार्थ-(तदा) तब (एतस्मिन्) इस (पुरे) पुररूप शरीर में (प्राणाग्नयः) पांच

प्राणस्वरूप अग्नि (एव) ही (जाग्रति) जागते हैं (एषः) यह (अपानः) अपान (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय (गार्हपत्यः) गार्हपत्यनामा अग्नि (व्यानः) व्यान (अन्वाहार्यपचनः) दक्षिणाग्नि (यत्) जो (प्रणयनात्) प्रणयन (गार्हपत्यात्) गार्हपत्य से (प्रणीयते) बनायाजाता है (प्राणः) प्राण (आहवनीयः) आहवनीय है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-उस समय इस शरीररूप पुर में केवल प्राणाग्निये अर्थात् घर में रक्षा की हुई अग्नियों की समान प्राण आदि पाँच वायु जागते रहते हैं, उनमें यह अपान ही गार्हपत्य अर्थात् यज्ञ का प्रधान अग्नि है, व्यान अन्वाहार्यपचन अर्थात् दक्षिणाग्नि है [व्यान दाहिने छिद्र के द्वारा हृदय में से बाहर को निकलता है और दक्षिणाग्नि दाहिने कुण्ड में रहता है, इसप्रकार दक्षिण दिशा के साथ दोनों का संबन्ध होने से दोनों की समता है [क्योंकि-प्रणयन कहिये जिससे और अग्नियें बनाईजायँ ऐसे गार्हपत्यसे आहवनीय बनाईजाती है, अतएव प्राण आहवनीय है अर्थात् जैसे आहवनीय अग्नि गार्हपत्य अग्नि से बनाई जाती है तैसे ही सुषुप्तिकाल में प्राण भी अपानवायु से बनाया जाता है ॥ ३ ॥

यदुच्छ्वासनिश्वासावेताहुती समं नयतीति स समानः । मनो ह वाव यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) क्योंकि (आहुती) [इव] आहुतियों की समान (एतौ) इन (उच्छ्वासनिश्वासौ) उच्छ्वास और निश्वासको (समम्) समान भाव से (नयति) लेजाता है (इति) इस से (समानः) समान है (सः) वह (ह) प्रसिद्ध (मनः) मन (यजमानः-वाव) यज्ञ मनकी समान है (उदानः-एव) उदान ही (इष्टफलम्) याग का फल है (सः) वह (एनम्) इस (यजमानम्) यजमान को (अहः अहः) प्रतिदिन (ब्रह्म) ब्रह्मको (गमयति) प्राप्त कराता है ॥

(भावार्थ)-क्योंकि-समान, अग्निहोत्र यज्ञकी प्रधान दो आहुतिस्वरूप इस उच्छ्वास और निश्वास कहिये ऊर्ध्वश्वास और अधःश्वासको, शरीर की स्थितिके लिये समानभावमें पहुँचाता है,इस कारण समान ही होता है। मन ही यजमान है, क्योंकि वह कर्त्ता और फलका भोक्ता है,उदान ही यज्ञका फल है, क्योंकि-वह मन नामक यजमान को प्रतिदिन सुषुप्तिकालमें ब्रह्मकी प्राप्ति कराता है अर्थात सुषुप्तिकाल में प्रपञ्च शान्त होजाता है, और परमानन्द का अनुभव होता है, इसकारण यह ब्रह्मभाव है ॥ ४ ॥

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति। यद् दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति

दृष्टञ्चादृष्टञ्च श्रुतञ्चाश्रुतञ्चानुभूतञ्चाननुभूतञ्च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस दशामें (एषः) यह (देवः) प्रकाशवाला मन (स्वप्ने) स्वप्न में (महिमानम्) महिमा को (अनुभवति) अनुभव करता है (यत्) जो (दृष्टम्) देखा है (तत्) उसको (दृष्टम्) [इव] देखाहुआसा (अनुपश्यति) देखता है (श्रुतम्) सुनेहुए को (श्रुतम्) [इव] सुनाहुआ सा (अनुशृणोति) सुनता है (च) और (देशदिगन्तरैः) देश और दिशाओं में (प्रत्यनुभूतम्) तहां २ अनुभव कियेहुए को (पुनः पुनः) बार बार (प्रत्यनुभवति) अनुभव करता है (दृष्टम्) इस जन्ममें देखे हुए को (च) और (अदृष्टम्) जन्मान्तर में देखे हुए को (च) भी (श्रुतम्) इस जन्म में सुनेहुएको (च) और (अश्रुतम्) जन्मान्तर में सुने हुए को (च) भी (अनुभूतम्) इस जन्म में अनुभव किये हुए को (अननुभूतम्)जन्मान्तर में अनुभव किये हुए को (च) भी (सत्) सत को (च) भी (च) और (असत) असत् को (च) भी (सर्वम्) सब को (पश्यति) देखता है (सर्वः) सकल उपाधि युक्त हुआ (पश्यति) देखता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ) इस अवस्थामें यह देवता अर्थात्

मन स्वप्नमें महिमा अर्थात् विषयोंको विचित्र-रूप विभूति का अनुभव करता है, जो पहिले देखा है उसको पीछे देखाहुआ सा अनुभव करता है, जो सुना है उसको, तिस वासना से, पीछे सुना हुआ सा सुनता है, अनेकों देश और दिशाओंमें अनुभव कीहुई वस्तुओंको वार वार अनुभव करता है, इस जन्म और जन्मान्तरोंमें देखे, सुने और अनुभव कियेहुए वास्तवमें जल आदिकी समान सत्स्वरूप और मरुमरीचिकाकी समान असत्स्वरूप, इन सब वस्तुओंको जो देखता है वह मनकी सकल वासनारूप उपाधिवाला होकर देखता है ॥ ५ ॥

स यदा तेजसाभिभूतो भवति । अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्छरीरे एतत् सुखं भवति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यदा) जब (तेजसा) तेजकरके (अभिभूतः) तिरस्कृत (भवति) होता है (अत्र) इसदशा में (एषः) यह (देवः) देव (स्वप्नान्) स्वप्नोंको (न) नहीं (पश्यति) देखता है (अथ) इसके अनन्तर (तदा) उस समय (एतस्मिन्) इस (शरीरे) शरीरमें (एतत्) यह (सुखम्) सुख (भवति) होता है।

(भावार्थ)—यह मनोरूप देवता जिस समय चिन्ता नाम सूर्यके तेजसे नाडीरूप शय्यामें सब ओरसे तिरस्कारको पाजाता है अर्थात् वासना उठने

का द्वाररूप स्वप्नभोगका दाता कर्म दब जाता है तब इन्द्रियों सहित मनकी वासना रूप किरणें हृदय में लीन हो जाती हैं, तब मन घनके अग्नि की समान सारे शरीरमें चैतन्यरूपसे व्यापजाता है, तब ही सुषुप्तिअवस्था होती है, इस समय यह मन देवता स्वप्नोंको नहीं देखता है, क्योंकि—देखनेका द्वार तो रुका होता है तब पीछेसे शरीरमें अबाधभावसे सर्वत्र व्यापक निर्मल ज्ञानस्वरूप सुख होता है ॥६॥

स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सोम्य) हे प्रियदर्शन (यथा) जैसे (वयांसि पक्षी (वासोवृक्षम्) वास के निमित्त वृक्षको (सम्प्रतिष्ठन्ते) प्रस्थान करते हैं (एवम्) इस प्रकार (ह) ही (वै) निश्चय (सः) वह (तत्) वह (सर्वम्) सब (परे) परम (आत्मनि) आत्मा में (सम्प्रतिष्ठते) जाकर लीन होता है ॥७॥

(भावार्थ)-हे प्रियदर्शन ! उस विषयमें यह दृष्टांत है कि-जैसे पक्षी सायंकालके समय निवास के वृक्षकी ओरको जाकर आश्रय लेते हैं, तैसे ही ऊपरके मंत्रमें कहा हुआ यह पृथिवी आदि सब ही प्रपञ्च अविनाशी परमात्मामें जाकर आश्रय पाता है अर्थात् लीन होजाता है ॥ ७ ॥

पृथीवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च

तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाका-
शश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च
श्रोतव्यञ्च घ्राणञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयि-
तव्यञ्च त्वक्च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च
हस्तौ च दातव्यञ्चोपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च
वायुश्च विसर्जयितव्यञ्च पादौ च गन्तव्यञ्च
मनश्च मन्तव्यञ्च बुद्धिश्च बोद्धव्यञ्चाहङ्कार-
श्चाहंकर्त्तव्यञ्च चित्तञ्च चेतयितव्यञ्च तेजश्च
विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च विधारयितव्यञ्च ८

अन्वय और पदार्थ—(पृथिवी) पृथिवी (च) और (पृथिवीमात्रा) सूक्ष्मपृथिवी (च) भी (आपः) जल (च) और (आपोमात्रा) सूक्ष्म जल (च) भी (तेजः) तेज (तेजोमात्रा) सूक्ष्मतेज (च) भी (वायुः) वायु (च) और (वायुमात्रा) सूक्ष्मवायु (च) भी (आकाशः) आकाश (च) और (आकाशमात्रा) सूक्ष्म आकाश (च) भी (चक्षुः) चक्षु (च) और (द्रष्टव्यम्, च) देखने योग्य वस्तु भी (श्रोत्रम्) कर्ण (च) और (श्रोतव्यम्—च) सुनने योग्य वस्तु भी (घ्राणम्) घ्राणेन्द्रिय (च) और (घ्रातव्यम्—च) सूँघने योग्य वस्तु भी (रसः) रस (च) और (रसयितव्यम्-च) स्वाद लेने योग्य वस्तु भी (त्वक्)

त्वचा (च) और (स्पर्शयितव्यम् च) स्पर्श करने योग्य वस्तु भी (वाक्)वाणी (च) और (वक्तव्यम्-च) बोलने योग्य वस्तु भी (हस्तौ) दोनों हाथ (च) और (आदातव्यम्-च) ग्रहण करने योग्य वस्तु भी (उपस्थः)जननेन्द्रिय (च) और (आनन्दयितव्यम्-च) आनन्द देने योग्य वस्तु भी (पायुः) गुदा (च) और (विसर्जयितव्यम्-च) मलरूपसे त्यागने योग्य वस्तु भी (पादौ) चरण (च) और (गन्तव्यम्-च) चलने योग्य वस्तु भी (मनः) मन (च) और (मन्तव्यम्-च) मनने योग्य वस्तु भी(बुद्धिः) बुद्धि (च) और (बोद्धव्यम्, च) जानने योग्य वस्तु भी (अहङ्कारः) अहङ्कार (च) और (अहंकर्त्तव्यम्-च) अहङ्कार करने योग्य वस्तु भी (चित्तम्) चित्त (च) और (चेयितव्यम्-च चिंतवन करने योग्य वस्तु भी(तेजः) तेज (च) और (विद्योतयितव्यम्-च) प्रकाश करने योग्य वस्तु भी (प्राणः) प्राण (च) और (विधारयितव्यम्-च) धारण करने योग्य वस्तु भी ॥ ८ ॥

(भावार्थ)–स्थूल पृथिवी और सूक्ष्म पृथिवी जल और जलकी तन्मात्रारूप सूक्ष्मजल, तेज और सूक्ष्मतेज, वायु और सूक्ष्मवायु, आकाश और आकाशकी तन्मात्रा, चक्षु और देखने योग्य पदार्थ, कर्ण और सुनने योग्य पदार्थ, नासिका और सूँघने योग्य पदार्थ, जिव्हा और स्वाद लेने योग्य पदार्थ,

त्वचा और छूने योग्य पदार्थ, वाणी और वक्तव्य, हाथ और ग्रहण करने योग्य वस्तु, उपस्थ और उसका विषय, गुदा और त्यागने योग्य मल, चरण और चलने योग्य पदार्थ,मन और मन्तव्य, बुद्धि और जानने योग्य पदार्थ अहंकार और अहंकारका विषय, चित्त और चिन्ताका विषय, प्रकाश और प्रकाशका विषय, प्राण और प्राणके द्वारा संगठित होनेवाले सकल कार्य कारण नाम-रूपात्मक पदार्थ, यह सब सुषुप्तिकालमें आत्मामें लीन होजाते हैं ८

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः । स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) निश्चय (एषः) यह (द्रष्टा) देखने वाला (स्प्रष्टा) स्पर्श करनेवाला (श्रोता) सुननेवाला (घ्राता) सूँघनेवाला (रसयिता) स्वाद लेनेवाला (मन्ता) मनन करनेवाला (बोद्धा) जाननेवाला (कर्त्ता) करनेवाला (विज्ञानात्मा) विज्ञानस्वभाव (पुरुषः) पुरुष [अस्ति] है (सः) वह (अक्षरे) अविनाशी (परे) परम (आत्मनि) आत्मामें (सम्प्रतिष्ठते) लीन होता है ।

भावार्थ—जलमें पड़नेवाले सूर्यके प्रतिबिम्बकी समान शरीरोंमें प्रविष्ट हुआ विज्ञानस्वरूप पुरुष ही देखनेवाला स्पर्श करनेवाला,सुननेवाला, सूंघने वाला, स्वाद लेनेवाला, मनन करनेवाला, जानने

वाला और प्राण आदिका कर्त्ता है, यह भी सुषुप्ति-काल में अविनाशी परमात्मामें इसप्रकार लीन होजाता है, जैसे जल आदिमें पड़नेवाला सूर्यका प्रतिबिंब जल आदिके सूखजाने पर सूर्यमें प्रविष्ट होजाता है ॥ ९ ॥

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छाय मशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य । स सर्वज्ञः सर्वो भवति तदेष श्लोकः ॥

अन्वय और पदार्थ-(सोम्य) हे सोम्य (यः) जो (तु) तो (ह) स्पष्ट (वै) निश्चय (तम्) उस (अच्छायम्) अज्ञानरहित (अशरीरम्) उपाधि रूप शरीरोंसे रहित (अलोहितम्) निर्गुण (शुभ्रम्) उज्ज्वल (अक्षरम्) अविनाशीको (वेदयते) जानता है (सः) वह (परम्) श्रेष्ठ (अक्षरम्) अविनाशीको (प्रतिपद्यते) प्राप्त होता है (यः तु) जो तो (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ है (सः) वह (सर्वः) सर्वरूप (भवति) होता है (तत्) तिसमें (एषः) यह (श्लोकः) श्लोक है ॥ १० ॥

भावार्थ-हे सोम्य! सकल कामनाओंसे रहित हुआ जो पुरुष, तिस अज्ञानरहित, नामरूप सकल उपाधियोंके शरीरोंसे रहित, सकलगुणोंसे रहित, शुद्ध उज्ज्वल, अविनाशी, अजन्माको जानता है वह अक्षररूप परब्रह्मको ही पाता है और जो जानता है

वह सर्वज्ञ है, पहिले अविद्यासे असर्वज्ञ था, पीछे विद्यासे अविद्याके दूर होने पर सर्वरूप होता है, इसी विषयमें यह आगेका वाक्य रूप मन्त्र प्रमाण है १०

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र । तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सोम्य) हे सोम्य ! (यत्र) जिस अविनाशीमें (विज्ञानात्मा) विज्ञानस्वभाव (प्राणाः) प्राण (भूतानि) भूत (च) और (सर्वैः) सकल (देवैःसह) देवोंके साथ (सम्प्रतिष्ठन्ति) लीन होते हैं (तत्) उस (अक्षरम्) अविनाशीको (यः-तु) जो तो (वेदयते) जानता है (सः) वह (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ हुआ (सर्वम्-एव) सबमें ही (आविवेश) प्रविष्ट हुआ है (इति) इस प्रकार यह प्रश्न समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-हे सोम्य ! अन्तःकरण उपाधिवाला आत्मा, सकल प्राण, पञ्चभूत, अग्निआदि सकल देवताओंके साथ वा चक्षु आदि इन्द्रियोंके साथ जिस अविनाशी ब्रह्म में लीन होते हैं, उस अविनाशीको जो जानता है वह सर्वज्ञ होकर सब में ही प्रवेश करता है ॥ ११ ॥

इति चतुर्थः प्रश्नः ।

पञ्चमः प्रश्नः

अथ हैनं शैब्य सत्यकामः पप्रच्छ । स यो ह वै तद् भगवन् मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत । कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (सः) वह (शैब्यः) शिविका पुत्र (सत्यकामः) सत्यकाम (एनम्) इन पिप्पलादको (इति) इसप्रकार (ह) स्पष्ट (पप्रच्छ) बूझताहुआ (भगवन्) हे भगवन् (मनुष्येषु) मनुष्योंमें (यः) जो (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय (प्रायणान्तम्) मरणान्त (तत्) उस (ओँकारम्) ओँकार को (अभिध्यायीत) ध्यान करे (सः वाव) वह (तेन) तिसके द्वारा (कतमम्) कौनसे (लोकम्) लोकको (जयति) जीतता है ॥ १ ॥

भावार्थ—ऊपर कहे अनुसार अक्षरका उपदेश करने पर भी जिसको ज्ञान न हो उसके निमित्त अब प्रणवकी उपासना कहते हैं कि—तदनन्तर शिविके पुत्र सत्यकामने पिप्पलाद मुनिसे प्रश्न किया कि—हे भगवन् ! मनुष्योंमें जो विचारवान् पुरुष मरणकाल तक यावज्जीवन ओंकारका ध्यान करता है वह उस ध्यानके प्रभावसे किस लोकको प्राप्त होता है ? ॥ १ ॥

तस्मै स होवाच । एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सः) वह (तस्मै) तिसके अर्थ (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (सत्यकाम) हे सत्यकाम (यत्) जो (ॐकारः) ॐकार है (एतत्) यह (वै) निश्चय (परम्) पर (च) और (अपरम्-च) अपर भी (ब्रह्म) ब्रह्म है (तस्मात्) उससे (विद्वान्) ज्ञानी (एतेन) इस (आयतनेन) आलम्बनके द्वारा (एव) ही (एकतरम्) एकको (अन्वेति) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

(भावार्थ)–उन पिप्पलाद मुनिने उससे कहा कि–हे सत्यकाम ! यह जो ॐकार है सो निःसन्देह निर्विशेष अविनाशी परब्रह्म और प्रथम उत्पन्न हुआ प्राण कहिये सूत्रात्मा अपरब्रह्म है, अर्थात् ॐकार परब्रह्म और अपरब्रह्म दोनों का प्रतीक है, अतः ॐकारमें दोनोंका ध्यान होता है, इसकारण इस उपायके द्वारा ज्ञानी पुरुष परब्रह्म और अपरब्रह्म दोनोंमें से एकको अपनी साधनाके अनुसार पाजाता है ॥ २ ॥

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्य-

लोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (यदि) जो (एकमात्रम्) एकमात्रावाले को (अभिध्यायीत) ध्यान करे (सः) वह (तेन एव) उस करके ही (सम्वेदितः) ज्ञानको प्राप्त हुआ (तूर्णम्-एव) शीघ्र ही (जगत्याम्) पृथिवी पर (अभिसम्पद्यते) जन्मता है (तम्) उसको (ऋचः) मंत्र (मनुष्य-लोकम्) मनुष्य शरीरको (उपनयन्ते) पहुंचाते हैं (सः) वह (तत्र) तहां (तपसा) तप करके (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य करके (श्रद्धया) श्रद्धा करके (संपन्नः) युक्त हुआ (महिमानम्) ऐश्वर्य को (अनुभवति) भोगता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—वह साधक यदि ओँकार की केवल एकमात्रा अकारका ही ध्यान करता है तो वह उसके द्वारा ही सम्यक् प्रकारसे ज्ञानवान् हुआ शीघ्र ही पृथिवी पर जन्म पाता है और ओँकारको अकार मात्र रूप ऋग्वेदके मन्त्र उसको मनुष्य योनि में पहुंचादेते हैं, वह उस मनुष्यशरीरमें तपस्या, ब्रह्मचर्य और आस्तिक्यबुद्धि से युक्त हुआ ऐश्वर्य को पाता है ॥ ३ ॥

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते स सोमलोकम् । स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अथ) और (यदि) जो (सः) वह (द्विमात्रेण) दो मात्रा करके (मनसि) मन में (सम्पद्यते) सम्पन्न होता है (सः) वह (यजुर्भिः) यजुर्वेद के मन्त्रों करके (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षरूप (सोमलोकम्) चन्द्रलोक को (उन्नीयते) ऊपर पहुंचाया जाता है (सः) वह (सोमलोके) चन्द्रलोक में (विभूतिम्) ऐश्वर्य को (अनुभूय) भोगकर (पुनः) फिर (आवर्तते) लौट आता है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)—और यदि वह साधक अकार उकाररूप दो मात्रारूपसे ॐकार का मनमें ध्यान करे तो उसको ॐकारकी दो मात्रास्वरूप यजुर्वेद के मन्त्रों के अभिमानी देवता, अन्तरिक्ष के विषै चन्द्रलोकमें पहुँचादेते हैं, चन्द्रलोकके ऐश्वर्यका अनुभव करके वह फिर लौटकर मनुष्लोकमें ही आता है

यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पुनः) फिर (यः) जो (ॐ इति) ॐ इसप्रकार के (एतेन) इस (त्रि-

मात्रेण) तीन मात्रावाले (अक्षरेण-एव) अक्षर करके ही (एतम्) इस (परम्) पर (पुरुषम्) पुरुष को (अभिध्यायीत) ध्यान करै (सः) वह (तेजसि) तेजोमय (सूर्ये) सूर्यलोकमें (सम्पन्नः) उपस्थित [भवति] होता है (यथा)जैसे(पादोदरः) सर्प (त्वचा) कैंचुलीसे (विनिर्मुच्यते) छूटता है (एवं, ह) ऐसे ही (सः) वह (वै) निश्चय (पाप्मना) पाप से (विनिर्मुक्तः) छूटा हुआ [भवति] होता है (सः) वह (सामभिः) साम वेद के मन्त्रों करके (ब्रह्मलोकम्) हिरण्यगर्भ लोक को (उन्नीयते) पहुँचायाजाता है (एतस्मात्) इस (जीवघनात्) सकल जीवाधारसे (सः) वह (परात्) पर से (परम्) पर (पुरिशयम्) शरीर में प्रवेश करनेवाले (पुरुषम्) पुरुष को (ईक्षते) देखता है (तत्) तिसपर (एतौ) यह (श्लोकौ) मन्त्र (भवतः) हैं ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-और जो -ॐ इस तीन मात्रावाले अक्षरके द्वारा इस परमपुरुष का ध्यान करता है, वह तेजोमय सूर्यलोक में पहुँचता है, जैसे सर्प कैंचुली से छूटता है, तैसे ही वह पाप से मुक्त होजाता है, वह सामवेद के मन्त्रों के अभिमानी देवताओं के द्वारा हिरण्यगर्भ के सत्यलोकरूप ब्रह्मलोक में पहुंचायाजाता है, इस सकल जीवोंके आधार हिरण्यगर्भपदसे वह परात्पर, सकल शरीरों

में पुरेहुए पुरुष का दर्शन करता है, इस विषय में अगले दो मन्त्र कहे हैं ॥ ५ ॥

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योऽन्यस-क्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्य-मासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(ॐकारस्य) ॐकार की (तिस्रः) तीन (मात्राः) मात्रा (प्रयुक्ताः) प्रयुक्त हुई (मृत्युमत्यः) मृत्युविषयक हैं (सम्यक्) भली प्रकार (प्रयुक्तासु) संपादन कीहुई (बाह्याभ्यन्त-रमध्यमासु) (बाहरी भीतरी और मध्यम (क्रियासु) क्रियाओं में (अन्योऽन्यसक्ताः) परस्पर सम्बद्ध (अनविप्रयुक्ताः) वियुक्त न हों [तर्हि] तो (ज्ञः) उपासक (न) नहीं (कम्पते) विचलित होता है ६

(भावार्थ)-ॐकारकी अकार, उकार और मकार यह तीन मात्रा ब्रह्मदृष्टि न रखकर केवल वर्ण के ध्यान मात्रसे उपासना कीहुई मृत्युगोचर होती हैं, अर्थात् उनके उपासक मृत्युके पार नहीं होसकते किंतु बारम्बार आवागमनके चक्रमें ही फँसे रहते हैं और यदि यह ही तीनों मात्रा भलीप्रकारसे संपा-दित, जाग्रत स्वप्न और सुषुप्तिके अधिष्ठाता पुरुष के ध्यानरूप क्रियाओंमें परस्पर संबद्ध और एकता को प्राप्तरूपसे उपासना कीगई हों तो ॐकारतत्वको जाननेवाला ज्ञानी पुरुष विचलित नहीं होता है,

किन्तु मृत्युके पार होकर ब्रह्मको प्राप्त होजाता है ६

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स। सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते। तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥७॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह उपासनाका ज्ञाता (ऋग्भिः) ऋग्वेदके मन्त्रों करके (एतत्) इस लोकको [प्राप्नोति] प्राप्त होता है (सामभिः) सामवेदके मन्त्रों करके (यत्) जिस लोकको (प्राप्नोति] प्राप्त होता है [तत्] उसको (कवयः) त्रिकालदर्शी [एव] ही (वेदयन्ते) जानते हैं (तम्) उसको (विद्वान्) ज्ञानी (ॐकारेण) ॐकाररूप (आयतनेन) साधनके द्वारा (एव) ही (अन्वेति) प्राप्त होता हैं (यत्) जो (शान्तम्) शान्त (अजरम्) जरारहित (अमृतम्) मरणरहित (अभयम्) भय रहित (च) और (परम्) सर्वोत्तम [अस्ति] है (तत्) उसको [अन्वेति] प्राप्त होता है (इति) इसप्रकार पञ्चम प्रश्न समाप्त हुआ।

(भावार्थ)—उस ज्ञानीको ऋग्वेद के मन्त्रों के अभिमानी देवता इस मनुष्यलोकमें पहुँचाते हैं, दो मात्राका ध्यान करने पर यजुर्वेदके मंत्रोंके अभिमानी देवता चन्द्रलोकमें पहुँचाते हैं और सामवेद के मंत्रोंके अभिमानी देवता उस लोकमें पहुंचाते हैं कि-जिसको ज्ञानी पुरुष जानते हैं, ज्ञानी पुरुष उस

ब्रह्मलोकको तीन मात्राके प्रणवकी उपासनारूप साधनाके द्वारा ही पाते हैं, जो शान्तिसे भरा जरा (बुढ़ापा) रहित, अमर, भयरहित और परमपद है उसको ज्ञानी पुरुष इस साधनसे ही पाता है ॥ ७ ॥

पञ्चमः प्रश्नः समाप्तः

—०—

षष्ठः प्रश्नः

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ। भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत। षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ, तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद, यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यामिति समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुं स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज। तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (भारद्वाजः) भरद्वाजका पुत्र (सुकेशा) सुकेशा (एनम्) इनको (ह) स्पष्ट (इति) इसप्रकार (पप्रच्छ) पूछता हुआ (भगवन्) हे भगवन् ! (कौसल्यः) कोसलापुरीका (हिरण्यनाभः) हिरण्यनाभ (राजपुत्रः) राजपुत्र (माम्) मुझको

(उपेत्य) प्राप्त होकर (एतम्) इस (प्रश्नम्) प्रश्न को (पप्रच्छ) पूछता हुआ (भारद्वाज) हे भारद्वाज (षोडशकलम्) सोलह कलावाले (पुरुषम्) पुरुषको (वेत्थ) जानता है (तम्) उस (कुमारम्) कुमारको (अहम्) मैं (इति) इसप्रकार (अब्रुवम्) बोला (अहम्) मैं (इदम्) यह (न) नहीं (वेद) जानता हूँ (यदि) जो (अहम्) मैं (इमम्) इसको (अवेदिषम्) जानता होता (ते) तेरे अर्थ (कथम्) कैसे (न) नहीं (अवक्ष्यम्) कहता (यः) जो (अनृतम्) असत्य (अभिवदति) बोलताहै (एषः) यह (वै) निश्चय (समूलः) जड़ सहित (परिशुष्यति) सूखजाता है (तस्मात्) तिससे (अहम्) मैं (अनृतम्) मिथ्या (वक्तुम्) कहनेको (न) नहीं (अर्हामि) समर्थ हूँ (सः) वह (तूष्णीम्) चुप (रथम्-आरुह्य) रथ पर चढ़कर (प्रवव्राज) चलागया (तम्) उस पुरुषको (त्वा) तुम्हारे प्रति (पृच्छामि) पूछता हूं (असौ) यह (पुरुषः) पुरुष (क्व) कहाँ [वर्त्तते] है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर भरद्वाजके पुत्र सुकेशाने पिप्पलाद मुनिसे प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! कोसलदेशके रहनेवाले हिरण्यनाभ नामक राजपुत्रने मेरे पास आकर यह बूझा कि हे भरद्वाजकुमार! सोलह कलारूप अवयववाले षोड़शकला पुरुषको तुम जानते हो क्या ? मैंने उस राजकुमारसे कहा कि-मैं नहीं

जानता, राजपुत्रको विश्वास नहीं हुआ, उसने समझा कि-यह ऋषि जानता तो है परन्तु किसी कारण से मुझे बताता नहीं है, तब मैंने उससे फिर कहा, कि-यदि मैं जानता होता तो तुमसे क्यों नहीं कहता;? जो पुरुष मोहवश मिथ्या बोलता है वह समूल सूख जाता है अर्थात् इसलोक और परलोक का सुखरूप फल उसको नहीं मिलता और भाग्यरूप मूलसहित नष्ट होजाता है, ऐसा जाननेवाला मैं तो स्वप्नमें भी मिथ्या नहीं बोलता, फिर जागताहुआ मिथ्या क्यों बोलूंगा?, इस-लिये तुम विश्वास रक्खो कि-यदि मैं जानता होता तो तुमसे अधिकारीको अवश्य बताता, इस बातको सुनकर वह चुपकी साधेहुए रथपर चढ़कर चला-गया, जब तक जिज्ञासित वस्तु जानी न जाय तब तक वह हृदयमें बाणकी समान कष्ट देती है, इस कारण अपने हृदयमें से उस पुरुषके अज्ञानरूप बाणको निकालनेके लिये आपसे उस पुरुषकी बात बूझता हूं, कहिये वह पुरुष कहां रहता है? ॥१ ॥

तस्मै स होवाच । इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ॥२

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (तस्मै) तिसके अर्थ (इति) इसप्रकार (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (सोम्य) हे प्रियदर्शन (यस्मिन्) जिसमें (एताः) यह (षोडश) सोलह (कलाः) कला (प्रभवन्ति)

उत्पन्न होती हैं (सः) वह (पुरुषः) पुरुष (इह) यहां (अन्तःशरीरे) शरीरके भीतर हृदयाकाश में (एव) ही [अस्ति] है ॥ २ ॥

(भावार्थ)—पिप्पलादने तिस सुकेशाके प्रति इस प्रकार स्पष्ट कहा कि—हे सोम्य ! जिसमें यह सोलह कला उत्पन्न होती हैं वह पुरुष इस शरीर के भीतर हृदयकमल रूप आकाशमें ही साक्षीरूप से स्थित है ॥ २ ॥

स ईक्षाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रांतो भविष्यामि। कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति।

अन्वय और पदार्थ-(सः)वह(इति) इसप्रकार (ईक्षाञ्चक्रे) विचार करताहुआ (कस्मिन्) किसके (उत्क्रान्ते) निकलने पर (उत्क्रान्तः) बाहर निकला हुआ सा (भविष्यामि) होऊँगा (वा) या (प्रतिष्ठिते) स्थित होनेपर (प्रतिष्ठास्यामि) अचल स्थित सा होऊँगा ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—तिस साक्षी पुरुष ने ऐसा विचार किया कि—देहमें से किसके निकलने पर मैं निकला-हुआसा होऊँगा और किसके स्थित होनेपर मैं अचल स्थितसा होऊँगा ॥ ३ ॥

स प्राणमसृजत, प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम् । मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (प्राणम्)प्राण को (असृजत) रचता हुआ (प्राणात्)प्राण से (श्रद्धाम्) आस्तिक्य-बुद्धि को (ततः) तिससे (वायुः) वायु (ज्योतिः) तेज (आपः) जल (पृथिवी) पृथिवी (इन्द्रियम्) इन्द्रियसमूह (मनः) मन (अन्नम्) अन्न [समुत्पन्नम्] उत्पन्न हुआ (अन्नात्) अन्न से (वीर्यम्) वीर्य (तपः) तप (मन्त्राः) मन्त्र (कर्म) कर्म (लोकाः) लोक (च) और (लोकेषु) लोकोंमें (नाम-च) नाम भी [उत्पन्नम्] उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर उस साक्षी पुरुषने पंच वृत्ति वाले सबोंके प्राणस्वरूप हिरण्यगर्भको उत्पन्न किया, क्योंकि उस प्राणके द्वारा ही आत्माका शरीर से निकलना तथा लोक परलोक में आवागमन होता है और उस प्राण से सकल प्राणियों की शुभकर्म में प्रवृत्ति होने का हेतु आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धा को उत्पन्न किया, तिसके अनन्तर कर्मों के करने के तथा उन कर्मों के फल को भोगने के आधाररूप आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन पञ्चमहाभूत पञ्चज्ञानेन्द्रिय और पञ्चकर्मेन्द्रियों को तथा मनको उत्पन्न किया, तदनंतर मनकी स्थिति करनेवाले अन्न को अन्न के परिपाक से सकल कर्मों के साधक बल वा ऊर्जा उत्पन्न करने की समार्थ्यरूप वीर्य को उत्पन्न किया, तदनन्तर वीर्यसे उत्पन्न होनेवाले

और चित्त को शुद्ध करनेवाले तप को, फिर कर्म के उपयोगी ऋग्-यजु-साम-अथर्ववेदरूप मन्त्रों को, फिर अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्म को, फिर उन कर्मोंके फलरूप चौदह लोकों को तथा फिर उन लोकोंमें उत्पन्न होनेवाले प्राणियों के नामों को उत्पन्न किया, यह ही सोलह कला हैं, जो कि-प्राणियों की अविद्या आदि दोषरूप बीजसे दोषयुक्त दृष्टिको प्रतीत होनेवाले दो चन्द्रमाकी समान,तथा स्वप्न देखनेवालेके रचे हुए स्वप्नके पदार्थोंकी समान रचीहुई हैं ॥ ४ ॥

स यथेमा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते । एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते । स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ- (सः) वह (यथा) जैसे (इमाः) यह (स्पन्दमानाः) बहती हुई (समुद्रायणाः) समुद्रको जाननेवाली (नद्यः) नदियें (समुद्रम्) समुद्रको (प्राप्य) प्राप्त होकर (अस्तम्, गच्छन्ति) लीन होजाती हैं (तासाम्) उनके (नामरूपे) नाम और रूप (भिद्येते) नष्ट होजाते हैं [तदा] तब (समुद्रः- इत्येवम्) समुद्र है ऐसा (प्रोच्यते)

कहाजाता है (एवम्-एव) इस प्रकार ही (अस्य) इस (परिद्रष्टुः) साक्षात्कार करनेवालेकी (पुरुषायणाः) परमपुरुषकी ओर जानेवाली (इमाः) यह (षोडश) सोलह (कलाः) कला (पुरुषम्) पुरुषको (प्राप्य) प्राप्त होकर (अस्तम् गच्छन्ति) विलीन होजाती हैं (तासां) उनके (नामरूपे) नाम और रूप (भिद्येते) नष्ट होजाते हैं [तदा] तब (पुरुषः इत्येवम्) पुरुष है ऐसा (प्रोच्यते) कहा जाता है (सः) वह (एषः) यह (अकलः) कला रहित (च) और (अमृतः) अमर (भवति) होता है (तत्) उसमें (एषः) यह (श्लोकः) मन्त्र है ५

(भावार्थ)—उस विषयमें यह दृष्टान्त है कि-जैसे बहतीहुई और समुद्रकी ओरको जानेवाली सकल नदियें समुद्रको प्राप्त होकर उसमें लीन हो जाती हैं तथा उनका नाम रूप भी नहीं रहता, उस समय केवल समुद्र ही कहाजाता है, तिसीप्रकार इस जीवरूप साक्षीकी, परमपुरुषकी ओरको जाने वाली प्राण आदि सोलह कला, उस पुरुषको प्राप्त होकर उसमें ही विलीन होजाती हैं, उनका नाम और रूप अदृश्य होजाता है, उससमय केवल पुरुष मात्र ही कहाजाता है, वह साधक कलासहित होने पर भी इसप्रकार कलारहित और अमर होजाता है, इस विषयमें यह श्लोक है ॥ ५ ॥

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिता तं वेद्यं

पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥६॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्मिन्) जिसमें (रथनाभौ) रथकी नाभिमें (अरा-इव) तिरछे काठोंकी समान (कलाः) कला (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं (तम्) उस (वेद्यम्) जानने योग्य (पुरुषम्) पुरुषको (इति) ऐसे (वेद) जानो (यथा) जैसे (वः) तुमको (मृत्युः) मृत्यु (मा परिव्यथाः) व्यथा न देय ॥६॥

(भावार्थ)-रथके पहियेकी नाभिमें जैसे तिरछे काठ जमे रहते हैं तिसीप्रकार जिसमें सब कला स्थित हैं उस जाननेयोग्य पुरुषको इसप्रकार जानो, जिससे कि-मृत्यु तुमको पीड़ा न देसके ॥ ६ ॥

तान् होवाचैतावदेवाहमेतत् परं ब्रह्म वेद नातः परमस्तीति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—[ऋषिः] पिप्पलाद ऋषि (तान्) उनको (इति) इसप्रकार (ह) स्पष्ट उवाच) बोला (अहम्) मैं (एतत्) इस (परम्-ब्रह्म) परमब्रह्मको (एतावत् एव) इतना ही (वेद) जानता हूँ (अतः) इससे (परम्) श्रेष्ठ (किञ्चित्-अपि) कुछ भी (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)—पिप्पलाद ऋषिने उन छहों शिष्यों से इसप्रकार स्पष्ट कहा कि-मैं इस परब्रह्मको इतना ही जानता हूँ इससे अन्य जाननेयोग्य श्रेष्ठ पदार्थ और कोई नहीं है ॥ ७ ॥

ते हि तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ८ ॥

(अन्वय और पदार्थ-(ते) वह (तम्) उसको (अर्चयन्तः) पूजतेहुए [ऊचुः] बोले (त्वम्) तू (हि) निश्चय (नः) हमारा (पिता) पिता है (यः) जो (अस्माकम्) हमको (अविद्यायाः) अविद्याके (परंपारम्) परले पारको (तारयति) तारता है (परमऋषिभ्यः) परम ऋषियों के अर्थ (नमः) नमस्कार है (परमऋषिभ्यः) परम ऋषियों के अर्थ (नमः) नमस्कार है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)—ऐसे उपदेशको सुनकर वे शिष्य पिप्पलाद मुनिके चरणोंमें दण्डवत् कर पुष्प आदि से पूजन करतेहुए कहनेलगे कि-हे भगवन् ! आपने हमारे सब सन्देहोंको दूर करके हमें कृतार्थ किया है जिसमें प्रेम करनेसे पुरुष जंजालमें पड़जाता है ऐसे बन्धनके कारण स्थूल शरीरको उत्पन्न करनेवाला पिता भी जब वन्दनीय होता है तब आपने तो अविद्याके परदेको हटाकर नित्य अजर अमर-अभय ब्रह्मशरीरको बनाया है अर्थात् अविद्याको दूर कर निरावरण ब्रह्मका निश्चय कराया है इसकारण तुम हमारे परमवन्दनीय पिता हो तथा आपने ज्ञानरूप नौकासे हमको तारकर अविद्या के परले पार को

पहुँचा दिया है, आपके इस उपकारके बदलेमें भेट करनेयोग्य इस संसारमें हम कोई भी पदार्थ नहीं देखते इसकारण आपसमान ब्रह्मविद्याके प्रवर्त्तक परम ऋषियोंको केवल बार२ हमारा प्रणाम ही है ८

इति श्री अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् का, मुरादाबादनिवासी भारद्वाजगोत्र गौड़वंश्य-पण्डित भोलानाथात्मज-सनातन-धर्मपताकासम्पादक-प० कु० रामस्वरूपशर्मा कृत अन्वय पदार्थ और भाषा भावार्थ समाप्त.

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ तत्सत्

अथर्ववेदीया-

मुण्डक-उपनिषद्

प्रथममुण्डके-प्रथमः खण्डः

उपनिषद्रूप सकल प्रमाणोंका मस्तकरूप उत्तम होनेसे इसका 'मुण्डकोपनिषद्' नाम है, जिसका यह पहिला मन्त्र है —

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता । स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विश्वस्य) विश्वका (कर्त्ता) रचयिता (भुवनस्य) भुवनका (गोप्ता) पालक (ब्रह्मा) ब्रह्मा (देवानाम्) देवताओंमें (प्रथमः) पहिला (सम्बभूव) प्रकट हुआ (सः) वह (ज्येष्ठपुत्राय) बड़े पुत्र (अथर्वाय) अथर्वाके अर्थ (सर्वविद्याम्) ब्रह्मविद्याको (प्राह) कहताहुआ १

भावार्थ-प्रकाशयुक्त इन्द्रादि देवताओंमें गुणों करके मुख्य ब्रह्मा उन सब देवताओंसे प्रथम स्वतन्त्रभावसे प्रकट हुआ, जो कि-सकल संसारका

उत्पन्न करनेवाला और उत्पन्न हुए सकल लोकोंका पालन करनेवाला है उसने सबसे प्रथम उत्पन्न किये हुए अपने अथर्वा नामक पुत्रको सकल विद्याओंकी आश्रय ब्रह्मविद्याका उपदेश किया, जैसे तु मिरूप फलमें सब ग्रासोंका रस अन्तर्भूत होता है, ऐसे ही ब्रह्मविद्यामें सब विद्या अन्तर्गत हैं ॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् । स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मा) ब्रह्मा (अथर्वणे) अथर्वाके अर्थ (याम्) जिसको (प्रवदेत्) कहता हुआ (अथर्वा) अथर्वा (ताम्) उस (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मविद्याको (पुरा) पहिले (अङ्गिरे) अङ्गिरा नामक मुनिके अर्थ (उवाच) कहता हुआ (सः) वह (भारद्वाजाय) भरद्वाज गोत्र वाले (सत्यवाहाय) सत्यवाहके अर्थ (प्राह) कहता हुआ (भारद्वाजः) सत्यवाह (परावराम्) परावर विद्याको (अङ्गिरसे) अङ्गिराके अर्थ [उवाच] कहता हुआ ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस ब्रह्मविद्याको ब्रह्माने अथर्वासे कहा था, अथर्वाने पहिले उस ब्रह्मविद्याको अंगिरा मुनिसे कहा था, उसने भरद्वाज गोत्रवाले सत्यवाहसे कहा था और उस सत्यवाहने श्रेष्ठ तथा अश्रेष्ठ सकल विद्याओंमें व्याप्त उस ब्रह्मविद्याको अंगिरा नामक अपने शिष्यसे कहा ॥ २ ॥

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ । कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(महाशालः) बड़ा गृहस्थ (शौनकः) शौनक (ह) प्रसिद्ध (वै) निश्चय (अंगिरसम्) अंगिराको (विधिवत्) शास्त्रोक्त रीतिसे (उपसन्नः) समीपमें प्राप्त हुआ (इति) इसप्रकार (पप्रच्छ) पूछता हुआ (भगवः) हे भगवन् (कस्मिन्, नु) किसके (विज्ञाते) जान लेने पर (इदम्) यह (सर्वम्) सब (विज्ञातम्) जाना हुआ (भवति) होता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-महागृहस्थ शौनकने अङ्गिराके समीप शास्त्रोक्त विधिसे उपस्थित होकर यह प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! किस एकको जान लेने पर यह सब जाना हुआ होजाता है ॥ ३ ॥

तस्मै स होवाच । द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥४॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मै) तिसके अर्थ (सः) वह (इति) इसप्रकार (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (द्वे) दो (विद्ये) विद्यायें (वेदितव्ये) जानने योग्य हैं (इदम्-ह) यह ही (किल) प्रसिद्ध (ब्रह्मविदः) ब्रह्मवेत्ता (वदन्ति) कहते हैं (स्म) स्मरण किया जाता है (परा) पराविद्या (च)

और (अपरा चैव) अपरा भी ॥ ४ ॥

(भावार्थ)–शौनक ऋषिसे अङ्गिराने कहा कि–ब्रह्मज्ञानी कहते हैं कि–दो विद्यायें जानने योग्य हैं और ऐसा ही स्मरण भी होता है कि–एक तो परमात्मविषयक पराविद्या और दूसरी धर्म अधर्मके साधन और उनके फलका वर्णन आदि करनेवाली अपरा विद्या है ॥ ४ ॥

तत्राऽपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ––(तत्र) उनमें (ऋग्वेदः) ऋग्वेद (यजुर्वेदः) यजुर्वेद (सामवेदः) सामवेद (अथर्ववेदः) अथर्ववेद (शिक्षा) शिक्षा (कल्पः) कल्प (व्याकरणम्) व्याकरण (निरुक्तम्) निरुक्त (छन्दः) पिंगल (ज्योतिषम्) ज्योतिष (इति) यह (अपरा) अपराविद्या [अस्ति] है (अथ) और (यया) जिस करके (तत्) वह (अक्षरम्) अविनाशी ब्रह्म (अधिगम्यते) जाना जाता है [सा] वह (परा) पराविद्या [अस्ति] है ॥ ५ ॥

भावार्थ–उन दोनोंमें–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इन चारों वेदोंके उच्चारण आदिकी रीति बतानेवाली पाणिनि आदि मुनियोंकी रचित शिक्षा,

वेदमें कहे कर्मका अनुष्ठान करनेकी रीतिको बताने वाले कात्यायन आश्वलायन आदि ऋषियोंके प्रकाशित किये हुए सूत्ररूप कल्प, शब्दशुद्धिका ज्ञान कराने वाला व्याकरण, वेदके अप्रसिद्ध पदोंके अर्थका बोधक निरुक्त, वेदमेंके गायत्री जगती आदि छन्दों का बोधक पिंगल और वैदिक कर्मके अनुष्ठानका काल आदि बतानेवाला आदित्य गर्ग आदिका कहा हुआ ज्योतिष, यह वेदके छः अंग हैं, यह सब ही अपराविद्या कहाते हैं। इस पर सन्देह होता है कि—उपनिषद् भी तो त्रिकाण्ड वेदका ज्ञानकाण्डरूप ही हैं, इस कारण जब वेद अपराविद्या हुए तो उपनिषद् भी पराविद्या नहीं होसकते, इसका उत्तर यह है कि—वेदोंमें कर्म उपासनाका वर्णन अधिकताके साथ है, इसकारण यहां वेद शब्दसे वेदका कर्मकाण्ड और उपासना काण्ड ही अपरा विद्या मानागया है, वैराग्य आदि साधनसम्पन्न अधिकारी पुरुषोंके सुनने और विचारने योग्य उपनिषद्रूप वेदका ब्रह्मप्रतिपादक ज्ञानकाण्ड ही परा विद्या है, अर्थात् अनात्मसंसारका वर्णन करने वाली विद्याका नाम अपराविद्या है और जिससे शुद्ध अविनाशी ब्रह्मको जाना जाय उसका नाम परा विद्या है॥ ५॥

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं

यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो है (तत्) उस (अद्रेश्यम्-अदृश्यम्) दीखनेमें न आनेवाले (अग्राह्यम्) ग्रहण करनेमें न आनेवाले (अगोत्रम्) अकारण (अवर्णम्) वर्णरहित (अचक्षुःश्रोत्रम्) चक्षु और कानोंसे रहित (अपाणिपादम्) हाथ और पैरोंसे रहित (नित्यम्) सनातन (विभुम्) विविधविश्वरूप (सर्वगतम्) सर्वव्यापक (सुसूक्ष्मम्) परमसूक्ष्म (यत्) जिस (भूतयोनिम्) सकल भूतोंके कारणको (धीराः) ज्ञानी (परिपश्यन्ति) साक्षात्कार करते हैं (तत्) वह (अव्ययम्) अक्षर ब्रह्म है ॥ ६ ॥

(भावार्थ) जो ज्ञानेन्द्रियोंसे जाना नहीं जाता, कर्मेंद्रियोंसे पाया नहीं जाता, जिसका कोई कारण नहीं है, जिसमें कोई वर्ण नहीं है, जिसके नेत्र कर्णादि ज्ञानेन्द्रियें और हाथ पैर आदि कर्मेन्द्रिय नहीं हैं ऐसे सनातन, विविधविश्वरूप, सर्वव्यापक, परम सूक्ष्म और आकाश आदि पञ्चमहाभूतोंके कारण जिस परमतत्त्वका विवेकी पुरुष अपने आत्मस्वरूप से साक्षात्कार करते हैं, वह अविनाशी ब्रह्म जिस के द्वारा जाना जाता है वह ही ब्रह्मप्रतिपादक उपनिषद्रूप परा विद्या है ॥ ६ ॥

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथि-

व्यामोषधयः सम्भवन्ति । यथा सतः पुरुषात्के-
शलोमानि तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥७॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (ऊर्णनाभिः) मकड़ी (सृजते) रचती है (च) और (गृह्णते) ग्रहण करती है (तथा) तैसे (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ओषधयः) ओषधियें (सम्भवन्ति) उत्पन्न होती हैं (यथा) जैसे (सतः) जीवित (पुरुषात्) पुरुषसे (केशलोमानि) केश और रोम [जायन्ते] उत्पन्न होते हैं (तथा) तैसे (इह) यहाँ (अक्षरात्) अविनाशीसे (विश्वम्) जगत् (सम्भवति) उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-जैसे जाला पूरनेवाला मकड़ीनामक कीड़ा अपने शरीरमेंसे तन्तुओंको बाहर निकालता और फिर उन तन्तुओंको अपनेमें ही लीन कर लेता है, तिसीप्रकार परमात्मा अपने स्वरूपमेंसे जगत्को प्रकट करता है और अपनेमें ही लीन कर लेता है, जैसे एक ही पृथिवीसे बीजके भेदके कारण अनेकों ओषधि उत्पन्न होती हैं, तैसे एक ही आत्मा से अपने २ कर्मोंके अनुसार सुखी दुःखी प्रजा उत्पन्न होती हैं, जैसे जीवित चेतन पुरुषसे केश लोम आदि जड़ पदार्थ उत्पन्न होते हैं तैसे ही चेतन अविनाशी पुरुषसे जड़ जगत् उत्पन्न होता है ॥७॥

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । अन्ना-
त्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥८॥

अन्वय और पदार्थ—(तपसा) ज्ञानके द्वारा (ब्रह्म) ब्रह्म (चीयते) बढ़ता है (ततः) तिससे (अन्नम्) अन्न (अभिजायते) उत्पन्न होता है (अन्नात्)अन्नसे (प्राणः) प्राण (मनः) मन (सत्यम्) पञ्चभूत (लोकाः) लोक (कर्मसु) कर्मों में (अमृतम्-च) फल भी [अभिजायते] उत्पन्न होता है ८

(भावार्थ)—तीन जगत्के विषयमें 'मैं एक बहुत होजाऊँ' ऐसे ज्ञानरूप तपसे ब्रह्म वृद्धिको प्राप्त हुआ अर्थात् सृष्टिको उत्पन्न करनेका अभिलाषी वा शक्तिके पहिले कार्यसे युक्त हुआ, फिर उस ब्रह्मके अन्न अर्थात् स्थूल कार्यकी ओरको उन्मुख होनेके कारण कुछ एक प्रकट होनेकी शक्तिस्वरूप वा जगत्की उत्पत्तिका बीजरूप अन्न उत्पन्न हुआ, तिससे सबका प्राणस्वरूप हिरण्यगर्भ, तिससे विराट्रूप मन, मनसे पञ्चभूत, पञ्चभूतोंसे भू आदि लोक और उनमें रहनेवाले प्राणियोंके कर्म उत्पन्न हुए और फिर कर्मका अवश्य भोक्तव्य स्वर्ग आदि फल उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपञ्च जायते ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ (सर्ववित्) सबका जाननेवाला है (यस्य) जिसका (तपः) तप (ज्ञानमयम्) ज्ञानस्वरूप है (तस्मात्) तिससे (एतत्) यह (ब्रह्म) हिरण्यगर्भ (नाम)

नाम (रूपम्) रूप (च) और (अन्नम्) अन्न (जायते) उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)—जो सर्वज्ञ है अर्थात् साधारणरूप से सबको जानता है, जो सर्ववित् है अर्थात् विशेष रूपसे सबको जानता है और जिसका तप ज्ञानमय है, उससे ही हिरण्यगर्भ नामक ब्रह्म, नाम, रूप और अन्न उत्पन्न हुआ है ॥ ९ ॥

इति प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः

—०—

अथ प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः

तदेतत्सत्यं—मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एवं वः पन्थाः स्वकृतस्य लोके ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) सो (एतत्) यह (सत्यम्) सत्य है, (मन्त्रेषु) वेदमन्त्रोंसे (कवयः) बुद्धिमान् (यानि) जिन (कर्माणि) कर्मों को (अवश्यम्) अवश्य [दृष्टवन्तः] देखतेहुए (तानि) वह (त्रेतायाम्) त्रेता में (बहुधा) बहुतप्रकार से (सन्ततानि) प्रवृत्त थे [यूयम्] तुम (सत्यकामाः) सत्यकाम हुए (नियतम्) निरन्तर (तानि) उनको (आचरथ) आचरण करो (स्वकृतस्य)

अपने किये हुए का फलरूप (लोके) लोकमें (एषः) यह (वः) तुम्हारा (पन्थाः) मार्ग है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-यह सत्य है कि-वेदमन्त्रोंमें ज्ञानियोंने जिन कर्मों को देखा है वह सब त्रेतामें अर्थात त्रेतायुगमें अथवा होता, अध्वर्यु और उद्गाता इन तीन ऋषियोंके कार्यरूप यज्ञ में नानाप्रकारसे फैला हुआ है, तुम सत्यकाम होकर उस सब का आचरण करो, यह ही तुम्हारा अपने करेहुए कर्म के फलको पानेका मार्ग है ॥ १ ॥

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाज्यभागयोरन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धया हुतम् ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(समिद्धे) भलेप्रकार से प्रज्वलित हुए (हव्यवाहने) अग्निमें (यदा) जब (अर्चिः) लपट (लेलायते) चलती है (तदा) तब (आज्यभागयोः) घृतके भागोंके (अन्तरेण) मध्यमें (श्रद्धया) श्रद्धा करके (हुतम्) हवनकी सामग्रीरूप (आहुतीः) आहुतियोंको (प्रतिपादयेत्) छोड़े [एषः एव, स्वकृतस्य, फलप्राप्तौ, पन्थाः] यह ही अपने किये कर्मका, फल पानेमें मार्ग है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-अग्निके भलेप्रकारसे प्रज्वलित होने पर जब उस अग्निकी लपटें चलती हैं उस समय यज्ञके साधन घृत आदिके दो भागोंके मध्यस्थानमें

श्रद्धाके साथ उपहार स्वरूप आहुतियें देय, ऐसा यज्ञ करना ही कर्मफलको पानेका मार्ग है ॥ २ ॥

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्य-मनाग्रयणमतिथिवर्जितञ्च । अहुतमवैश्वदेव-मविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ३

अन्वय और पदार्थ—(यस्य) जिसका (अग्नि-होत्रम्) अग्निहोत्र नामक याग (अदर्शम्) अमा-वास्यासे रहित (अपौर्णमासम्) पौर्णमास कर्मसे रहित (अचातुर्मास्यम्) चातुर्मास्य कर्मसे रहित (अनाग्रयणम्) आग्रयणसे रहित (च) और (अतिथिवर्जितम्) अतिथिपूजासे रहित (अहुतम्) असमयमें आहुति दियाहुआ (अवैश्वदेवम्) वैश्व-देवसे रहित (अविधिना) विधि हीनतासे (हुतम्) अनुष्ठित [अस्ति] है (तस्य) उसके (आसप्त-मान्) सप्तमपर्यन्त (लोकान्) लोकोंको (हिनस्ति) नष्ट करता है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—जिसका अग्निहोत्र नामक यज्ञ अमावस्यामें होनेवाले दर्शसे रहित पौर्णमास कर्मसे रहित चातुर्मास्यके निमित्त कियेजानेवाले कर्मसे रहित शरद आदि ऋतुमें नए अन्नसे होनेवाले आग्रयण कर्मसे रहित और अतिथिपूजनसे रहित होता है, अथवा असमयमें कियाजाता है, वैश्व देवके अनुष्ठानसे रहित होता है अथवा विधिपूर्वक नहीं

किया जाता है, ऐसा ठीक २ न होनेवाला अग्निहोत्र उस करनेवालेके सात लोकोंका नाश करदेता है ॥३॥

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा । स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वा ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(काली) काली (कराली) कराली (च) और (मनोजवा) मनोजवा (च) और (सुलोहिता) सुलोहिता (च) और (या) जो (सुधूम्रवर्णा) अति धुमैले वर्ण की (स्फुलिंगिनी) स्फुलिंगवाली (देवी) प्रकाशयुक्त (विश्वरुची) सकलरूपवाली (इति) यह (अग्नेः) अग्नि की (लेलायमानाः) इधर उधरको चलती हुई (सप्त) सात (जिह्वाः) लपटें हैं ॥ ४ ॥

(भावार्थ)—काली, कराली, मनकी समान वेग वाली मनोजवा, परमलाल सुलोहिता, अति धुमैली सुधूम्रवर्णा, चिनगारियोंवाली स्फुलिंगनी, दीप्तिवाली देवी और सकल सुन्दरताओंसे युक्त विश्वरुची ये अग्निकी हवि भक्षण करनेके निमित्त इधर उधरको चलायमान होनेवाली सात जिह्वा कहिये लपटें हैं ४

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन् । तन्नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (एतेषु) इनके

(भ्राजमानेषु) दीप्यमान होने पर (यथाकालम्) यथासमय (च) भी (चरति) आचरता है (तम्) उसको (एताः) यह आहुतियें (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मयः) किरणें [भूत्वा] होकर (तम्) उसको (आददायन्) ग्रहण करती हुई, (तत्र) तहाँ (नयन्ति) लेजाती हैं (यत्र) जहाँ (देवानाम्) देवताओंका (एकः) एक (पतिः) स्वामी (अधिवासः) सबसे ऊपर रहता है ॥ ५ ॥

भावार्थ-यह सब अग्निकी शिखायें प्रज्वलित होने पर जो उचित समय पर अग्निहोत्र आदिका अनुष्ठान करता है उसको, उसकी दीहुई आहुतियों को ग्रहण करती हुईं, सूर्यकी किरणें रूप होकर उसे स्वर्गमें लेजाती हैं जहाँ देवताओंका एकमात्र राजा इंद्र सबसे ऊपर रहता है ॥ ५ ॥

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति । प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥६॥

अन्वय और पदार्थ-(सुवर्चसः) सुन्दर दीप्तिवाली (आहुतयः) आहुतियें (एषः) यह (वः) तुम्हारा (सुकृतः) सुकर्मोंसे प्राप्त हुआ (पुण्यः) पवित्र (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मलोक है (एहि) आओ (इति) इसप्रकार (प्रियाम्) प्रिय (वाचम्) वाणीको (अभिवदन्त्यः) कहती हुई [च] और

(अर्चयन्त्यः) सत्कार करती हुई (तम्) उस (यजमानम्) यजमानको (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मिभिः) किरणोंके द्वारा (वहन्ति) लेजाती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—वह पूर्णरूपसे प्रज्वलित होती हुई सब आहुतियें, तिस यजमानको "आओ आओ तुम्हारे सुकर्मों से प्राप्त हुआ यह पवित्र ब्रह्मलोक [स्वर्ग] है" ऐसे प्रसन्न करनेवाले वाक्योंको कहती हुई बड़े सत्कार के साथ सूर्य की किरणों के द्वारा लेजाती हैं ॥ ६ ॥

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म । एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(हि) निश्चय (एते) यह (अष्टादश) अठारह (यज्ञरूपाः) यज्ञरूप (प्लवाः) डोंगे (अदृढाः) दृढ नहीं हैं (येषु) जिन में (अवरम्) अश्रेष्ठ (कर्म) कर्म (उक्तम्) कहा है (ये) जो (मूढाः) मूढ (एतत्) इसको (श्रेयः) कल्याणरूप है [इति-मत्वा] ऐसा मानकर (अभिनन्दन्ति) प्रशंसा करते हैं (ते) वह (पुनः-एव) फिर भी (जरामृत्युम्) बुढ़ापे और मरणको (अपियन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

(भावार्थ)—निःसन्देह यह सोलह यज्ञ करानेवाले ऋत्विज, यजमान और यजमानकी स्त्री इन

अठारहसे सिद्ध होनेवाले यज्ञ रूप डोंगे (छोटी नौका) हैं, जिनमें ज्ञानसे अतिनीच श्रेणीका कर्म कहा है, यह सब डोंगे अधिक समय रहनेवाले दृढ़ नहीं हैं अर्थात् जैसे छोटी छोटी नौका समुद्रमें थोड़ी दूर जाने और मत्स्यादिकी मृगया (शिकार) मात्र करनेकी साधन होती हैं तथा फिर लौट आकर उन परसे उतरना पड़ता है, तैसे ही यह यज्ञरूपी छोटीसी नौका केवल स्वर्ग पर्यन्त जाकर स्वर्गके भोगोंका शिकारमात्र करवा देती हैं, कर्मफलके क्षीण होते ही तहांसे फिर लौटना पड़ता है, संसार समुद्रके पार तो ज्ञानरूपी जहाज ही पहुँच सकता है, इसकारण जो मूढ. पुरुष इस यज्ञादि कर्मको ही कल्याणरूप मानकर इसकी प्रशंसा करते हैं, वह कुछ काल स्वर्गादिक फलको भोगनेके अनन्तर वहांसे गिरतेहुए इस लोकमें आकर फिर जरा, मरण आदिके दुःखको भोगते हैं ॥ ७ ॥

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः । जघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अविद्यायाम्) अविद्या के (अन्तरे) भीतर (वर्त्तमानाः) वर्त्तमान (स्वयम्) अपने आप (धीराः) ज्ञानी बनेहुए (पण्डितम् मन्यमानाः) पण्डितमानी हुए (मूढाः) मूर्ख

(जंघन्यमानाः) जरा आदिसे पीड़ित हुए (अन्धेन-एव) अन्धे करके ही (नीयमानाः) लेजाये जाते हुए (अन्धा इव) अन्धोंकी समान (परियन्ति) घूमते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—अविद्यामें पड़कर अत्यन्त विवेक-हीन हुए और तत्त्वदर्शीके उपदेशके बिना अपने मनसे ही हम ही बुद्धिमान् हैं और हम ही जानने योग्य वस्तुको जाननेवाले पण्डित हैं, ऐसा अपने को माननेवाले मूढ पुरुष रोग बुढ़ापा आदि अनेकों अनर्थोंसे अत्यन्त पीड़ित होते हुए, चारों ओर घूमते हैं और जैसे अन्धा ही जिनको मार्ग बताता हुआ आगे २ चल रहा है ऐसे अन्धे पुरुष गढ्ढे काँटे आदिमें जाकर गिरते हैं, तैसे ही वह मूढ संसारमें गिरते हैं ॥ ८ ॥

अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः । यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुरा क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥९॥

अन्वय और पदार्थ-(अविद्यायाम्) अविद्यामें (बहुधा) बहुत प्रकारसे (वर्त्तमानाः) पड़ेहुए (बालाः) अज्ञानी (वयम्) हम (कृतार्थाः) कृतार्थ हैं (इति) ऐसा (अभिमन्यन्ति) अभि-मान करते हैं (यत्) क्योंकि (कर्मिणः) कर्म करनेवाले (रागात्) फल पानेमें आसक्ति होनेसे

(न) नहीं (प्रवेदयन्ति) जानते हैं (तेन) तिस से (क्षीणलोकाः) क्षीण हुआ है कर्मफल जिनका ऐसे (आतुराः) दुखसे व्याकुल हुए (च्यवन्ते) गिरते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ-अनेकों प्रकारसे अज्ञानदशामें पड़े हुए अर्थात् अज्ञानभावके नानाप्रकारके कर्मानुष्ठानमें ही लगे हुए अज्ञानीरूप बालक, हम ही अपने प्रयोजन को साधकर कृतार्थ हुए हैं ऐसा अभिमान करते हैं, क्योंकि-ऐसे कर्म करनेवाले पुरुष कर्मके फलमें लालसा होनेके कारण ब्रह्मतत्त्वको विशेषरूपसे नहीं जानसकते हैं, इसकारण उनके कर्मका फल क्षीण होनेपर वह दुःखसे व्याकुल होते हुए स्वर्गलोकसे नीचेको गिरते हैं ॥ ६ ॥

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः । नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(इष्टापूर्त्तम्) इष्ट और पूर्त्त को (वरिष्ठम्) श्रेष्ठ (मन्यमानाः) मानतेहुए (प्रमूढाः) परम मूढ (अन्यत्) दूसरे (श्रेयः) श्रेयको (न) नहीं (वेदयन्ति) जानते हैं (ते) वह (सुकृते) शुभकर्मसे प्राप्तहुए (नाकस्य) स्वर्ग के (पृष्ठे) ऊपर (अनुभूत्वा) भोगकर (इमम्) इस (लोकम्) लोकको (वा) वा (हीनतरम्)

इससे भी हीन लोकको (आविशन्ति) प्रविष्ट होते हैं ॥ १० ॥

(भावार्थ)–अज्ञानी पुरुष, याग आदि इष्ट और वापी कूप आदि खुदवानारूप पूर्त्त कर्मको परम श्रेष्ठ कहिये मोक्षका मुख्य साधन मानते हैं और दूसरे आत्मज्ञानरूप श्रेयके साधनको नहीं जानते हैं, वह अपने पुण्यकर्मके फलसे प्राप्तहुए स्वर्गके ऊपरके स्थानमें कर्मफलको भोगकर फिर इस मनुष्यशरीर रूप लोकमें वा इससे भी हीन पशु पक्षी आदिकी योनिमें शेष रहे कर्मके अनुसार प्रवेश करते हैं ॥ १० ॥

तपःश्रद्धे येह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः । सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ–(हि) निश्चय (ये) जो (शान्ताः) शान्त (विद्वांसः) विद्वान् (भैक्षचर्याम्) भिक्षावृत्तिको (चरन्तः) करतेहुए (अरण्ये) वनमें (तपःश्रद्धे) तप और श्रद्धाको (उपवसन्ति) साधते हैं (ते) वह (विरजाः) वासनारहित हुए (सूर्यद्वारेण) सूर्यके द्वारा [तत्र] तहां (प्रयान्ति) जाते है (यत्र) जहां (सः) वह (अमृतः) अमर (अव्ययात्मा) अविनाशी स्वभाववाला (पुरुषः) पुरुष [अस्ति] है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-अब उपासनासहित कर्म करनेवालों की गति बताते हैं कि-निःसन्देह जो जितेन्द्रिय उपासना करनेवाले विद्वान् भिक्षावृत्तिसे निर्वाह करतेहुए स्त्रियोंसे रहित एकान्त वनमें रहकर अपने आश्रमके लिये विहित कर्मरूप तप और हिरण्य-गर्भ आदिकी उपासना रूप श्रद्धाका सेवन करते हैं, वे पुण्य पाप की वासना से रहित होकर सूर्यके द्वारा अर्थात् उत्तरायणमें शरीरको त्यागकर उस लोकको जाते है, जहाँ अमृतस्वरूप अविनाशी स्व-भाव वाला हिरण्यगर्भ पुरुप रहता है ॥ ११ ॥

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेद मायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरु-मेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् १२

अन्वय और पदार्थ-(ब्राह्मणः) ब्राह्मण (कर्म-चितान्) कर्मरचित (लोकान्) लोकोंको (परीक्ष्य) परीक्षा करके (निर्वेदम्) वैराग्यको (आयात्) प्राप्त होय (कृतेन) कर्म करके (अकृतः) नित्य पदार्थ (न) नहीं (अस्ति) है (तद्विज्ञानार्थम्) उसको जाननेके लिये (सः) वह (समित्पाणिः) हाथमें समिधा आदि लिएहुए (श्रोत्रियम्) वेद-वेत्ता (ब्रह्मनिष्ठम्) ब्रह्मविचारमें मग्न (गुरुम्-एव) गुरुके ही (अभिगच्छेत्) शरणजाय ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-मुमुक्षु पुरुष संसारकी दशा देखता

हुआ सकल भोगोंसे वैराग्यको प्राप्त होय, जैसे पुरुष कर्म करके खेत आदिमें अन्नको उत्पन्न करता है और भोगके अनन्तर वह अन्न समाप्त होजाता है, तैसेही कर्मके रचेहुए यह लोक और परलोक सब ही भोगके अनन्तर नष्ट होनेवाले हैं ऐसे अनेकों दृष्टान्तोंसे सब लोकोंको अनित्य जानकर विरक्त होजाय, और यह विचारै कि–कर्मजन्य संसारके सब पदार्थ अनित्य हैं एवं उस नित्य पदार्थको जानने के लिये वह हवनकी समिधा पुष्प आदि हाथमें लेकर वेदवेत्ता तथा ब्रह्मविचारमें मग्न रहनेवाले गुरुके समीप जाय ॥ १२ ॥

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सः) वह (विद्वान्) ब्रह्मवेत्ता (तस्मै) तिस (सम्यक्) भलेप्रकार (प्रशान्तचित्ताय) परमशान्त चित्तवाले (शमान्विताय) जितेन्द्रिय (उपसन्नाय) शरणमें आयेहुए [मुमुक्षवे] मुमुक्षुके अर्थ (येन) जिसके द्वारा (अक्षरम्) अविनाशी (सत्यम्) सत्स्वरूप (पुरुषम्) पुरुषको (वेद) जानता है (ताम्) उस (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मविद्याको (तत्त्वतः) तत्त्वरूपसे (प्रोवाच) कहे १३

(भावार्थ)–वह ब्रह्मवेत्ता गुरु गर्व आदि दोषों

से रहित है चित्त जिसका ऐसे और जितेन्द्रिय, अपनी शरणमें आयेहुए मुमुक्षु शिष्यको, जिस विज्ञानसे अविनाशी सत्यस्वरूप पुरुषको जानाजाता है उस ब्रह्मविद्याको यथावत् कहे ॥ १३ ॥

इति प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥ समाप्तं प्रथमं मुण्डकम् ॥

—०—

अथ द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः

तदेतत्सत्यम्—यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते । सरूपाः तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥१॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) सो (एतत्) यह (सत्यम्) सत्य है (यथा) जैसे (सुदीप्तात्) खूब प्रज्वलित हुए (पावकात्) अग्निसे (सरूपाः) अग्नि के समान रूप वाले (विस्फुलिंगाः) चिनगारे (सहस्रशः) सहस्रों (प्रभवन्ते) निकलते हैं (तथा) तिसी प्रकार (सोम्य) हे प्रियदर्शन (अक्षरात्) अविनाशी से (विविधाः) अनेकों प्रकारके (भावाः) जीव (प्रजायन्ते) उत्पन्न होते हैं (च) और (तत्र-एव) उसमें ही (अपियन्ति) लीन होजाते हैं ॥ १ ॥

(भावार्थ)—अब जिस एकके जानलेने पर सब प्रपञ्च जानलिया जाता है उस ब्रह्मका ज्ञान होनेकी साधन पराविद्याका वर्णन आरम्भ करते हैं, कि-

हे शौनक ! कर्मका फल तो सब कालमें सत्य नहीं है और यह अक्षर ब्रह्म सब कालमें सत्य है, उस सत्य आत्मासे ही यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है, जैसे जलते हुए अग्निसे अग्निके समान स्वरूपके ही सहस्रों चिनगारे उत्पन्न होते हैं तैसे ही अक्षर परमात्मपुरुषसे जड़ चेतन सकल जगत् उत्पन्न होता है और फिर उसमें ही लीन होजाता है, इसकारण वह अक्षर आत्मासे कुछ भिन्न नहीं है तत्स्वरूप ही है, भेदकी प्रतीति जो हो रही है वह जल और तरङ्गके भेदकी समान भ्रममात्र है ॥ १ ॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः॥२॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (दिव्यः) दिव्य (पुरुषः) पुरुष (हि) निश्चय (अमूर्त्तः) निराकार (बाह्याभ्यन्तरः) भीतर बाहर वर्त्तमान (हि) निश्चय (परतः) पर (अक्षरात्) हिरण्यगर्भ से (परः) श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

(भावार्थ)—वह अलौकिक दिव्यपुरुष, सकल आकारोंसे रहित, सबके भीतर बाहर वर्त्तमान अजन्मा प्राणादि पञ्चपवनोंसे रहित, जिसमें संकल्प विकल्प करनेवाला मन नहीं है, अतएव शुद्ध और श्रेष्ठ अक्षर पुरुष मायोपाधिक हिरण्यगर्भसे भी श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ३

अन्वय और पदार्थ-(एतस्मात्) इससे (प्राणः) प्राण (मनः) मन (च) और (सर्वाणि) सब (इन्द्रियाणि) इन्द्रियें (खम्) आकाश (वायुः) वायु (ज्योतिः) तेज (आपः) जल (विश्वस्य) सबकी (धारिणी) धारण करनेवाली (पृथिवी) पृथिवी (जायते) उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—जैसे पुत्र होजाने पर देवदत्त को अपुत्र नहीं कह सकते हैं तैसे ही जिससे प्राणादि उत्पन्न हुए हैं वह प्राण आदि वाला क्यों नहीं है, इसका उत्तर यह है कि—जैसे स्वप्न में पुत्रसे कोई पुत्रवाला नहीं होसकता तैसे ही अविद्याके कार्य प्राण आदिसे परपुरुष प्राण आदि वाला नहीं हो सकता, इसप्रकार प्राण, मन और सब इन्द्रियें आदि उस पुरुष से ही उत्पन्न हुए हैं तथापि उसमें इनका आरोप नहीं है, तिसी प्रकार शरीर और विषयों के कारण आकाश, वायु अग्नि, जल और विश्वको धारण करनेवाली पृथिवी ये पञ्चभूत भी उसी पुरुष से उत्पन्न हुए हैं ॥ ३ ॥

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्व-मस्य पद्भ्यां पृथिवी एष सर्वभूतांतरात्मा ॥४॥

अन्वय और पदार्थ-(अग्निः) अग्नि (अस्य) इसका (मूर्धा) शिर है (चन्द्रसूर्यौ) चन्द्रमा और सूर्य (चक्षुषी) नेत्र हैं (दिशः) दिशाएं (श्रोत्रे) कर्ण हैं, (विवृताः) प्रसिद्ध (वेदाः) वेद (वाक्) वाणी है (च) और (वायुः) वायु (प्राणः) प्राण है (विश्वम्) विश्व (हृदयम्) हृदय है [अस्य] इसके (पद्भ्याम्) चरणोंसे (पृथिवी) पृथिवी [जाता] उत्पन्न हुई है (एषः) यह (सर्वेषाम्) सबमें (भूतानाम्) भूतोंका (अन्तरात्मा) अन्तरात्मा है ४

(भावार्थ)-हे शौनक ! अग्निस्वरूप स्वर्गलोक हिरण्यगर्भ से उत्पन्न विराट् का शिर है चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं, दशों दिशा कान हैं प्रसिद्ध चारों वेद वाणी हैं, वायु प्राण है और समस्त जगत् अन्तःकरण है तथा इसके दोनों चरणों से पृथिवी उत्पन्न हुई है यही सकल भूतोंका अन्तरात्मा है ४

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् । पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः ॥५॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (अग्निः) द्युलोक [जातः] उत्पन्न हुआ (सूर्यः)(सूर्य (यस्य) जिसका (समिधः) प्रकाशक है (सोमात्) सोमरससे (पर्जन्यः) वर्षा [सम्भवति] होती है (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ओषधयः) औषधियें

[संभवन्ति] उत्पन्न होती हैं (पुमान्) पुरुष (योषितायाम्) स्त्रीमें (रेतः) वीर्यको (सिञ्चति) सींचता है (पुरुषात्) पुरुषसे (बह्वीः) बहुतसे (प्रजाः) जीव (सम्प्रसूताः) उत्पन्न हुए हैं ॥५॥

(भावार्थ)—जिस पुरुषसे स्वर्गलोकरूप अग्नि उत्पन्न हुआ, सूर्य जिसकी समिधा है अर्थात् जैसे काष्ट अग्निको प्रज्वलित करके प्रकाशित करदेता है तैसे ही प्रकाशित करनेके कारण सूर्यको समिधा कहा है, तिस स्वर्गलोकरूप अग्निसे उत्पन्न हुए चंद्रमासे मेघरूप दूसरा अग्नि उत्पन्न होता है उस मेघसे पृथिवी पर औषधियें उत्पन्न होती हैं, पुरुषरूप अग्नि में होमीहुई औषधियोंसे पुरुषरूप अग्नि स्त्रीरूप अग्निमें वीर्यको सींचता है, इसप्रकार परब्रह्मरूप पुरुष से बहुतसी ब्राह्मणादि प्रजा उत्पन्न होती है ॥५॥

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च । सम्वत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद (दीक्षा) दीक्षा (च) और (यज्ञः) यज्ञ (सर्वे) सब (क्रतवः) यूपवाले यज्ञ (च) और (दक्षिणाः) दक्षिणा (च) और (सम्वत्सरः) सम्वत्सर (च) और (यजमानः) यजमान (लोकाः) लोक [उत्प-

न्नाः] उत्पन्न हुए हैं (यत्र) जहाँ (सोमः) चंद्रमा (यत्र) जहाँ (सूर्यः) सूर्य (पवते) पवित्र करता है ६

(भावार्थ)—तिससे ऋक्, यजु और साम यह तीन प्रकारके मंत्र, यज्ञोपवीत आदिका नियमरूप दीक्षा, अग्निहोत्र आदि यज्ञ, यूपवाले यज्ञ, गौ से लेकर सर्वस्व पर्यन्तकी दक्षिणा, कालरूप सम्वत्सर और यजमान यह कर्मके साधन और कर्मके फलरूप लोक उत्पन्न हुए, जिन लोकोंमें चन्द्रमा पोषण करके और जिनमें सूर्य तप कर पवित्र करता है ॥ ६ ॥

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि । प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(च) और (तस्मात्) तिससे (बहुधा) बहुत प्रकारके (देवाः) देवता (सम्प्रसूताः) उत्पन्न हुए (साध्याः) एक प्रकार के देवता (मनुष्याः) मनुष्य (पशवः) पशु (वयांसि) पक्षी (प्राणापानौ) प्राण और अपान (व्रीहियवौ) व्रीहि और यव (च) और (तपः) तप (श्रद्धा) श्रद्धा (सत्यम्) सत्य (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य (च) और (विधिः) विधि [सम्प्रसूतः] उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥

(भावार्थ)–तिस पुरुषसे कर्मके अङ्ग वसु आदि बहुत प्रकारके देवता, साध्य नामक देवता, कर्मके

अधिकारी मनुष्य तथा पशु पक्षी उत्पन्न हुए, मनुष्योंका जीवनस्वरूप ऊपरको जानेवाला वायुरूप प्राण, नीचेको जानेवाला वायुरूप अपान, धान्य, जौ, कर्मका अंग तप, आस्तिकपना रूप श्रद्धा, सत्य, मैथुन न करना रूप ब्रह्मचर्य और कर्म करनेकी विधि यह सब उत्पन्न हुए हैं ॥ ७ ॥

सप्त प्राणाःप्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः । सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (सप्त) सात (प्राणाः) इन्द्रियें (सम्भवन्ति) उत्पन्न होती हैं (सप्त) सात (अर्चिषः) अर्चियें (समिधः) इन्द्रियों के विषयरूप समिधें (सप्त) सात (होमाः) विषयों के विज्ञानरूप होम (इमे) यह (सप्त) सात (लोकाः) लोक [प्रभवन्ति] उत्पन्न होते हैं (येषु) जिन लोकोंमें (गुहाशयाः) हृदयमें शयन करनेवाले (सप्त सप्त) सात सात (निहिताः) स्थापित (प्राणाः) प्राण (चरन्ति) रहते हैं ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-तिस पुरुषसे ही दो कान, दो नेत्र, दो नासिका के छिद्र और मुखमें की जीभ यह सात इन्द्रियें, इन इन्द्रियोंकी अपने २ विषय को प्रकाश करना रूप सात ज्वाला, सात विषयरूप सात समिधा, उन विषयोंका जानना रूप सात

होम और जिनमें निद्राके समय हृदयरूप गुफामें रहनेवाले और प्रत्येक प्राणीमें सात २ स्थित प्राण विचरते हैं, तैसे ही इन्द्रियोंके स्थानरूप सात लोक उत्पन्न हुए हैं ॥ ८ ॥

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः । अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतः) इससे (समुद्राः) समुद्र (सर्वे) सब (गिरयः च) पर्वत भी [उत्पन्नाः] उत्पन्न हुए हैं (अस्मात्) इससे (सर्वरूपाः) अनेकों रूपवाली (सिन्धवः) नदियें (स्पन्दन्ते) बहती हैं (च) और(अतः) इससे (सर्वाः) सब (ओषधयः) औषधियें (रसः—च) रस भी [सम्भवति] उत्पन्न होता है (येन) जिस करके (हि) निश्चय (अन्तरात्मा) सूक्ष्मशरीर (भूतैः) पञ्चभूतों सहित (तिष्ठते) स्थित रहता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-इस पुरुषसे ही समुद्र और सकल पर्वत उत्पन्न हुए हैं और अनेकों रूपवाली गंगा आदि नदियें बहती हैं, इस पुरुषसे ही सब औषधियें और छः प्रकारका रस होता है, तिस रसके द्वारा स्थूलपञ्चभूतोंसे ढका हुआ सूक्ष्म शरीर स्थिति पाता है ९

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् । एतद् यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थि-

विकिरतीह सोम्य ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(कर्म) कर्म (तपः) तप (परामृतम्) श्रेष्ठ और अमृत (ब्रह्म) हिरण्यगर्भ (इदम्) यह (विश्वम्) सब (पुरुषः-एव) पुरुष ही है (सोम्य) हे सोम्य (यः) जो (एतत्) इस (गुहायाम्) हृदय में (निहितम्) स्थितको (वेद) जानता है (सः) वह (इह) इस जन्ममें (अविद्याग्रन्थिम्) अविद्याकी गांठको (विकिरति) नष्ट करता है ॥ १० ॥

(भावार्थ)-इसप्रकार यह सब पुरुषसे ही उत्पन्न हुआ है, वाणीसे उच्चारण किया जानेवाला नाममात्र विकार मिथ्या है, पुरुष ही सत् है, इसकारण यह पुरुष ही है, पुरुषसे अन्य विश्व नामक और कोई वस्तु है ही नहीं, इसकारण तीसरे मन्त्रमें जो बूझा था कि-किसके जाननेसे यह सब जाना जाता है सो यह बतादिया कि एक पुरुषको जान लेनेसे ही सकल विश्वको जान लिया जाता है फिर यह विश्व ऐसा है कि-कर्म, ज्ञानस्वरूप तप तथा और जो कुछ भी है, यह सब ब्रह्मका ही कार्य है, इसकारण हे सोम्य ! सब प्राणियोंकी हृदयरूप गुहामें स्थित परम अमृतस्वरूप इस ब्रह्मको 'यह मैं ही हूँ' ऐसा जो जान जाता है, वह इस विज्ञानसे इस मनुष्यजन्ममें ही गांठको समान दृढ़ हुई अविद्याकी वासनाको नष्ट करता है ॥ १० ॥

इति द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः

द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाम महत्पदमत्रै-
तत्समर्पितम् । एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जा-
नथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ।

अन्वय और पदार्थ-[ब्रह्म] ब्रह्म (आविः) प्रकाशमय (सन्निहितम्) प्राणियोंके हृदयमें स्थित (गुहाचरन्नाम) हृदयमें चलता है, ऐसे नामवाला (महत्पदम्) महान् आश्रय है (अत्र) इसमें (यत्) जो (एजत्) चलनेवाला (प्राणत्) प्राणवाला[तथा] तैसे ही (निमिषत्) पलक लगाना आदि क्रियावाला है (एतत्) यह (समर्पितम्) आश्रित है (एतत्) इसको (जानथ) जानो (यत्) जो (सत्-असत) स्थूल सूक्ष्मरूप (वरेण्यम्) पूजनीय [तथा] तैसे ही (प्रजानाम्) प्रजाओंके (विज्ञानात्) विज्ञानसे (परम्) पर है ॥ १ ॥

भावार्थ—अरूप और सत्स्वरूप ब्रह्मको जानने का प्रकार कहते हैं कि-हे शौनक ! यह अक्षर ब्रह्म स्वयं ज्योतिस्वरूप, सबके समीपमें रहनेवाला अंत-र्यामी और हृदयरूप गुहामें रहनेसे हृदयवासी नाम से प्रसिद्ध है, यह ही बड़ाभारी आश्रय है, उड़ने वाले पक्षी आदि, प्राण अपानादि प्राण धारण करने वाले मनुष्य पशु और पलक लगानेकी क्रिया वाले जितने हैं यह सब इसके ही आश्रयसे हैं, यह सत् है

और असत् भी है अर्थात् स्थूल सूक्ष्म दोनों प्रकारकी वस्तुओंका कारणस्वरूप है, यह प्रार्थनीय वा पूजनीय है और ज्ञानसे पर अर्थात् लौकिक ज्ञानका अगोचर है, इसको तुम जानो ॥ १ ॥

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च । तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ् मनः । तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (अर्चिमत्) दीप्तिमान् है (यत्) जो (अणुभ्यः) सूक्ष्मोंसे (च) भी (अणु) सूक्ष्म है (यस्मिन्) जिसमें (लोकाः) लोक (लोकिनः) लोकोंके निवासी (च) भी (निहिताः) स्थित हैं (तत्) सो (एतत्) यह (अक्षरम्) अविनाशी (ब्रह्म) ब्रह्म है (सः) वह (प्राणः) प्राण है (तत् उ) वह ही (वाक्) वाणी है (मनः) मन है (तत्) वह (एतत्) यह (सत्यम्) सत्य है (तत्) वह (अमृतम्) अमृत है (तत्) वह (वेद्धव्यम्) वेधने योग्य है (सोम्य) हे सोम्य (तत्) उसको (विद्धि) जान ॥ २ ॥

(भावार्थ)-जो प्रकाशवान् है, जो सूक्ष्मसे सूक्ष्म है, जिसमें यह सब लोक और लोकोंके निवासी स्थित हैं, वह अक्षर ब्रह्म है, वह प्राण है, वही वाणी और मन हैं, वही सत्य है और वही अमृत है, वही

मनके द्वारा वेधने योग्य है, इसकारण हे सोम्य ! उसको वेध अर्थात् उसमें मनको सावधान कर ॥२॥

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत । आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(औपनिषदम्) उपनिषदों में प्रसिद्ध (महास्त्रम्) महान् अस्त्ररूप (धनुः) धनुष को (गृहीत्वा) ग्रहण करके (उपासानिशितम्) उपासना करके तीक्ष्ण हुए (शरम्) बाण को (सन्धयीत) चढ़ावै (सोम्य) हे सोम्य (तद्भावगतेन) तिस ब्रह्म में है भावना जिसकी ऐसे (चेतसा) चित्त करके (आयम्य) खेंचकर (लक्ष्यम्) लक्ष्य (तत् एव) उस ही (अक्षरम्) अविनाशी को (विद्धि) जान ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-उपनिषदोंमें वर्णन किये हुए महास्त्र रूप धनुषको लेकर उपासनाकी सान धरे हुए बाण को चढ़ावै.हे सौम्य ! उस ब्रह्ममें है भावना जिसकी ऐसे चित्तसे उस धनुषको खेंच कर लक्ष्यरूप उस ब्रह्मको वेधै अर्थात् उसमें मन को लगावै ॥ ३ ॥

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रणवः) ओंकार (धनुः) धनुष है (आत्मा-हि) आत्मा ही (शरः) बाण

है (ब्रह्म); ब्रह्म (तत) वह (लक्ष्यम्) लक्ष्य (उच्यते) कहा जाता है (अप्रमत्तेन) सावधान भाव से (वेद्धव्यम्); वेधना चाहिये (शरवत्) बाणकी समान (तन्मयः) तन्मय (भवेत्) होय ॥

(भावार्थ)-प्रणव [ओंकार] ही धनुष है, आत्मा ही बाण है, ब्रह्म को लक्ष्य [निशाना] कहते हैं, एकाग्र चित्त होकर उस लक्ष्य को विद्ध करना चाहिये और बाण की समान उसमें तन्मय होना चाहिये अर्थात् जैसे बाण निशाने में जाकर गुमजाता है तैसे ही साधक को ब्रह्म में मग्न होना चाहिये ॥ ४ ॥

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः । तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्मिन्) जिस में (द्यौः) स्वर्ग (पृथिवीः) पृथिवी (च) और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (सर्वैः) सकल (प्राणैः) प्राणों करके (सह) सहित (च) और (मनः) मन (ओतम्)प्रविष्ट है (तम्) उस (आत्मानम्-एव) आत्मा को ही (जानथ) जानो (अन्याः) अन्य (वाचः) वाणियों को (विमुंचथ) छोड़ो (एषः) वह (अमृतस्य) मोक्ष का (सेतुः) पुल है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-जिस अक्षर पुरुषमें स्वर्ग,पृथिवी और आकाशरूप जगत् तथा प्राणों सहित मन प्रविष्ट

होरहा है, उस आत्माको ही जान, अन्य बातोंको त्यागदे, यह ही संसारसागरके पार पहुंचाकर मोक्षस्थान पर पहुंचनेके लिये सेतुरूप मार्ग है ॥५॥

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः । ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जिस में (नाड्यः) नाडियें (रथनाभौ) रथकी नाभि में (अरा-इव) अरों के समान (संहताः) प्रविष्ट हैं [तत्र] तहां (सः) वह (एषः) यह आत्मा (बहुधा) अनेकों प्रकार से (जायमानः) होता हुआ (चरते) विराजता है (ॐ इत्येव) ॐ इसप्रकार (आत्मानम्) आत्माको (ध्यायथ) ध्यान करो (तमसः) अज्ञान से (परस्तात्) परै (पाराय) तरने के लिये (वः) तुम्हारा (स्वस्ति) कल्याण हो ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-जिस हृदय में सकल नाडियें रथके पहिये की नाभि में तिरछे काठों की समान प्रविष्ट होरही हैं, तहां ही यह आत्मा देखनेवाला, सुनने वाला और मनन करने वाला इत्यादि अनेकों रूपों वाला होकर विराजमान है, प्रणवरूप से उस आत्माका ध्यान करो, ऐसा करके अविद्यान्धकारके परलेपारे उतर कर जानेमें तुम्हारा कल्याण हो ॥६॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः । मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठतोऽन्ने हृदयं सन्निधाय । तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ (सर्ववित्) सबका जाननेवाला है (भुवि) भूतलपर (यस्य) जिसका (एषः) यह (महिमा) महत्त्व है (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (दिव्ये) ज्ञानसे प्रकाशित (ब्रह्मपुरे) ब्रह्मस्थान (व्योम्नि) हृदयाकाशमें (हि) निश्चय (प्रतिष्ठितः) स्थित है (मनोमयः) मनोमय (प्राणशरीरनेता) प्राण और शरीर का नियामक (अन्ने) अन्नमें (हृदयम्) बुद्धिको (सन्निधाय) सम्यक् प्रकारसे स्थापित करके (प्रतिष्ठितः) स्थित है, (यत्) जो (आनन्दरूपम्) आनन्दरूप (अमृतम्) अमृत (विभाति) प्रकाशित होता है (तत्) उसको (धीराः) धीरपुरुष (विज्ञानेन) विशेष विज्ञानके द्वारा (परिपश्यन्ति) देखते हैं ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-जो साधारणरूप से और विशेषरूपसे सबको जानता है, जिसका प्रभुत्व भूलोक आदि सर्वत्र फैला हुआ है, यह ही सबकी बुद्धियों

का प्रकाशक है, हृदयरूप ब्रह्मनगरमें विद्यमान, आकाश में स्थितसा प्रतीत होता है, यह मनोमय आ प्राण और शरीरसे चेष्टा कराता है, यही प्रतिदिन घटने बढ़ने वाले तथा खाये हुए अन्नके परिणाममय विराटरूप अन्नके विषैं हृदयकमल के छिद्रमें अपनी उपाधिरूप बुद्धि को स्थापित कर के स्थित होरहा है, जो आनन्द और अमृतरूपसे प्रकाश पारहा है, उसका दर्शन ज्ञानी गम्भीर ज्ञान के द्वारा करते हैं ॥ ७ ॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ८

अन्वय और पदार्थ-(तस्मिन्) तिस (परावरे) कारणात्मा और कार्यात्माके (दृष्टे) दीखने पर (हृदयग्रन्थिः) हृदयकी गांठ (भिद्यते) खुल जाती है [सर्वसंशयाः) सकल सन्देह (छिद्यन्ते) नष्ट होजाते हैं (अस्य) इस साधकके (कर्माणि च) कर्म भी (क्षीयन्ते) क्षीण होजाते हैं ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-उस कारण और कार्यस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार होनेपर अविद्याके कारण होनेवाली विषयवासनारूप हृदयकी गांठ खुल जाती है, सकल सन्देह नष्ट होजाते हैं और इस साधकके मोक्ष को रोकनेवाले सकल सकाम कर्म क्षीण होजाते हैं ॥८॥

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदुः।

अन्वय और पदार्थ-(हिरण्मये) ज्योतिःस्वरूप (परे) श्रेष्ठ (कोशे) आत्मामें (विरजम्) निर्मल (निष्कलम्) कलारहित (ब्रह्म ब्रह्म [अस्ति] है (तत्) वह (शुभ्रम्) शुद्ध (ज्योतिषाम्) सकल ज्योतियों का (ज्योतिः) प्रकाशक (तत्) वह है (यत्) जिस को (आत्मविदः) आत्मज्ञानी (विदुः) जानते हैं ॥९॥

(भावार्थ)-श्रेष्ठ प्रकाशमय कोषमें, अविद्या आदिके मलसे रहित और सोलह कलारूप अवयवोंसे रहित अखण्ड ब्रह्म प्रकाशित है, वह शुद्ध और सूर्य आदि सकल प्रकाशकोंका भी प्रकाशक है, ऐसे परमज्योति और शब्दादि विषय तथा बुद्धिकी वृत्तियों के साक्षीको आत्माके जाननेवाले विवेकी पुरुष ही जानते हैं ॥ ९ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयमग्निः तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्र) उसमें (सूर्यः) सूर्य (न) नहीं (भाति) प्रकाश करता है (चन्द्रतारकम्) चन्द्रमा और तारागण (न) नहीं (इमाः) यह (विद्युतः) बिजलियें (न) नहीं (भान्ति)

प्रकाश करती हैं (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि (कुतः) कहांसे (तम्) उस (भान्तम्) प्रकाशित होते हुएके (अनु) पीछे (सर्वम्) सब (भाति) प्रकाशित होता है (तस्य) उसकी (भासा) दीप्ति करके (इदम्) यह (सर्वम्) सब (विभाति) भासता है ॥ १० ॥

(भावार्थ)-जिस ब्रह्मको सूर्य प्रकाशित नहीं करसकता, चन्द्रमा और तारागण प्रकाशित नहीं करसकते, और यह बिजलियें भी प्रकाशित नहीं करसकतीं, फिर यह अग्नि तो प्रकाशित करेगा ही कहांसे ? किन्तु सकल वस्तुएँ उस दीप्यमानके प्रकाशसे ही प्रकाशित होती हैं, अतएव उसके प्रकाशसे ही सब प्रकाश पाते हैं ॥ १० ॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् दक्षिणतश्चोत्तरेण । अधश्चोर्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (अमृतम्) अमृतस्वरूप (ब्रह्म-एव) ब्रह्म ही (पुरस्तात्) पूर्वमें है (ब्रह्म) ब्रह्म (पश्चात्) पश्चिममें है (ब्रह्म) ब्रह्म (दक्षिणतः) दक्षिणकी ओर है (च) और (उत्तरेण) उत्तर की ओर है (अधः) नीचे (ऊर्ध्वम्-च) ऊपर भी (प्रसृतम्) फैला हुआ है (इदम्) यह (वरिष्ठम्) परमश्रेष्ठ है (इदम्) यह (विश्वम्) विश्व (ब्रह्म-एव) ब्रह्म ही है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-यह अमृतस्वरूप ब्रह्म ही पूर्वमें है, ब्रह्म ही पश्चिममें है, ब्रह्म ही दक्षिणकी ओर है, और ब्रह्म ही उत्तरकी ओर है, वह ही नीचे और ऊपर फैल रहा है, अधिक क्या कहैं, वह श्रेष्ठ ब्रह्म ही यह समस्त जगत्रूप होकर भास रहा है ११

इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः । द्वितीयं मुण्डकं समाप्तम्

—०—

तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(द्वा) दो (सयुजा) साथ रहनेवाले((सखाया) मित्र (सुपर्णा) पक्षी (समानम्) एक (वृक्षम्) शरीररूप वृक्षको (परिषस्वजाते) आश्रय किये हुए हैं (तयोः) उनमें (अन्यः) एक (स्वादु) मीठे (पिप्पलम्) फलको (अत्ति) भक्षण करता है (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) भक्षण न करता हुआ (अभिचाकशीति) देखता है ॥

(भावार्थ) जीव और ईश्वर नामक सदा साथ रहनेवाले और परस्पर सखाभाव रखनेवाले पक्षी को समान, शरीर नामक एक वृक्षका आश्रय करके रहते हैं, उन दोनोंमें से एक लिंगशरीररूप उपाधि वाला क्षेत्रज्ञ जीव, शरीररूप वृक्षके आश्रय करके

कर्मसे उत्पन्न हुई सुखदुःखमय अनेकों प्रकारकी वेदनाओंके अनुभवरूप स्वादु फलको अज्ञानसे भोगता है, और दूसरा नित्यशुद्ध-बुद्ध, मुक्तस्वभाव सर्वज्ञ शुद्ध सत्वगुणवाला मायोपाधिक ईश्वर नहीं भोगता है किन्तु शरीररूप वृक्षसे न्यारा हुआ केवल साक्षीपनेसे देखता है ॥ १ ॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पुरुषः) जीव (समाने) एक ही (वृक्षे) वृक्षमें (निमग्नः) आसक्त हुआ (अनीशया) शक्तिहीनता करके (मुह्यमानः) मोहित हुआ (शोचति) शोक करता है (यदा) जब (अन्यत्) दूसरे (जुष्टम्) सेवित (ईशम्) ईशको (अस्य) इसके (इति) इस (महिमानम्) महिमा को (पश्यति) देखता है (वीतशोकः) दुःखरहित (भवति) होता है ॥ २ ॥

(भावार्थ)—भोक्ता जीव, एक ही वृक्षरूप शरीर में अविद्या काम और कर्मफलके बोझेके कारण निमग्न होरहा है अर्थात् देह आदिको ही आत्मस्वरूप समझ रहा है और पुत्र पौत्र आदि सम्बन्धियोंको अपना समझ रहा है, इसीकारण जब इनमें से किसीका वियोग होता है तब मोहमें

पड़ताहुआ अनेकों अनर्थोंसे अविवेकी होता हुआ चिन्ता करता है कि-मैं किसी कामका नहीं हूँ मेरा पुत्र नष्ट होगया, भार्या मर गई, अब मुझे जीवित रहकर क्या करना है, ऐसी दीनतारूप असामर्थ्य से शोकको पाता है, तदनन्तर प्रेत पशु-पक्षी मनुष्यादि योनियोंमें पहुंचा हुआ जीव किसी समय अनेकों जन्मोंमें किये हुये शुभकर्मोंके कारण किसी परमदयालु पुरुषके दिखाये हुए योगमार्गमें अहिंसा सत्य आदिसे युक्त सावधानचित्तवाला होकर जिस समय अनेकों योगी और कर्मिष्ठोंसे सेवित, देहरूप वृक्षकी उपाधिसे रहित और भूख प्यास मृत्यु आदिसे रहित असंसारी ईश्वरका दर्शन पाता है तथा मैं सकल प्राणियोंमें स्थित सकल जगत्का आत्मा हूँ अविद्या कृत उपाधियोंसे परिच्छिन्न नहीं हूँ तथा यह जगत् भी मेरा ही रूप, है, ऐसी विभूतिरूप महिमाको ध्यान करता हुआ देखता है, तब सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त होजाता ॥ २॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । यदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (पश्यः) साधक (रुक्मवर्णम्) ज्योतिर्मय (कर्तारम्) कर्त्ता (ब्रह्मयोनिम्) ब्रह्मयोनि (ईशम्) ईश्वर (पुरुषम्) पुरुष

तो (पश्यने) देखता है (तदा) तब (विद्वान्) विवेकी (पुण्यपापे) पुण्य और पापको (विधूय) दूरकरके (निरञ्जनः) निर्मल हुआ (परमं-साम्यम्) परम समताको (उपैति) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ–जिस समय ज्ञानी साधक, ज्योतिर्मय कर्त्ता और अपरब्रह्मस्वरूप हिरण्यगर्भके उत्पत्तिस्थान परम पुरुष ईश्वरका दर्शन करता है, उस समय बन्धनके हेतु पुण्यपापस्वरूप दोनों प्रकारके कर्मों को त्यागताहुआ निर्मल होकर अद्वैतरूप परम समताको पाता है ॥ ३ ॥

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी । आत्मक्रीडः आत्मरतिः क्रियावानेषु ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (सर्वभूतैः) सकल भूतस्वरूपों करके (विभाति) प्रकाशित होता है (एषः) यह (हि) निश्चय (प्राणः) प्राण है [तम्] उस को (विजानन्) जानता हुआ (विद्वान्) विवेकी पुरुष (अतिवादी) अन्य बात करनेवाला (न) नहीं (भवते) होता है (आत्मक्रीडः) आत्मा में क्रीडा करनेवाला (आत्मरतिः) आत्मास्वरूपमें प्रीति करनेवाला [तथा] तैसे ही (क्रियावान्) सत्कर्म करनेवाला [भवति] होता है (एषः) यह (ब्रह्मविदाम्) ब्रह्मज्ञानियों में

(वरिष्ठः) परम श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-जो प्राणोंका प्राण परमेश्वर ब्रह्मासे लेकर स्तंबपर्यन्त सकल प्राणियोंमें भासरहा है, इस प्राणस्वरूपको 'यह मैं ही हूँ' ऐसे साक्षात् भावसे जाननेवाला विद्वान् अतिवादी नहीं होता है अर्थात् किसीमें न्यूनाधिकभाव नहीं देखता है, किन्तु परमात्मस्वरूपमें ही क्रीड़ा करता है और उसमें ही प्रीति करता है तथा सदा सत्कार्य करता है, यह ब्रह्मज्ञानियोंमें परम श्रेष्ठ होजाता है ॥ ४ ॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् । अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥५॥

अन्वय और पदार्थ—(ज्योतिर्मयः) ज्योतिःस्वरूप (शुभ्रः) शुद्ध (आत्मा) आत्मा (अन्तःशरीरे) शरीरके भीतर (वर्त्तते) है (च) और (यम्) जिसको (क्षीणदोषाः) निर्दोष (यतयः) त्यागी पुरुष (पश्यन्ति) देखते हैं (एषः) यह (सत्येन) सत्य करके (तपसा) तप करके (सम्यक् ज्ञानेन) यथार्थ ज्ञान करके (नित्यम्) नित्य (ब्रह्मचर्येण च) ब्रह्मचर्य करके भी (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-जो ज्योतिर्मय शुद्ध आत्मा शरीरके भीतर हृदयकमलके आकाशमें विराजमान है और

काम क्रोध आदिसे रहित निर्मल चित्तवाले साधक जिसका दर्शन करते हैं ऐसा यह आत्मा सत्यभाषण जितेन्द्रियपना रूप तप, यथार्थ ज्ञान तथा नित्य ब्रह्मचर्यके द्वारा प्राप्त होसकता है ॥ ५ ॥

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः । येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सत्यम्-एव) सत्यही (जयते) जयको प्राप्त होता है (अनृतम्) मिथ्या (न) नहीं (सत्येन) सत्य करके (देवयानः) देवयान नामक (पन्थाः) मार्ग (विततः) फैल रहा है (येन) जिस करके (हि) निश्चय (आप्तकामाः) पूर्णकाम (ऋषयः) ऋषि (तत्र) तहां (आक्रमन्ति) जाते हैं (यत्र) जहां (सत्यस्य) ब्रह्मका (तत्) वह (परमं निधानम्) परमधाम (अस्ति) है ॥६॥

(भावार्थ)-सत्यकी ही जय होती है, मिथ्याकी जय नहीं होती, सत्यसे देवयान नामक मार्ग का द्वार खुला हुआ है, जिसके द्वारा तृष्णाके त्यागी पूर्णकाम ऋषि तहाँ जा पहुँचते हैं, कि—जहां सत्यस्वरूप ब्रह्मका सनातन परम धाम है ॥ ६ ॥

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति । दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) वह (बृहत्) बड़ा (दिव्यम्) दिव्य (अचिन्त्यरूपम्-च) अचिन्त्यरूप भी है (तत्) वह (सूक्ष्मात्-च) सूक्ष्मसे भी (सूक्ष्मतरम्) परम सूक्ष्म (विभाति) विविधप्रकार से भासता है (तत्) वह (दूरात्) दूर से (सुदूरे) अति दूर (च) और (इह) इस शरीरमें (अन्तिके) समीप है (इह-एव) यहां ही (पश्यत्सु) ज्ञानवानों में (गुहायाम्) गुहाके विषैं (निहितम्) स्थित है ७

(भावार्थ)-वह बड़ा, स्वयंप्रकाश और इन्द्रियोंके अगोचर होनेसे अचिन्त्यरूप है, वह आकाश आदि सूक्ष्म पदार्थोंसे भी अतिसूक्ष्म है तथा सूर्य चन्द्र आदिके स्वरूपमें विविध प्रकारसे भासित होरहा है वह अज्ञानियोंको अप्राप्य होनेके कारण दूरसे भी परमदूर है और ज्ञानियोंका आत्मा होनेके कारण उनके इस शरीरमें ही समीप विद्यमान है और चेतनावाले सकल पदार्थोंके विषैं बुद्धिरूप गुहामें स्थित वह ब्रह्म योगियोंको ज्ञानदृष्टि से यहां ही दीखजाता है ॥ ७ ॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा । ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (चक्षुषा)चक्षु करकै (न) नहीं (वाचा अपि) वाणी करके भी (न)

नहीं (अन्यैः) अन्य (देवैः) इन्द्रियों करके (तपसा) तप करके (वा) या (कर्मणा) कर्म करके (न) नहीं (गृह्यते) ग्रहण कियाजाता है [साधकः] साधक (ज्ञानप्रसादेन) ज्ञानकी निर्मलता करकै (विशुद्धसत्त्वः) शुद्धान्तःकरण हुआ (ततः) तदनन्तर (तु) तो (ध्यायमानः) ध्यान करता हुआ (निष्कलम्) निरवयवं (तम्) उस परमात्माको (पश्यते)देखता है ८

(भावार्थ)—उस परमात्माको नेत्र ग्रहण नहीं करसकता, वाणी ग्रहण नहीं करसकती तथा अन्य इन्द्रियें भी ग्रहण नहीं करसकतीं और केवल तपस्या और कर्मके द्वारा भी उसको नहीं पासकता किन्तु जब इन्द्रियें और विषयोंके संबन्धसे उत्पन्न राग आदि मल दूर होकर निर्मल जल और दर्पण आदिका समान स्वच्छ तथा शांतस्वरूप बुद्धि होजाती है तब उस ज्ञानके अनुग्रह से शुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष ध्यान योगके द्वारा तिस निरवयव परमात्मा का दर्शन पाता है ॥ ८ ॥

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे भवत्येष आत्मा ९

अन्वय और पदार्थ–(एषः) यह (अणुः) सूक्ष्म (आत्मा) आत्मा (तत्र) तिस शरीरमें (चेतसा) चित्त करके (वेदितव्यः) जानने योग्य है (यस्मिन्) जिस शरीरमें (प्राणः) प्राण (पञ्चधा) पांच प्रकार

से (संविवेश) प्रविष्ट हुआ है (प्राणैः) इन्द्रियों करके [सह] सहित (प्रजानाम्) प्राणियोंका (सर्वम्) सब (चित्तम्) चित्त (ओतम्) व्याप्त होरहा है (यस्मिन्) जिस चित्तके (विशुद्धे)अतिशुद्ध होनेपर (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (भवति) प्रकाशित होता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)–जिस शरीरमें प्राण अपान आदि पाँच भेदोंसे प्राणने प्रवेश किया है, तिस शरीरमें ही इस सूक्ष्म आत्माको विशुद्ध ज्ञानस्वरूप चित्तसे जाना जाता है, प्राणियोंके इन्द्रियों सहित सकल चित्त चैतन्यसे व्याप्त होरहे हैं, उस चित्तके क्लेश आदि मलोंसे रहित शुद्ध होजाने पर उसमें यह वर्णन किया हुआ आत्मा अपने स्वरूपमें प्रकाशित होता है ॥

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् । तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः ॥१०॥

अन्वय और पदार्थ–(विशुद्धसत्त्वः) विशेष शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष (यम्–यम्) जिस २ (लोकम्) लोकको (मनसा) मन करके (संविभाति) सङ्कल्प करता है (च) और (यान्) जिन (कामान्) भोगोंको (कामयते) चाहता है (तम् तम्) तिस तिस (लोकम्) लोकको (तान्) उन (कामान् च) भोगोंको भी (जयते) जीतता है (तस्मात्) तिससे (भूतिकामः) ऐश्वर्यकी

भावनावाला (हि) निश्चय (आत्मज्ञम्) आत्म-ज्ञानीको (अर्चयेत्) पूजै ॥ १० ॥

(भावार्थ)-निर्मल अन्तःकरण वाला पुरुष, जिस जिस पुत्र आदि लोकको यह मेरे लिये या दूसरेके लिये होजाय ऐसा मनसे विचारता है और जिन भोगोंको चाहता है वही लोक और वही सकल भोगके पदार्थ ध्यान करते ही अपने ज्ञानके बलसे पाजाता है,इस कारण ऐश्वर्यकी इच्छावाले पुरुषको चाहिये कि-शुद्ध अन्तःकरण वाले आत्माज्ञानी का पूजन सत्कार करै ॥ १० ॥

इति तृतीयमुंडके प्रथमः खंडः ।

तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्र-मेतदतिवर्त्तन्ति धीराः ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ --(सः) वह आत्मज्ञानी (एतत्) इस (परमम्) परम (धाम) आश्रय (ब्रह्म) ब्रह्मको (वेद) जानता है (यत्र) जिस में (विश्वम्) विश्व (निहितम्) स्थित है [यत्] जो (शुभ्रम्) शुद्ध (भाति) प्रकाशित होता है (हि) निश्चय (ये) जो (अकामाः) निष्काम (धीराः) बुद्धि-मान् (पुरुषम्) पुरुषको (उपासते) उपासना करते हैं (ते)वह (एतत्) इस (शुक्रम्) वीर्यको (अतिव-

र्न्ते) लाँघजाते हैं ॥ १ ॥

(भावार्थ)-यह आत्मज्ञानी इस सब कामनाओंके आश्रय ब्रह्मरूप परमधामको जानता है जिस परम धाममें यह सकल विश्व स्थित है और जो ब्रह्मधाम अपने शुद्ध प्रकाश से भासित होरहा है, जो बुद्धिमान् मुमुक्षु पुरुष ऐश्वर्यकी कामनासे रहित होकर उस आत्मज्ञानी पुरुषकी परमात्मदेवकी समान सेवारूप उपासना करते हैं, वह शरीरधारणके कारण रूप वीर्यको लांघजाते हैं, अर्थात् फिर उनका जन्म नहीं होता है ॥ १ ॥

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र । पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (कामान्) भोगोंको (मन्यमानः) चिंतवन करता हुआ (कामयते) चाहता है (सः) वह [तैः] उन (कामैः) कामनाओं करके [सह] सहित (तत्र तत्र) तहाँ तहाँ (जायते) उत्पन्न होता है (तु) किंतु (पर्याप्तकामस्य) वासनारहित (कृतात्मनः) सिद्धात्मा के (सर्वे) सब (कामाः) मनोरथ (इह-एव) यहाँ ही (प्रविलीयन्ति) विलीन होजाते हैं ॥ २ ॥

(भावार्थ)-जो पुरुष काम्य वस्तुओंका चिंतवन करके उन उन विषयोंकी चाहना करता है वह

पुरुष, कामनाओंके साथ उन २ इच्छित भोगों वाले लोकोंमें जन्म धारण करता है, परन्तु जो वासनाओंको त्यागकर अपनेको पूर्णकाम मान लेता है उसको आत्मस्वरूपके प्रकाशका साक्षात्कार होजाता है और उसकी धर्म अधर्ममें प्रवृत्तिकी कारण सकल कामनायें इस शरीरमें ही विलीन होजाती हैं ॥२॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (प्रवचनेन) वेदके पढ़ाने करके (न) नहीं (लभ्यः) प्राप्त है (मेधया) धारणाशक्ति करके (बहुना) बहुतसे (श्रुतेन) शास्त्रज्ञानसे (न) नहीं [लभ्यः] प्राप्त होने योग्य है (यम्) जिसको (एषः) यह (वृणुते) वरता है (तेन-एव) तिस करके ही (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है (तस्य) उसको [समीपे]समीपमें (एषः) यह आत्मा है(स्वाम्) अपने (तनूम्) स्वरूपको (वृणुते) प्रकाशित करता है ॥३॥

(भावार्थ)-यह आत्मा न वेदके पढ़ानेसे मिलता है, न ग्रन्थोंके अर्थोंको धारण करनेकी शक्तिसे मिल सकता है और न शास्त्रके ज्ञानसे ही पाया जाता है, किन्तु जिसको यह आत्मा ही अपना दर्शन देनेको वरण करता है उसको ही यह मिल सकता है, उसके समीपमें यह अपने स्वरूपको प्रकाशित करदेता है ॥ ३ ॥

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादा-त्तपसो वाप्यलिङ्गात् । एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वां-स्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (बलहीनेन) बलहीन करके (न) नहीं (लभ्यः) प्राप्त होनेयोग्य है (प्रमादात्) प्रमादसे (अपि वा) या (अलिंगात्) संन्यासरहित (तपसः) ज्ञान से (च) भी (न) नहीं (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है (तु) किन्तु (यः) जो (विद्वान्) विचारवान् (एतैः) इन (उपायैः) उपायों करके (यतते) यत्न करता है (तस्य) उसका (एषः) यह (आत्मा) आत्मा (ब्रह्मधाम) ब्रह्मधामको (विशते) प्रवेश करता है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-जिसमें आत्मनिष्ठाका बल नहीं है वह इस आत्माको नहीं पासकता, उदासीनता करके अथवा संन्यास रहित ज्ञानके द्वारा भी उसको नहीं पायाजासकता, परन्तु जो ज्ञानी पुरुष इन सब उपायोंके द्वारा अर्थात् बल, अप्रमाद और संन्यास सहित ज्ञानपूर्वक यत्न करता है, उसका आत्मा ब्रह्मधाममें प्रवेश करता है ॥४॥

सम्प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीत-रागाः प्रशान्ताः ते । सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीराः युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(एनम्) इसको , सम्प्राप्य) प्राप्त होकर (ऋषयः) ऋषि (ज्ञानतृप्ताः) ज्ञानसे तृप्त हुए (कृतात्मानः) अपने स्वरूपका किया है दर्शन जिन्होंने ऐसे (वीतरागाः) आसक्तिरहित (प्रशान्ताः) परमशान्त [भवन्ति] होते हैं (ते) वह (युक्तात्मानः) सावधान चित्तवाले (धीराः) विवेकी पुरुष (सर्वम्) सर्वव्यापी को (सर्वतः) सर्वत्र (प्राप्य) पाकर (सर्वम्) सर्व रूपको (आविशन्ति) प्रविष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

(भावार्थ)—परमात्मतत्त्वका दर्शन पाने वाले ऋषि इस आत्माको जानकर उस ज्ञानसे ही तृप्त और अपने स्वरूपके ज्ञाता तथा रागादिरहित होते हुए परम शान्तभावसे विचरते हैं, वह विवेकी और नित्य चित्तकी एकाग्रता वाले पुरुष आकाश की समान सर्वव्यापक अद्वैतब्रह्मको निरुपाधिक भावसे सर्वत्र पाकर शरीरके पतनकालमें सवप्रकारमें उसमें ही प्रवेश करते हैं यह ही ब्रह्मवेत्ताओं-का ब्रह्मधाममें प्रवेश है ॥ ५ ॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः) वेदान्त विज्ञानके विषयको जिन्होंने भलीप्रकार निश्चय कर लिया है (संन्यासयोगात्)

संन्यासयोगसे (शुद्धसत्त्वाः) शुद्धचित्त हुए (परामृताः) परम अमरभावको प्राप्त हुए (ते) वह (सर्वे) सब (यतयः) यति (परान्तकाले) अंतिमशरीरके त्यागकालमें (ब्रह्मलोकेषु) ब्रह्मलोकोंमें (परिमुच्यन्ति) पूर्णरूपसे मुक्त होजाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ-वेदान्तसे उत्पन्न हुई परम ज्ञानके विषय ब्रह्मको उत्तमरूपसे जाननेवाले, सकलकर्मोंका त्याग ब्रह्मनिष्ठारूप संन्यासयोगसे शुद्ध चित्त हुए और परम तथा मरणरहित ब्रह्म ही है आत्मा जिनका ऐसे वे सकल यति, अन्तिमशरीरके त्यागकाल में सम्यक्प्रकारसे मुक्त होते हुए ब्रह्ममें लीन होजाते हैं ॥ ६ ॥

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥७॥

अन्वय और पदार्थ—[तेषाम्] उनके (पञ्चदश) पन्द्रह (कलाः) प्राणादि देहभाग (प्रतिष्ठाः) अपने कारणोंको (गताः) प्राप्त [भवन्ति] होते हैं (सर्वे) सब (देवाः) इन्द्रियें (च) भी (प्रतिदेवतासु) अपने २ देवताओं में [गताः, भवन्ति] प्राप्त होते हैं [तेषाम्] उनके (कर्माणि) कर्म (विज्ञानमयः) विज्ञानमय (आत्मा,च) आत्मा भी (सर्वे) सब (परे) पर (अव्यये) अविनाशी में (एकीभवन्ति) एकरूप होते हैं ॥ ७ ॥

(भावार्थ)—अन्तकालमें उनके देहके आरम्भक प्राणादि पन्द्रह अवयव अपने २ कारणमें जाकर लीन होजाते हैं, और देहमेंकी चक्षु आदि इन्द्रियों की शक्तियें अपने २ सूर्यादि प्रतिदेवताओंमें जाकर लीन होजाती हैं, भोगनेसे बचेहुए और जिनके फल का आरम्भ नहीं हुआ है ऐसे कर्म और विज्ञानमय आत्मा, यह सब उपाधिके दूर होनेसे, सत् पर अव्यय अजन्मा अजर अमर अभय अकारण अद्वैत शिव और शान्तस्वरूप ब्रह्ममें जाकर ऐसे लीन होजाते हैं जैसे जलकेपात्रको दूर करनेसे सूर्य आदिका प्रतिबिम्ब सूर्यादिमें और घटादि उपाधियोंको दूर करनेपर घटाकाश आदि महाकाशमें एकीभूत होजाता है ॥ ७ ॥

यथा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यथा) जैसे (स्पन्दमानाः) बहतीहुई (नद्यः) नदियें (नामरूपे) नाम और रूपको (विहाय) त्यागकर (समुद्रे) समुद्र में (अस्तम्) अस्तको (गच्छन्ति) प्राप्त होती हैं (तथा) तैसे ही (विद्वान्) विवेकी (नामरूपात्) नाम और रूपसे (विमुक्तः) छूटाहुआ (परात्परम्) परसे पर (दिव्यम्) दिव्य (पुरुषम्) पुरुष को (उपैति) प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)—जैसे बहतीहुई नदियें नाम और रूपको त्यागकर समुद्रमें अस्त होजाती हैं, तैसे ही विद्वान् अविद्याके रचेहुए नाम और रूपसे मुक्त हुआ पीछे वर्णन कियेहुए अक्षररूप परसे पर दिव्य पुरुषमें लीन होजाता है ॥ ८ ॥

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति । तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ९

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (ह) प्रसिद्ध (तत्) उस (परमम्) परम (ब्रह्म) ब्रह्मको (वेद) जानता है (सः) वह (वै) निश्चय (ब्रह्म,एव) ब्रह्म ही (भवति) होता है [अस्य] इसके (कुले) कुलमें (अब्रह्मवित्) ब्रह्मका न जाननेवाला (न) नहीं (भवति) होताहै (शोकम्) शोकको (तरति) तरता है (पाप्मानम्) पापको (तरति) तरता है (गुहाग्रन्थिभ्यः) गुहारूप गांठोंसे (विमुक्तः) विमुक्त हुआ (अमृतः) अमर (भवति) होता है

(भावार्थ)—जो कोई उस प्रसिद्ध परमब्रह्मको साक्षात् मैं ही हूँ इसप्रकार जानता है, वह अन्य गतिको नहीं पाता, देवता भी इसकी परम गतिमें आनकर विघ्न नहीं डालते, क्योंकि यह तो इन देवताओंका भी आत्मा होजाता है, इसकारण वह ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही होजाता है और इस विद्वान्की

शिष्यपरम्परामें कोई भी ऐसा नहीं होता कि–जो ब्रह्मज्ञानी न हो, यह विद्वान् जीवित दशामें ही इच्छित वस्तुओंके वियोगसे उत्पन्न हुए मनके संतापरूप शोकको तरजाता है और पापके पार हो जाता है तथा अविद्याकी वासनामय हृदयकी गांठ से छूटकर अमर होजाता है ॥ ९ ॥

तदेतदृचाभ्युक्तम्–

क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वते एकर्षिं श्रद्धयन्तः । तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत् शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ—(तत्) सो (एतत्) यह (ऋचा) ऋग्वेद के मन्त्र करके (अभ्युक्तम्) प्रकाशित किया गया है (ये) जो (क्रियावन्तः) क्रियावान (श्रोत्रियाः) वेदवेत्ता (ब्रह्मनिष्ठाः) ब्रह्मनिष्ठ (श्रद्धयन्तः) श्रद्धा करतेहुए (एकर्षिम्) एकर्षिनामक अग्निको (जुह्वते) आहुति देते हैं (च) और (यैः) जिन्होंने (तु) तो (विधिवत्) विधिपूर्वक (शिरोव्रतम्) शिरोव्रत (चीर्णम्) किया है (तेषाम्–एव) उनको ही (एताम्) इस (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मविद्याको (वदेत्) कहै ॥ १० ॥

(भावार्थ)–जो शास्त्रमें कहेहुए कर्मका अनुष्ठान करनेवाले वेदवेत्ता और परब्रह्मकी जिज्ञासावाले श्रद्धायुक्त होकर एकर्षिनामक अग्निमें हवन करते

हैं और जिन्होंने मस्तकपर अग्निको धारण करनारूप अथर्ववेदमें वर्णित व्रत शास्त्रमें कही विधिसे किया है उनको ही इस ब्रह्मविद्याका उपदेश करे ॥ १० ॥

तदेतत्सत्यमृषिरंगिराः पुरोवाच, नैतदचीर्णव्रतोऽधीते । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अङ्गिराः) अंगिरा (ऋषिः) ऋषि (पुरा) पहिले (तत्) तिस (एतत्) इस (सत्यम्) विज्ञानको (उवाच) कहताहुआ (अचीर्णव्रतः) व्रत न करनेवाला (एतत्) इसको (न) नहीं (अधीते) पढ़ता है (परमऋषिभ्यः) परमऋषियोंके अर्थ (नमः) नमस्कार है (परमऋषिभ्यः) परमऋषियोंके अर्थ (नमः) नस्मकार है ॥ ११ ॥

भावार्थ इस अक्षर पुरुषरूप विज्ञानको पूर्व कालमें अंगिरा ऋषि ने समीप आकर विधिवत् बूझने वाले शौनक ऋषिसे कहा था, जिन्होंने व्रत नहीं किया है वह इस विज्ञानको नहीं पढ़ते हैं, जिनसे यह ब्रह्मविद्या परम्परा क्रमसे प्राप्त हुई है उन परम ऋषियों को वारम्वार प्रणाम है ॥ ११ ॥

इति तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः । इति श्री अथर्ववेदीय मुण्डक उपनिषद्का मुरादाबादनिवासी भारद्वाजगोत्र-गौड़वंश्य पण्डितभोलानाथात्मज सनातनधर्मपताकासम्पादक ऋ०कु०रामस्वरूपशर्मा कृत अन्वय पदार्थ और भाषा भावार्थ समाप्त

—०—

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ तत्सत्

अथर्ववेदीया-

माण्डूक्य-उपनिषद्

जैसे मण्डूक (मेंडक) तीन छलांग मारकर जलके भीतर प्रवेश करता है तैसे ही इस उपनिषद्में जागृत् आदि तीन स्थानोंमेंके तीन पादोंको छोड़कर चौथा पादरूप हुआ पुरुष ब्रह्मभावको पाता है अतः मण्डूक के समान होनेसे यह आत्मा मण्डूक है और उसका प्रतिपादन करने वाला यह उपनिषद् माण्डूक्य कहाता है।

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्। भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव च। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ॐ इत्येतत्) ॐ यह (अक्षरम्) अक्षर (इदम्) यह (सर्वम्) सब है (तस्य) उसका (उपव्याख्यानम्) स्पष्ट कथन [इदम्-अस्ति] यह है (भूतम्) बीताहुआ (भवत्) वर्त्तमान (भविष्यत्) होनहार (इति) यह (सर्वम्) सब (ॐकारः,एव) ॐकार ही है (च) और (यत्) जो (त्रिकालातीतम्) त्रिकालसे परे (अन्यत्) अन्य है (तत्-अपि) वह भी (ॐकारः,एव) ॐकार ही है॥ १ ॥

(भावार्थ)-ओं यह अक्षर ही सब जगत् है, आगे इस ओंकारका ही व्याख्यान कियाजाता है, कि-जो भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान इन तीनों कालमें होता है और जो कुछ इस त्रिकालसे पर अर्थात् कालका भी कारण चित्प्रतिबिम्बस्वरूप अविद्या आदि हैं, यह सब ओंकार ही है, क्योंकि-नाम और अर्थका तथा विवर्त्त और अधिष्ठानका अभेद मानाजाता है ॥ १ ॥

सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पात्

अन्वय और पदार्थ-(हि) निश्चय (सर्वम्) सब (एतत्) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (चतुष्पात्) चार चरणवाला है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-जिसको ॐकाररूप कहा है और ओंकार भी, यह सब ब्रह्म ही हैं, क्यों कि-ब्रह्मका विवर्त्त (अतात्त्विक रूपान्तर) है, ब्रह्म कोई परोक्ष पदार्थ नहीं है, किन्तु यह अन्तःकरणमें विराजनेवाला आत्मा ही ब्रह्म है यह ब्रह्म आगे वर्णन कीजानेवाली चार अवस्थाओंसे युक्त होनेके कारण चतुष्पात् है २

जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति-मुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(जागरितस्थानः) जाग्रत् अवस्थाका अधिष्ठाता (बहिः प्रज्ञः) बाहरको है प्रज्ञा जिसकी ऐसा (सप्ताङ्गः) सात अंगोंवाला (एकोन

विंशतिमुखः) उन्नीस हैं मुख जिसकेऐसा (स्थूल-भूक्) स्थूल शब्दादि विषयोंका भोक्ता (वैश्वानरः) विश्वरूप पुरुष (प्रथमः) पहिला (पादः) चरण है ॥३॥

भावार्थ-जाग्रत् अवस्था है अभिमानका विषय जिसका ऐसा, बाहरी विषयोंका ज्ञाता वा प्रकाशक स्वर्ग-मस्तक, सूर्य-चक्षु, वायु-प्राण, अन्न और जल उदर-आकाश मध्यदेश तथा पृथ्वी चरण इन सात अंगोंवाला, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, मन, बुद्धि अहंकार और चित्त यह उन्नीस हैं मुख जिसके ऐसा, शब्दादि स्थूल विषयोंको भोगने वाला विश्वरूप पुरुष ही प्रथमपाद है ॥ ३ ॥

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पाद ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वप्नस्थानः) स्वप्नावस्था का अधिष्ठाता (अन्तःप्रज्ञः) अन्तःकरणमें हैं प्रज्ञा जिसकी ऐसा (सप्तांगः) सात अंगोंवाला (एकोन-विंशति मुखः) उन्नीस मुखवाला (प्रविविक्तभुक्) सूक्ष्म विषयोंका भोक्ता (तैजसः) तैजस (द्वितीयः) दूसरा (पादः) पाद है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-स्वप्नावस्थाका अभिमानी, बाहरी इन्द्रियोंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखकर केवल मनसे ही ग्रहण करनेयोग्य विषय को जाननेवाला मनमें विलीनहुए जाग्रत् अवस्थाके सात अंगोंवाला मनमें विलीनहुए जाग्रत् अवस्थाके उन्नीस मुख

वाला और अन्तःकरणकी वासनारूप सूक्ष्म विषयों का भोक्ता तैजस अर्थात् तेजोनामक विषयशून्या वासनामयी प्रज्ञामें जो विषयीरूपसे वर्त्तमान रहता है वह दूसरा पाद है ॥ ४ ॥

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत् सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्र) जिस अवस्थामें (सुप्तः) सोयाहुआ (कञ्चन) किसी (कामम्) कामको (न) नहीं (कामयते) चाहता है (कञ्चन) किसी (स्वप्नम्) स्वप्नको (न) नहीं (पश्यति) देखता है, (तत्) वह (सुषुप्तम्) सुषुप्तावस्था है (सुषुप्तस्थानः) सुषुप्ति अवस्थाका अधिष्ठाता (एकीभूतः) एकीभूत हुआ (प्रज्ञानघनः) सकल ज्ञानोंका समूहरूप (एव) ही (आनन्दमयः) आनन्दरूप (हि) क्योंकि (आनन्दभुक्) आनन्दका भोक्ता है (चेतोमुखः) बोध ही जिसके अनुभव का द्वार है, ऐसा (प्राज्ञः) विशेष प्रज्ञावाला (तृतीयः) तीसरा (पादः) पाद है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)–जिस अवस्थामें सोया हुआ होकर किसी पदार्थको चाहना नहीं करता है और कोई स्वप्न भी नहीं देखता है वह गाढ़ निद्रा सुषुप्ति कहाती है उस सुषुप्ति अवस्थाका अधिष्ठाता,

भून अर्थात्–जाग्रत् और स्वप्न अवस्था में भिन्न २ रूप से अनुभव किया हुआ सकल प्रपञ्चरूप विश्व जिसमें एकीभूत होजाता है प्रज्ञानघन अर्थात् जाग्रत् स्वप्नअवस्थाकी नानाप्रकारकी वस्तुओंका नानाप्रकारका ज्ञान घना सा होकर जिसमें रहता है, दुःखके न होनेसे आनन्दमय अतएव आनन्दका भोक्ता और चेतोमुख अर्थात् अज्ञानका आवरण होतेहुये भी अन्य आवरणोंकेविलीन होजाने से कुछ एक स्वरूपका आनन्दस्फुरणरूप ज्ञान ही है मुख कहिये आनन्दभोगका द्वार जिसका ऐसा प्राज्ञ कहिये विषयोंमें से निर्लिप्त स्वरूपको जाननेवाला तीसरा पाद ॥ ५ ॥

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥ ६॥

अन्वय और पदार्थ–(एषः) यह (सर्वेश्वरः) सबका ईश्वर (एषः) यह (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ (एषः) यह (अन्तर्यामी) अन्तर्यामी (एषः) यह (सर्वस्य) सबका (योनिः) उत्पत्तिस्थान (हि) निश्चय (भूतानाम्) सकल भूतोंका (प्रभवाप्ययौ) उत्पत्ति और प्रलयका कारण [अस्ति] है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)–यह ही सबका ईश्वर है, यह ही सर्वज्ञ है यह ही अन्तर्यामी है और यह ही सबका उत्पत्तिस्थान है क्योंकि–सकल भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय इससे ही होता है ॥ ६ ॥

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिंत्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अन्तःप्रज्ञम्) स्वप्नावस्था के अधिष्ठाताको (न) नहीं, (बहिःप्रज्ञम्) जाग्रत् अवस्था के अधिष्ठाता को (न) नहीं, (उभयतःप्रज्ञम्) दोनोंके बीच अवस्थाके अधिष्ठाताको (न) नहीं, (प्रज्ञानघनम्) प्रज्ञानघन को (न) नहीं, (प्रज्ञम्) द्वैतभावके ज्ञानसे युक्तको (न) नहीं, (अप्रज्ञम्) अचेतनको (न) नहीं। [किन्तु] परन्तु (अदृष्टम्) अदृष्ट (अव्यवहार्यम्) व्यवहारसे पर (अग्राह्यम्) अग्राह्य (अलक्षणम्) अनुमानमें न आनेवाले (अचिन्त्यम्) अचिन्त्य (अव्यपदेश्यम्) अनिर्वचनीय (एकात्मप्रत्ययसारम्) एकही आत्मा है इस विश्वासके विषय (प्रपञ्चोपशमम्) विषयातीत (शांतम्) शान्त (शिवम्) मंगलरूप (अद्वैतम्) निर्विशेष अद्वितीय को (चतुर्थम्) चौथापाद (मन्यंते) मानते हैं (सः) वह आत्मा है (सः) वह (विज्ञेयः) विशेषरूपसे जानने योग्य है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)—स्वप्नावस्था के अधिष्ठाता को नहीं,

जाग्रत् अवस्थाके अधिष्ठाताको नहीं, इन दोनोंके बीचकी अवस्थाके अधिष्ठाताको नहीं, सुषुप्ति अवस्थाके अधिष्ठाता प्रज्ञानघनको नहीं, द्वैतभावके ज्ञानसे युक्त प्रज्ञको नहीं, किन्तु जो देखनेमें नहीं आसकता जो विषय न होने के कारण व्यवहारमें नहीं आसकता अतएव जो कर्मेंद्रियोंसे ग्रहण नहीं किया जासकता, जिसका अनुमान नहीं होसकता, अत एव जो अचिन्त्य है, अनिर्वचनीय है, एकात्म प्रत्ययसार है अर्थात् जाग्रत् आदि सकल अवस्थाओंमें एक यह आत्मा ही है ऐसे विश्वासका विषय है, जो रूप रस आदि पांच विषयोंसे पर है, जो राग-द्वेष आदि रहित शान्त है, जो मंगलरूप है और जो निर्विशेष अद्वितीय चेतनपदसे कहा जासकता है, उसको ही तीनों पादोंकी अपेक्षासे कल्पना किया हुआ चौथा पाद, ज्ञानी पुरुष मानते हैं, वह ही सबका आत्मा है और मुमुक्षुओंको चाहिये कि—उस को ही आत्मस्वरूप जानें ॥ ७ ॥

सोयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥८॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (अध्यक्षरम्) ॐ इस अक्षरसे वर्णन किया जानेवाला है (ॐकारः) ॐकार (अधिमात्रम्) मात्राओंपर अधिकार रखनेवाला है (पादाः) पाद

(मात्राः) मात्रा हैं (अकारः) अकार (मात्राः) मात्रा (च) भी (पादाः) पाद हैं ॥ ८ ॥

(भावार्थ)—वह ऊपर वर्णन कियाहुआ चार पादवाला आत्मा ही ॐ इस अक्षरसे वर्णन किया जाता है और वह ॐकार ही आगे कही हुई मात्राओं पर अधिकार जमाए हुए है आत्माके जो पाद कह आये हैं वह ही ॐकारकी मात्रा हैं और ॐकारकी अकार उकार, मकार यह मात्राही आत्माके पादहैं८

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ–(आप्तेः) व्याप्तिके कारण (वा) वा (आदिमत्वात्) आदिवाला होनेसे (जागरितस्थानः) जाग्रत् अवस्थाका अधिष्ठाता (वैश्वानरः) विश्वरूप (अकारः) अकार (प्रथमा) पहिली (मात्रा) मात्रा है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (सः) वह (वै) निश्चय (ह) प्रसिद्ध (सर्वान्) सब (कामान्) कामोंको (आप्नोति) पाता है (आदिः) पहिला (च) और (भवति) होता है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)–जाग्रत् अवस्थाका अभिमानी विश्वरूप पुरुष, अकाररूप पहिली मात्रा है, क्योंकि–जैसे अकारसे सब वाक्य व्याप्त हैं तैसे ही विश्व रूप वैश्वानरसे सब जगत् व्याप्त होरहा है, और जैसे

अकार सब वर्णोंका आदि है तैसे ही वैश्वानर सब पादोंकी आदि है, इस समताके कारण ही अकार और वैश्वानरकी एकता है, जो इस तत्त्वको जानता है वह ओंकारके द्वारा आत्मतत्त्वकी उपासना करता हुआ सकल इच्छित पदार्थोंको पाता है और महान् पुरुषोंमें प्रथम गिनने योग्य होता है ॥ ९ ॥

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥

अन्वय और पदार्थ-(उत्कर्षात्) उत्कृष्ट होनेसे (वा) या (उभयत्वात्) मध्यवर्त्ती होनेसे (उकारः) उकार (स्वप्नस्थानः) स्वप्नका अधिष्ठाता (तैजसः) तैजस (द्वितीया) दूसरी (मात्रा) मात्रा है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता [सः] वह (वै) निश्चय (ह) प्रसिद्ध (ज्ञानसन्ततिम्) ज्ञान-परम्पराको (उत्कर्षति) बढ़ाता है (समानः च) समदृष्टि भी (भवति) होता है (अस्य) इसके (कुले) कुलमें (अब्रह्मवित्) ब्रह्मका न जाननेवाला (न) नहीं (भवति) होता है ॥ १० ॥

भावार्थ-जैसे अकारसे उकार उत्कृष्ट है और जैसे उकार अकारतथा मकारके मध्यमें रहनेवाला है तैसे ही तैजस, वैश्वानर और प्राज्ञके मध्यमें स्थित रहता है और वैश्वानरकी अपेक्षा उत्कृष्ट है, इसप्रकार तैजस और उकारकी समता होनेसे स्वप्न अवस्थाका

अभिमानी तैजस उकाररूप दूसरी मात्रा है, जो ऐसा जानता है वह अपनी ज्ञानपरंपराको बढ़ाता है, शत्रु मित्रमें समान दृष्टि रखता है, और उसके कुल में कोई ऐसा नहीं होता जो कि ब्रह्मज्ञानी न हो १०

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा । मिनोतीहावा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मितेः) परिमाणके कारण (वा) या (अपीतेः) एक ही भावके कारण (सुषुप्तस्थानः) सुषुप्ति अवस्थाका अधिष्ठाता (प्राज्ञः) प्राज्ञ (मकारः) मकार (तृतीया) तीसरी (मात्रा) मात्रा है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है [सः] वह (वै) निश्चय (ह) प्रसिद्ध (इदम्) इस (सर्वम्) सबको (मिनोति)यथार्थरूपसे जानता है (अपीतिः) जगत्का कारणात्मा (च) भी (भवति) होता है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-सुषुप्तिका अभिमानी प्राज्ञ तीसरी मात्रा मकार है, इसका कारण परिमाण और एकीभाव है, अर्थात् सुषुप्तिके समय वैश्वानर और तैजस प्राज्ञमें प्रवेश करते हैं और जाग्रत् अवस्थामें उसमेंसे बाहर निकल आते हैं, इस प्रवेश करने और निकलनेके द्वारा प्राज्ञ मानो वैश्वानर और तैजसका परिणाम करता है, तैसे ही ॐकारके उच्चारण

के अन्तमें अकार और उकार, मकारमें प्रवेश करते हैं और उच्चारणके आरम्भमें फिर बाहर निकल आते हैं यहां भी परिमाण करनेकी समता है तथा जैसे सुषुप्तिमें वैश्वानर और तैजस प्राज्ञमें एकीभूत होजाते हैं तैसे ही ॐकारका उच्चारण करनेके अन्तमें अकार और उकार मानो मकारमें एकीभूत होजाते हैं, इस तुल्यतासे भी प्राज्ञ और मकारकी एकता है, जो ऐसा जानता है वह निश्चय ही इस सब जगत्को यथार्थरूपसे जानता है और जगत्के कारणके साथ एकीभूत होजाता है ॥ ११ ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव सम्विशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अमात्रः) मात्रा रहित (चतुर्थः) चौथा (अव्यवहार्यः) व्यवहारमें न आनेवाला (प्रपञ्चोपशमः) प्रपञ्चके उपशमवाला (शिवः) मङ्गलरूप (अद्वैतः) अद्वैत (एवम्) ऐसा (ओंकारः, एव) ओंकार ही (आत्मा) आत्मा है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है [सः] वह (आत्मना) आत्मस्वरूप करके (आत्मानम्) परआत्माके प्रति (सम्विशति) प्रवेश करता है ॥१२॥

(भावार्थ)—जिसकी मात्रा नहीं है जो तुरीय पाद आत्मस्वरूप ही है, जो व्यवहारका विषय नहीं

है, जो पांचों विषयोंसे पर है, ऐसा मङ्गलस्वरूप और अद्वैत ओंकार ही आत्मा है, जो ऐसा जानता है वह परमात्मामें प्रवेश करता है ॥ १२ ॥

इति श्री अथर्ववेदीय माण्डूक्य उपनिषद्का मुरादाबाद निवासी भारद्वाजगोत्र-गौड़वंशवर्षीयपण्डितभोलानाथात्मज सनातनधर्मपताकासम्पादक पं० कु० रामस्वरूपशर्मा कृत अन्वय पदार्थ और भाषा भाष्यार्थ समाप्त

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

—o—

ॐ तत्सत्

कृष्णयजुर्वेदीया-

तैत्तिरीय-उपनिषद्

शिक्षाध्यायरूपा-प्रथमा वल्ली

याज्ञवल्क्यऋषि आदि बालक विद्यार्थी ब्रह्मचर्य को धारण करते हुए, वेदव्यासजीके शिष्य वैशम्पायन ऋषिके समीप यजुर्वेद पढ़ते थे, उन वैशम्पायन ऋषिको किसी निमित्तसे ब्रह्महत्या लग गई, उसका निवारण करनेके निमित्त वैशम्पायन ऋषिने-याज्ञवल्क्य से अन्य छोटी अवस्थावाले विद्यार्थियोंसे कहा कि-तुम नियमके साथ प्रायश्चित्तकर्मका अनुष्ठान करो, उस समय उत्तम अधिकारी युवावस्थावाले याज्ञवल्क्यने मुनिसे कहा कि-हे गुरो! इस कठिन कार्यके करनेमें इन छोटे२ बालकोंको कठिनता पड़ेगी, मेरी अवस्था अधिक और शरीर दृढ है, इसलिये मैं अकेला ही आपकी ब्रह्महत्याको दूर करनेका प्रायश्चित्त कर दूँगा. अतः आप यह कार्य करनेकी मुझको आज्ञा दीजिये यह सुनकर ब्रह्महत्याके कारण जिनकी मति उलटी होरही थी ऐसे वैशम्पायन मुनि कहने लगे कि-अरे याज्ञवल्क्य! तुझको बड़ा घमण्ड है, तू अपनेको बड़ा समझता हुआ इन ब्राह्मणकुमारों

का तिरस्कार करता है। इसकारण तू मुझसे पढ़ी हुई वेदविद्याको त्यागदे,नहीं तो मैं तुझको मरणका शाप देदूँगा।यह सुनकर याज्ञवल्क्यने शापके भयसे उस पढ़ीहुई वेदविद्याको योगशक्तिसे इसप्रकार त्याग दिया कि-जैसे हाथी पिये हुये जलको उगल कर बाहर डाल देता है,तब उस विद्याको वैशम्पायनकी आज्ञासे अन्य ब्राह्मणकुमारोंने त्तित्तिरिवृत्तिरूप योगक्रियासे इसप्रकार ग्रहण करलिया जैसे तीतर पत्ती वमनकी हुई वस्तुको ग्रहण कर लेते हैं, तबसे इस वेदविद्याका नाम तैत्तिरीय हुआ और उसको ग्रहण करनेवाले ब्राह्मण तैत्तिरीय शाखावाले कहलाते हैं तथा उस शाखाका यह उपनिषद् भी तैत्तिरीयोपनिषद् कहलाता है-

॥ हरिः ॥ ॐ ॥ शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तार । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अन्वय और पदार्थ-(मित्रः) मित्र (नः) हमारे अर्थ (शम्) कल्याणकारी (वरुणः) वरुण (नः)

हमारे अर्थ (शम्) कल्याणकारी (अर्यमा) अर्यमा (नः) हमारे अर्थ (शम्) कल्याणकारी (इन्द्रः) इन्द्र (बृहस्पतिः) बृहस्पति (नः) हमारे अर्थ (शम्) कल्याणकारी (उरुक्रमः) बड़े २ चरणरखनेवाला (विष्णुः) विष्णु (नः) हमारे अर्थ (शम्) कल्याणकारी (भवतु) हो (ब्रह्मणे) व्यापक ब्रह्म के अर्थ (नमः) नमस्कार है (वायो) हे वायुदेव (ते) तेरे अर्थ (नमः) नमस्कार है (त्वम्-एव) तू ही (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (ब्रह्म) ब्रह्म (असि) है (त्वाम्-एव) तुझको ही (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (ब्रह्म) ब्रह्म (वदिष्यामि) कहूंगा (ऋतम्) निश्चयात्मक बुद्धिरूप (वदिष्यामि) कहूँगा (सत्यम्) सत्यरूप (वदिष्यामि) कहूँगा (तत्) वह ब्रह्म (माम्) मुझको (अवतु) रक्षा करे (तत्) वह (वक्तारम्) वक्ताको (अवतु) रक्षा करे (माम्) मुझको (अवतु) रक्षा करे (वक्तारम्) वक्ताको (अवतु) रक्षा करे (शान्तिः) आध्यात्मिक विघ्न शान्त हों (शान्तिः) आधिदैविक विघ्नोंकी शांति हो (शान्तिः) आधिभौतिक विघ्नोंकी शांति हो

(भावार्थ)-प्राणवृत्ति और दिनका अभिमानी मित्रदेवता हमको कल्याणकारी हों, अपानवृत्ति और रात्रिका अभिमानी वरुण देवता हमारा कल्याण करै, चक्षु और आदित्यका अभिमानी अर्यमा देवता हमको सुखदेय, बलका अभिमानी इन्द्र

देवता और वाणी तथा बुद्धिका अभिमानी बृहस्पति-देवता हमारा कल्याणकारी हो, चरणोंको बढ़ाकर रखनेवाला उरुक्रम विष्णुदेवता हमारा कल्याणकारी हो, ब्रह्मरूप वायुके अर्थ नमस्कार है हे वायो! तेरे अर्थ नमस्कार है, तू ही इन्द्रियोंका गोचर प्रत्यक्ष ब्रह्म है, तुझको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा ऋत कहिये जैसे शास्त्रमें कहा है, और जैसे करना चाहिये तैसा ही निश्चित अर्थ तेरे अधीन है, अतः तुझको ही ऋत कहूंगा, वाणी और शरीरसे सम्पादन होनेवाला सत्य तेरे आधीन है, इसकारण तुझको ही सत्य कहूंगा, वह सर्वात्मा वायुनामक ब्रह्म मेरी रक्षा करै मुझको उपदेश देनेवाले आचार्यकी रक्षा करैं मेरी रक्षा करै, वक्ताकी रक्षा करै, आत्मसम्बन्धी अध्यात्मिक विघ्नोंकी शांति हो, पृथिवी आदि भूतजनित आधि भौतिक विघ्नोंकी शान्ति हो और इन्द्र, वायु आदि देवताओंके किये हुए आधिदैविक विघ्नोंकी भी शांति हो ॥ २ ॥

ओं शिक्षां व्याख्यास्यामः । वर्णः स्वरः मात्रा बलम् साम सन्तान ः। इत्युक्तः शिक्षाध्यायः ॥२॥

अन्वय और पदार्थ-(शिक्षाम्) शिक्षाको (व्याख्यास्यामः) भली प्रकार कहेंगे (वर्ण) वर्ण (स्वरः) स्वर (मात्राः) मात्रा (बलम्) बल (साम)साम (सन्तानः) सन्धि (इति) इसप्रकार (शिक्षाध्यायः) शिक्षाका अध्याय (उक्तः) कहा है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-अब वेदका उच्चारण करने में वर्णस्वर

आदिके विवेकरूप शिक्षाको कहेंगे आकार आदि वर्ण उदात्त आदि कण्ठकी ध्वनिरूप स्वर, हृस्व-दीर्घ, प्लुतरूप मात्रा, शब्दोंके उच्चारण में प्रयत्नरूप बल, मध्यमवृत्ति से वर्णोंके उच्चारणकी समतारूप साम और वर्णोंका संयोगरूप सन्तान यह शिक्षाध्याय कहा है ॥ २ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः

सह नौ यशः । सह नौ ब्रह्मवर्चसम् । अथातः संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः । पञ्चस्वधिकरणेषु । अधिलोकमधिज्योतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम् । ता महासंहिता इत्याचक्षते । अथाधिलोकम् । पृथिवी पूर्वरूपम् । द्यौरुत्तररूपम् । आकाशः सन्धिः वायुः सन्धानम् । इत्याधिलोकम् । अथाधिज्योतिषम् । अग्निः पूर्वरूपम् । आदित्य उत्तररूपम् । आपः सन्धिः वैद्युतः सन्धानम् इत्याधिलोकम् । अथाधिज्योतिषम् । अथाधिविद्यम् । अग्निः पूर्व रूपम् । आदित्य उत्तररूपम् । आपः सन्धि वैद्युतः सन्धानम् इत्याधिज्योतिषम् । अथाधिविद्यम् । आचार्यः पूर्वरूपम् ॥ ४ ॥ अन्तेवास्युत्तररूपम् । विद्या सन्धिः । प्रवचनꣳसन्धानम् ।

इत्यधिविद्यम् । अथाधिप्रजम् माता पूर्वरूपम् पितोत्तररूपम् प्रजा सन्धिः प्रजनꣳसन्धानम् इत्यधिप्रजम् ॥५॥ अथाध्यात्मम् । अधरा हनुः पूर्वरूपम् । उत्तरा हनुरुत्तररूपम् । वाक् सन्धिः। जिव्हा सन्धानम्। इत्यध्यात्मम् । इतीमा महासꣳहिताः । य एवमेता महासꣳहिताः व्याख्याता वेद । सन्धीयते प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन सुवर्गेण लोकेन ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(नौ) हम दोनोंका (यशः) यश (सह) साथ [अस्तु] हो (नौ) हम दोनों का (ब्रह्मवर्चसम्) ब्रह्मतेज (सह) साथ [अस्तु] हो (अथ) अनन्तर (अतः) यहां से (संहितायाः) संहिताके (उपनिषदम्) उपनिषद् को (पञ्चसु) पांच (अधिकरणेषु) अधिकरणों में (व्याख्यास्यामः) विशेषरूपसे वर्णन करेंगे (अधिलोकम्) लोकसम्बन्धी (अधिविद्यम्) विद्यासम्बन्धी (अधिप्रजम्) प्रजासम्बन्धी (अध्यात्मम्) आत्मसम्बन्धी (ताः) तिनको (महासंहिता इति) महासंहिता इस नामसे (आचक्षते) कहते हैं (अथ) अनन्तर (अधिलोकम्) लोक-सम्बन्धी उपासना [कथ्यते] कहीजाती है (पृथिवी) पृथिवी (पूर्वरूपम्) पूर्ववर्ण है (द्यौः) स्वर्ग (उत्तररूपम्) उत्तररूप है (आकाशः) आकाश (सन्धिः) संधि

है (वायुः) वायु (सन्धानम्) संयोग करनेवाला है (इति) इसप्रकार (अधिलोकम्) लोकसम्बन्धी उपासना है। (अथ) अब (अधिज्योतिषम्) ज्योतिः सम्बन्धी ध्यान [कथ्यते] कहाजाता है (अग्निः) अग्नि (पूर्व,रूपम्) पूर्वरूप है (आदित्यः) सूर्य (उत्तर-रूपम्) उत्तररूप है (आपः) जल (संधिः) मिलनेका स्थान है (वैद्युतः) विजली (सन्धानम्) मिलानेवाली है (इति) इसप्रकार (अधिज्योतिषम्) ज्योति सम्बन्धी उपासना है (अथ) अब (अधि-विद्यम्) विद्यासम्बन्धी उपासना[कथ्यते] कहीजाती है (आचार्यः) आचार्य (पूर्वरूपम्) पूर्वरूप है ४ (अन्तेवासी) शिष्य (उत्तररूपम्) उत्तररूप है (विद्या) विद्या (सन्धिः) संयोगस्थान है (प्रवच-नम्) प्रश्नोत्तररूप भाषण (सन्धानम्) संयोगका कारण (इति) इस प्रकार (अधिविद्यम्) विद्या-संबन्धी ध्यान है (अथ) अब (अधिप्रजम्) सं-तानसंबन्धी उपासना [कथ्यते] कहीजाती है (माता) माता (पूर्वरूपम्) पूर्वरूप है (पिता) पिता (उत्तररूपम्) उत्तररूप है (प्रजा) सन्तान (सन्धिः) संयोगस्थान है (प्रजननम्) संतान उ-त्पन्न करना (सन्धानम्) संयागका कारण है (इति) इसप्रकार (अधिप्रजम्) सन्धानसम्बन्धी उपासना है ॥ ५ ॥ (अथ) अब (अध्यात्मम्) देहसम्बन्धी उपासना [कथ्यते] कही जाती है (अधरा हनुः)

नीचेका ओठ (पूर्वं रूपम्) पूर्वरूप है (उत्तरा हनुः) ऊपरका होठ (उत्तररूपम्) उत्तररूप है (वाक्) वाणी (सन्धिः) संयोगका स्थान है (जिह्वा) जीभ (सन्धानम्) संयोगका कारण है (इति) इस प्रकार (अध्यात्मम्) देहसंबन्धी उपासना कही (इति) इसप्रकार (इमाः) यह (महासंहिताः) महासंहिता हैं (एताः) इन (व्याख्याताः) व्याख्यान की हुई (महासंहिताः) महासंहिताओंको (यः) जो (वेद) जानता है (प्रजया) सन्तान करके (पशुभिः) पशुओं करके (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज करके (अन्नाद्येन) अन्न धन आदि करके (सुवर्गेण-लोकेन) स्वर्गलोक करके (सन्धीयते) संयुक्त होता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-लोकमें हम दोनों गुरु शिष्योंका यश और ब्रह्मतेज साथ हो। अब अध्ययनकी शिक्षा पालेने पर भी, मन ध्यानके बिना आत्माको ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होसकता, इसकारण ज्ञानके पांच आश्रमोंमें वेदकी उपासनाको विशेषरूपसे कहेंगे यथा,-सकल लोकोंके अभिमानी देवताओंका ध्यान करनारूप उपासना, सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिर्मण्डली के अभिमानी देवताओंका ध्यानरूप उपासना, विद्या के साथ संबन्ध रखनेवाले आचार्य वा विद्याके अभिमानी देवताओंका ध्यानरूप उपासना, संतान सम्बन्धी पितरोंका ध्यानरूप वा पितृदेवताओंका ध्यानरूप उपासना और भोक्ताके आश्रयसे वर्तने

वाले जिह्वा आदिके अभिमानी देवताओंकी ध्यान रूप देहसम्बन्धी उपासना, इन पांच प्रकारके ध्यान-रूप उपासनाओंको वेदवेत्ता महासंहिता कहते हैं अब लोकसम्बन्धी उपासनाको कहते हैं कि-संहिता का पूर्ववर्ण पृथिवी हैं स्वर्गलोक उत्तर वर्ण है, और आकाश उन दोनोंका सन्धि कहिये मध्यदेश है, ऐसी भावना करै। वायु संयोगका कारण है इसप्रकार यह लोकसम्बन्धी उपासना कही। अब ज्योतिर्मण्डलसम्बन्धी उपासना कहते हैं कि-अग्नि पूर्वरूप है, सूर्य उत्तररूप, है जल संयोगस्थान है और विजली संयोगकी करनेवाली है, इसप्रकार अधिज्योतिष उपासना कही अब विद्यासंबन्धी उपासना कहते हैं कि-आचार्य पूर्वरूप हैं शिष्य उत्तररूप है विद्या संयोगस्थान है और प्रवचन कहिये प्रश्नोत्तररूप भाषण संयोगका कारण है, यह अधिविद्य उपासना कही। अब सन्तानसंबन्धी उपासना कहते हैं कि-माता पूर्वरूप है पिता उत्तररूप है सन्तान संयोगस्थान है और ऋतुकालमें स्त्रीको यथासमय वीर्यदान देकर सन्तान उत्पन्न करना संयोगका कारण है, यह सन्तान-संबन्धी ध्यान कहा। अब देहसम्बन्धी ध्यान कहते हैं कि नीचेका होठ पूर्वरूप है ऊपरका होठ उत्तर-रूप है, वाणी संयोगस्थान है और जीभ संयोगका कारण है, इसप्रकार अध्यात्म उपासना कही। इन सबको ही महासंहिता कहते हैं, इन वर्णन कीहुई महासंहिताओंको जो इस रीतिसे जानता है अथवा

इनकी उपासना करता है वह सन्तान गौ घोड़े आदि पशु, ब्रह्मतेज, अन्न आदि और स्वर्गलोक को पाता है ॥ ३—६ ॥

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः । छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव । स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु । अमृतस्य देव धारणो भूयासम् । शरीरं मे विचर्षणम् जिव्हा मे मधुमत्तमा । कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम् ब्राह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः । श्रुतं मे गोपाय । आवहन्ति वितन्वाना ॥७॥ कुर्वाणा चीरमात्मनः । वासाꣳसि मम गावश्च । अन्नपाने च सर्वदा ततो मे श्रियमावह । लोमशो पशुभिः सह स्वाहा आमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा विमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । प्रमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। दमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ ८ ॥ यशोजनेऽसानि स्वाहा । श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा तं त्वा भगप्रविशानि स्वाहा। समा भग प्रविश स्वाहा तस्मिंस्तु सहस्रशाखे निभगाऽहं त्वयि, मृजे स्वाहा। यथाऽऽपः प्रवता यन्ति । यथा मासा अहर्जरम् । एवं मां ब्रह्मचारिणः धातरायन्तु

सर्वतः स्वाहा प्रतिवेशोऽसि प्रमा भाहि प्रमा पद्यस्व ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(य) जो (छन्दसाम्) वेदों में (ऋषभः) श्रेष्ठ (विश्वरूपः) विश्वरूप है (अध्यमृतात्) अमृतत्वके हेतु (छन्दोभ्यः) वेदों से (सम्बभूव) उत्पन्न हुआ (सः) वह (इन्द्रः) सकल ऐश्वर्यवाला (मा) मुझको (मेधया) प्रज्ञा करके (स्पृणोतु) बलवान् करै (देव) हे देव (अमृतस्य) ब्रह्मज्ञानका (धारणः) धारण करनेवाला (भूयासम्) होऊँ (मे) मेरा (शरीरम्) शरीर (विचर्षणम्) योग्य [भवतु] हो (मे) मेरी (जिह्वा) जीव (मधुमत्तमा) अति मधुर बोलनेवाली [भूयात्] हो (कर्णाभ्याम्) कानों से (भूरि)बहुत (विश्रुवम्) सुनूँ (मेधया) प्रज्ञा से (पिहितः) आच्छादित (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (कोशः)कोश(असि) है (मे) मेरे (श्रुतम्) सुनेहुए को (गोपाय) रक्षा कर (आत्मनः) मेरे अपने (वासांसि)वस्त्रों को (मम) मेरी (गावः) गौओं को (च) भी (अन्नपाने) अन्नपान को (च) भी (सर्वदा) सदा (अचिरम्)शीघ्र (कुर्वाणा) करती हुई (आवहन्ती) लाती हुई (वितन्वाना) बढ़ातीहुई [ताम्] उस (पशुभिःसह) पशुओं करके सहित (लोमशाम्) लोमवाली (श्रियम्) लक्ष्मी को (ततः) तदनन्तर (मे) मेरे अर्थ (आवह) ला (स्वाहा)

इस निमित्त यह आहुति देता हूँ (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी (मा) मेरे प्रति (आयन्तु) आवैं (स्वाहा) इस नि० (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी (मा) मत (वियन्तु) वियुक्त हों (स्वाहा) इस नि० (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी (प्रमायन्तु) यथार्थ ज्ञानको पावैं (स्वाहा) इस नि० (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी (दमयन्तु) इन्द्रियोंका दमन करैं (स्वाहा) इस नि० (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी (शमायन्तु) मनका निग्रह करैं (स्वाहा) इस नि० (लोके) लोकमें (यशः) यशवाला (असानि) होऊँ (स्वाहा) इस नि० (वस्यसः) अति धनवान्‌से (श्रेयान्) श्रेष्ठ (असानि) होऊँ (स्वाहा) इस नि० (भग) भगवान् (तम्) तिस (त्वा) तेरे प्रति (प्रविशानि) प्रवेश करूँ (स्वाहा) इस नि० (भग) भगवन् (सः) वह तू (मा) मेरे प्रति (प्रविश) प्रविष्ट हो (स्वाहा) इस नि० (भग) भगवन् (तस्मिन्) तिस (सहस्रशाखे) सहस्रशाखावाले (त्वयि) तेरे विषैं (अहम्) मैं (पापानि) पापों को (निमृजे) धोता हूं (स्वाहा) इस नि० (यथा) जैसे (आपः) जल (प्रवता) ढालू भूमि के द्वारा (यन्ति) बहते हैं (यथा) जैसे (मासाः) महीने (अहर्जरम्) सम्वत्सर को [यन्ति] प्राप्त होते हैं (धातः) हे धातः (एवम्) इसीप्रकार (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी (सर्वतः) सब ओर से (आयन्तु) आवैं (स्वाहा)

इस नि० (प्रतिवेशः) समीप का स्नान (असि) है (मा) मेरे प्रति (प्रभाहि) प्रकाशित हो (मा) मेरे प्रति (प्रपद्यस्व) पहुँच ॥ ७–६ ॥

(भावार्थ)–जो वेदोंमें श्रेष्ठ है, जो सकल वाक्यों में व्याप्त होने से सर्वरूप है और अमरभावके साधक वेदोंसे उत्पन्न हुआ है वह सकल ऐश्वर्यों का स्वामी ॐकार मुझे बुद्धि देकर प्रसन्न और समर्थ करै, हे देव ! उस बुद्धिको पाकर मैं अमरभावके हेतु ब्रह्मज्ञानका धारण करनेवाला होऊँ, मेरा शरीर ब्रह्मज्ञानको धारण करने में योग्य होय, मेरी जीभ अतिमधुर बोलनेवाली होय, मैं दोनों कानोंसे बहुत सुनूँ हे ॐकार ! तू परब्रह्म का कोश कहिये म्यान है, क्योंकि जैसे तलवार म्यानमें रहती है तैसे ही परब्रह्म तुझमें रहता है, मानो तू ब्रह्मकी प्रतिमा कहिये प्रतीक है इस कारण तुझमें ब्रह्म प्राप्त होता है वह ब्रह्मका कोश तू लौकिकबुद्धि से ढका हुआ है अर्थात् मन्दबुद्धि पुरुष तेरे सद्भावको नहीं जानते, ऐसा तू मेरे सुनेहुए आत्मज्ञान आदिकी रक्षा कर, अर्थात्–ऐसी कृपा कर कि–मैं आत्मज्ञानको न भूलूँ । यह बुद्धिकी कामनावालोंके निमित्त जप करने के मन्त्र कहे । अब लक्ष्मीकी इच्छावाले पुरुषोंके निमित्त हवन करने के मन्त्र कहते हैं कि–मेरे वस्त्र, गौ, अन्न, पान आदिका सदा निर्वाह करनेवाली मेरे निमित्त इन सब वस्तुओंको लाने और बढ़ानेवाली जो लक्ष्मी है तिस बकरी भेड़ आदि तथा घोड़ा आदि अन्य प-

शत्रुओं सहित लक्ष्मी को, बुद्धि के बढ़ाने के अनन्तर मेरे निमित्त लाओ, इसी निमित्त मैं यह आहुति देता हूँ। ब्रह्मचारी मेरे समीप आवे,इसी निमित्त मैं यह आहुति देता हूं। ब्रह्मचारी मुझसे अलग न हों, इसी नि० ब्रह्मचारी यथार्थ ज्ञान पावैं, इसी निमि० ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय हों, इसी नि०। ब्रह्मचारी मनको वशमें करैं, इसी निमित्त० मैं इस लोक में यशस्वी होऊं, इसी०। मैं अति धनवानोंसे भी धनवान् होऊं, इसी०। हे भगवन्! तिस ब्रह्मके भंडारूप तुझ में प्रवेश करूं, इसी०। हे भगवन्! तुम मुझमें प्रवेश करो, इसी०। हे भगवन्! अनेक भेद वाले तुम्हारे विषै मैं अपने पापकर्मों को धोता हूं, इसी०। हे सबके विधातः! जैसे जल नीची भूमि की ओर को जाते हैं और जैसे महीने सबको प्रति दिन जीर्ण करनेवाले वर्ष में जाते हैं, तैसे ही ब्रह्मचारी सब दिशाओं से मेरी ओर को आवैं, इसी० तुम समीपके घर की समान शीघ्र ही पाप और दुःख दूर करके भक्तोंको आश्रय देते हो, इसप्रकार मुझको ज्ञानरूपी प्रकाश से युक्त करो और अपने में तन्मय करो ॥७–६॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः।

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः तासामुह स्मैतां चतुर्थीम्।माहाचमस्यःप्रवेदयते।मह इति तद्ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः

भूरिति वा अयं लोकः । भुव इत्यन्तरिक्षम् । सुव इत्यसौ लोकः ॥ १० ॥ मह इत्यादित्यः । आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते । भूरिति वा अग्निः । भुव इति वायुः । सुवरित्यादित्यः मह इति चन्द्रमाः । चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतींषि महीयन्ते । भूरिति वा ऋचः । भुव इति सामानि । सुवरिति यजूंषि ॥ ११ ॥ मह इति ब्रह्म ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते भूरिति वै प्राणः । भुव इत्यपानः । सुवरिति व्यानः । मह इत्यन्नम् अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः । ता यो वेद स वेद ब्रह्म सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भूर्भुवः सुवः इति) भूः भुवः स्वः इसप्रकारकी (एताः) यह (तिस्रः) तीन (व्याहृतयः) व्याहृतियें (वै) प्रसिद्ध हैं (तासाम् उ) उनमें ही (ह) प्रसिद्ध (एताम्) इस (चतुर्थीम्) चौथी को (माहाचमस्यः) महाचमस्य ऋषि का पुत्र (महइति) मह इस नामसे (प्रवेदयते स्म) जानता हुआ (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म है (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (अन्याः) अन्य (देवताः)

देवता (अङ्गानि) अङ्ग हैं। (भूः इति) भू इस नाम वाला (वै) निश्चय (अयम्) यह (लोकः) लोक है (भुवः इति) भुवर् इस नाम वाला (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक है (सुव इति) स्वर इस नामवाला (असौ) यह (लोकः) स्वर्गलोक है (मह इति) महर् यह (आदित्यः) सूर्यलोक है (आदित्येन) सूर्यसे (सर्वे-वाव) सबही (लोकाः) लोक(महीयन्ते) वृद्धिको प्राप्त होते हैं (भूः इति) भू यह (अग्निः) अग्नि है (भुवः इति) भुवर् यह (वायुः) वायु है (मह इति) महर् यह (चन्द्रमाः) चन्द्रमा है (चन्द्र-मसा-वाव) चन्द्रमा करके ही (सर्वाणि) सब (ज्यो-तींषि) तारागण आदि (महीयन्ते) वृद्धिको प्राप्त होते हैं (भूः इति) भू यह (वै) निश्चय (ऋचः) ऋग्वेद है (भुवःइति) भुवर् यह (सामानि) सामवेद है (सुवर् इति) स्वर् यह (यजूंषि) यजुर्वेद है ॥ ११ (महः इति) महर् यह (ब्रह्म) ओँकार है (ब्रह्मणा) ओँकार करके (सर्वे वाव) सब ही (वेदाः) वेद (महीयन्ते) वृद्धिको प्राप्त होते हैं (भूः इति) भू यह (वै) निश्चय (प्राणः) प्राण है (भुवः इति) भुवर् यह (अपानः) अपान है (सुवर् इति) स्वर यह (व्यानः) व्यान है (महः इति) महर यह (अन्नम्) अन्न है (अन्नेन) अन्न करके (सर्वे-वाव) सब ही (प्राणाः) प्राण (महीयन्ते) वृद्धिको प्राप्त होते हैं (वै) निश्चय (ताः) वह (एताः) यह (चतस्रः) चार

(व्याहृतयः) व्याहृतियें (चतस्रः चतस्रः) चार २ (चतुर्धा) चार प्रकारकी [सन्ति] हैं (यः) जो (ताः) उनको (वेद) जानता है (सः) वह (ब्रह्म) ब्रह्मको (वेद) जानता है (अस्मै) इसके अर्थ (सर्वे) सब (देवाः) देवता (बलिम्) भेंट को (आवहन्ति) सब ओर से लाते हैं ॥ १०-१२ ॥

(भावार्थ)-अब हृदयमें स्वराज्यफलकी देने वाली व्याहृतिरूप ब्रह्मकी उपासना कहते हैं कि-भूः भुवः, स्वः यह तीन व्याहृति प्रसिद्ध हैं, चौथी व्याहृति महः है इसको महाचमस्य ऋषि के पुत्र माहाचमस्य ने जाना था, यह ब्रह्म है, क्योंकि-महत् है और यह व्याहृति भी महर् है, अन्य देवता इस के अङ्ग हैं भूः प्रसिद्ध यह लोक है, भुवर् अन्तरिक्ष लोक और स्वर् स्वर्गलोक है महर् सूर्यलोक है सूर्यसे ही सब लोक वृद्धि पाते हैं । भूः यह प्रसिद्ध अग्नि है, भुवर् वायु है- स्वर् सूर्य है, और महर् चन्द्रमा है चन्द्रमासे ही सब तारागण आदि ज्योतियें वृद्धि पाती हैं, भूः ऋग्वेद है, भुवर् सामवेद है, स्वर् -यजु र्वेद है और महर् ओँकारब्रह्म है, जिस ओँकारब्रह्म से सब वेद वृद्धि पाते हैं । भू प्राण है, भुवर् अपान है स्वर् व्यान है और महर् अन्न है अन्नसे ही सब प्राण वृद्धि पाते हैं । इसप्रकार भूः भुवर् स्वर् और महर् यह चारों व्याहृतियें एक २ चार २ हो-कर चार प्रकारकी हैं, इस कहे अनुसार इन व्याहृ-

त्तियोंको जो जानता है वह ब्रह्मको जानता है उस को ब्रह्मभावरूप स्वराज्यकी प्राप्ति होने पर सब देवता अङ्गरूप होकर भेंट अर्पण करते हैं १०-१२

इति पञ्चमोऽनुवाकः ।

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः । तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः । अमृतो हिरण्मयः । अन्तरेण तालुके य एष स्तन इवावलम्बते । सेन्द्रयोनिः । यत्रासौ केशान्तो विवर्तते व्यपोह्य शीर्षकपाले भूरित्यग्नौ प्रतिष्ठति । भुव इति वायौ ॥ १३ ॥ सुवरित्यादित्ये । मह इति ब्रह्मणि । आप्नोति स्वाराज्यम् । आप्नोति मनसस्पतिम् । वाक्पति-श्चक्षुष्पतिः श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः एतत्ततो भवति । आकाशशरीरं ब्रह्म । सत्यात्म प्राणारामं मन आनन्दम् । शान्तिसमृद्धममृतम् । इति प्राचीनयोग्योपास्व । १४ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः

अन्वय और पदार्थ-(अन्तर्हृदये) हृदयके भीतर (आकाशः) आकाश है (तस्मिन्) जिसमें (यः) जो (एषः) यह (पुरुषः) पुरुष हैं (सः) वह (मनोमयः) मनोमय है (अयम्) यह (अमृतः) मरणधर्म रहित (हिरण्मयः) प्रकाशमय है (यः) जो (एषः) यह (तालुके अन्तरेण) तालुओं के

मध्यमें (स्तन इव) स्तनकी समान (अवलम्बते) लटकता है (यत्र) जहां (असौ) यह (केशान्तः) केशोंका मूल (विवर्त्तते) विभाग करके रहता है (शीर्षकपाले) मस्तकके कपालोंको (व्यपोह्य) चीरकर [या] जो [विनिर्गता] निकली है (सः) वह (इन्द्रयोनिः) ब्रह्ममार्ग है (भूः-इति-अग्नौ) भू इस व्याहृतिरूप अग्निमें (भुवर्—इति—वायौ) भुवर् इस व्याहृतिरूप वायुमें (स्वर् इति आदित्ये) स्वर् इस व्याहृतिरूप आदित्यमें (महर्—इति—ब्रह्मणि) महर् इस व्याहृतिरूप ब्रह्ममें (प्रतितिष्ठति) स्थित होता है (स्वाराज्यम्) स्वराज्यको (आप्नोति) प्राप्त होता है (मनसस्पतिम्) मनके पतिको(आप्नोति) प्राप्त होता है (वाक्पतिः) वाणीका पति (चक्षुष्पतिः) चक्षुओंका पति (श्रोत्रपतिः) कर्णोंका पति (विज्ञानपतिः) बुद्धियोंका पति (एतत्तदः) सर्वरूप (भवति) होता है (आकाशशरीरम्) आकाशकी समान सूक्ष्मशरीर वाले (सत्यात्म) सत्यस्वरूप (प्राणारामम्) प्राणोंमें रमण करनेवाले (मन आनन्दम्) मन है आनन्दरूप जिसका ऐसे (शान्तिसमृद्धम्) शान्तिसे पूर्ण (अमृतम्) मरण धर्मसे रहित (ब्रह्म) ब्रह्मको (प्राचीनयोग्य) हे प्राचीन योग्य (इति) इसप्रकार (उपास्व) उपासना कर ॥ १३-१४ ॥

(भावार्थ)—प्राणका आश्रय, अनेक नाड़ीरूप

छिद्र, ऊँचे नाल और नीचे मुखवाला कमलके आकार का मांसका पिण्ड हृदय कहाता है उसके भीतर के आकाशमें जिससे पुरुष मनन करता है उक्त मन का अभिमानी मरणधर्मरहित प्रकाशमय पुरुष रहता है, हृदयसे ऊपरको जानेवाली जो सुषुम्नानाड़ी है वह दोनों तालुके मध्यमें जो स्तनकी समान मांसका टुकड़ा लटकता है उसके बीचमेंको आई हुई है, जहाँ यह केशोंकी जड़ विभाग करके रहती है उस मस्तकमेंको आकर मस्तकके दोनों कपालों को भेदकर निकली है, वह सुषुम्ना नाड़ी इन्द्रयोनि कहिये ब्रह्मके स्वरूपको पानेका मार्ग है उस नाड़ीके द्वारा मनोमय आत्माका देखनेवाला विद्वान् ब्रह्मरन्ध्रसे इस लोकका अधिष्ठाता जो भूर्व्याहृतिरूप महद्ब्रह्म अंगस्वरूप अग्नि है उसमें प्रविष्ट होता है अर्थात् अग्निरूपसे भूलोकको पाता है, फिर भुवर्व्याहृतिरूप वायुमें स्थित होता है, फिर स्वर्व्याहृतिरूप सूर्यमें स्थित होता है फिर महर् इस अंगी ब्रह्मस्वरूप चौथी व्याहृतिरूप ब्रह्ममें स्थित होता है तिसमें ब्रह्मभावसे स्थित होकर ब्रह्मभूत हुआ स्वराज्यको पाता है अर्थात् ब्रह्मकी समान अंगभूत देवताओंका आप ही राजा होजाता है, मनके पति ब्रह्मको पाता है, सकल वाणियोंका पति, चक्षुओंका पति, श्रोत्रोंका पति और विज्ञानरूप बुद्धियोंका पति होता है, किन्तु उससे भी अधिक सर्वरूप होता है। आकाश

जिसका शरीर है वा आकाशकी समान जिसका सूक्ष्मशरीर है ऐसे सत्यस्वरूप प्राणोंमें रमण करने वाले, मन है आनन्दरूप जिसका ऐसे शान्तिसे विभूति पायेहुए और अमृतधर्मी ब्रह्मको प्राप्त होता है हे प्राचीनयोग्य शिष्य ! इसप्रकार ब्रह्मकी उपासना करो ॥ १३-१४ ॥

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोवान्तर्दिशः । अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि । आप ओषधयो वनस्पतयः । आकाश आत्मा इत्यधिभूतम् । अथाध्यात्मम् । प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानः । चक्षुः श्रोत्रम् मनो वाक्त्वक् चर्म मांसं स्नावास्थि मज्जा । एतदधिविधाय ऋषिरवोचत् पांक्तेनैव पांक्तं वा इदं सर्वम् । पांक्तेनैव पांक्तं स्पृणोतीति ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पृथिवी) पृथिवीलोक (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक (द्यौः) स्वर्गलोक (दिशः) दिशाएँ (अवान्तर्दिशः) चारों कोनोंकी दिशा [एतत्] यह [लोकपञ्चकम्] पांचों लोक (अग्निः) अग्नि (वायुः) वायु (आदित्यः) सूर्य (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (नक्षत्राणि) तारागण [एतत्] यह [देवपञ्चकम्] पांच देवता (आपः) जल (ओषधयः) औषधियें (वनस्पतयः) वनस्पतियें (आकाशः)

आकाश (आत्मा) विराट [एतत्) यह [भूतपञ्चकम्] पंचभूत (इति) इसप्रकार (अधिभूतम्) अधिभूत है। (अथ) अब (अध्यात्मम्) शरीर विषयक कहते हैं (प्राणः) प्राण (अपानः) अपान (व्यानः) व्यान (उदानः) उदान (समानः) समान [एतत्] यह (वायुपञ्चकम्) पंचवायु (चक्षुः) नेत्र (श्रोत्रम्) कान (मनः) मन (वाक्) वाणी (त्वक्) त्वचा [एतत्] यह [इन्द्रियपञ्चकम्] पांच इन्द्रियें (चर्म) चर्म (मांसम्) मांस (स्नावा) नाड़ी (अस्थि) हाड़ (मज्जा) मज्जा [एतत्] यह [धातुपञ्चकम्] पांच धातु [इति] इसप्रकार [अध्यात्मम्] अध्यात्म है (एतत्) इसको (अधिविधाय) कल्पना करके (ऋषिः) ऋषि (अवोचत्) कहता हुआ (वै) निश्चय (इदम्) यह (सर्वम्) सब (पांक्तम्) पांच संख्यावाला है (इति) इसप्रकार (पांक्तेन-एव) पांक्त करके ही (पांक्तम्) पांक्तको (स्पृणोति) पूर्ण करता है ॥ १५ ॥

भावार्थ-अब पृथिवी आदि पांच स्वरूपोंमें ब्रह्मोपासना का विषय कहते हैं कि-पृथिवी, अन्तरिक्ष स्वर्गलोक, दिशाएँ और ईशान आदि कोण, यह पांच लोक अग्नि, वायु, आदित्य चन्द्रमा तारागण यह पाँच देवता जल औषधि, बिना फूलके फल उत्पन्न करनेवाली वनस्पति, आकाश और जगदात्मा विराट् पुरुष यह पञ्चभूत। यह भूतादिविषयक कथन हुआ,

अब आत्मा कहिये शरीरके विषयमें कहते हैं कि प्राण, अपान, व्यान, उदान समान, यह पांच वायु। चक्षु, कान, मन, जीभ और त्वचा यह पांच इन्द्रियें। चमड़ा, माँस, नाड़ी, हड्डी और नसें, यह पाँच धातु, यह ही भीतरी और बाहरी जगत्की पाँच २ की पंक्ति है, ऐसी कल्पना करके किसी ऋषिने कहा है कि यह सब जगत् इन पाँच२ के विभागोंसे युक्त है उपासक अध्यात्म अर्थात् शरीरसम्बन्धी पांक्त से बाहरके अर्थात् भूतरूप पांक्तको पूर्ण करता है अर्थात् एकरूप है ऐसा जानता है॥ १५ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वम्। ओमित्येतदनुकृतिर्हस्म वा अप्योम् श्रावयेत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ओंशोमिति शास्त्राणि शंसन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रसौति। ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति। ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नुवानीति। ब्रह्मैवोपाप्नोति॥ १६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ओम्-इति) ॐ यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (ओमिति) ॐ इसप्रकार (इदम्) यहशब्द (सर्वम्) सब है (ओम् इति) ॐ इस प्रकारका

(एतत्) यह शब्द (अनुकृतिः) अनुकरण (ह स्म वै) निश्चय प्रसिद्ध है (अपि) और (ओम्-आवय) ॐ को सुना (इति) ऐसा कहनेपर (आवयन्ति) सुनाते हैं (ओम्-इति) ॐ ऐसा कहकर (सामानि) सामवेदके मंत्रोंको (गायन्ति) गाते हैं (ओम्-शोम् इति) ओम् शोम् ऐसा कहकर (शस्त्राणि) गायन रहित ऋचाओंको (शंसन्ति) कहते हैं (अध्वर्युः) यज्ञका यजुर्वेदी ऋत्विज् (ओम्-इति) ॐ ऐसे (प्रतिगिरम्) वेदके शब्दविशेषको (प्रतिगृणाति) हरएक कथनके साथ बोलता है (ब्रह्मा) यज्ञका ब्रह्म (ओम्-इति) ॐ ऐसा उच्चारण करके (प्रसौति) प्रेरणा करता है (ओम्-इति) ओं ऐसा कहकर (अग्निहोत्रम्) अग्निहोत्रको (अनुजानाति) आज्ञा देता है (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (ब्रह्म) वेदको (उपाप्नुवानि) पाऊँ (इति) इस इच्छासे (प्रवक्ष्यन्) मंत्रका उच्चारण करता हुआ (ओम्-इति) ओं ऐसा (आह) कहता है (ब्रह्म,एव)ब्रह्मको ही (उपाप्नोति) पाता है ॥ १६ ॥

(भावार्थ)—अब सकल उपासनाओंकी अङ्गभूत ओंकारोपासना कहते हैं कि-ओम् यह ब्रह्म है; अर्थ से अभिन्न वाणीमात्रमें व्यापक ओंकार सकल जगत्रूप है,ओम् यह अनुकरण है अर्थात् यह काम करो, ऐसा कहने पर अन्य पुरुष ॐ कहकर उस आज्ञा का पालन करते हैं ॐ कहो, ऐसा कहने पर ऋत्विज् देवताओंको मंत्र सुनाते हैं, ओम्का उच्चारण

करके ही सामवेदके गायक सामगान करते हैं, ओम् ओम् ऐसा उच्चारण करके गीतरहित ऋचाओंका उच्चारण करते हैं, ओम् ऐसा कहकर ही यजुर्वेदी ऋत्विक् अध्वर्यु, होता के हरएक उच्चारणके पीछे प्रत्युच्चारण करता है, ॐ ऐसा कहकर ही ब्रह्मा प्रेरणा करता है, ॐ ऐसा उच्चारण करके ही यजमान अग्निहोत्र करनेकी आज्ञा देता है, मैं ब्रह्म-रूप वेदको पाजाऊँ ऐसा मनमें विचारकर ब्राह्मण अध्ययनके निमित्त मंत्रका उच्चारण करता हुआ पहिले ॐकारका ही उच्चारण करता है और ऐसा करने से वेदवक्ता होजाताहै, इस कारण ॐकारको ब्रह्मरूप मानकर उपासना करै ॥ १६ ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यञ्च स्वाध्याय-प्रवचने च तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च,अग्निहोत्रञ्च स्वाध्यायप्रवचने च,अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। मानुषञ्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजापतिश्च स्वायधयप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्याय प्रवचने च। सत्यमिति सत्यवचा

राथीतरः । तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ऋतम्) मनसे यथार्थ विचार करना (च) और (स्वाध्यायप्रवचने) पढ़ना और पढ़ाना (च) भी (सत्यम्) वाणीसे यथार्थ बोलना (च) और (स्वाध्यायप्रवचने च) पढ़ना और पढ़ाना भी (तपः) तप करना (च) और (स्वाध्या० च) पढ़ना और पढ़ाना भी (दमः) दश इन्द्रियोंको वशमें रखना (च) और (स्वाध्या०च) पढ़ना और पढ़ाना भी (शमः) मनको वशमें रखना (च) और (स्वा०च) पढ़ना और पढ़ाना भी (अग्नयः) अग्न्याधान (च) और (स्वाध्या०च) पढ़ना और पढ़ाना भी (अग्निहोत्रम्) अग्निहोत्र करना (च) और स्वा०च) पढ़ना और पढ़ाना भी (अतिथयः) अतिथि पूजन (च) और (स्वा०च) पढ़ना और पढ़ाना भी (मानुषम्) लौकिक व्यवहार (च) और (स्वा०च) पढ़ना और पढ़ाना भी (प्रजा) सन्तान (च) और (स्वा ०च) पढ़ना और पढ़ाना भी (प्रजनः) ऋतुकालमें स्त्रीसमागम (च) और (स्वा०च) पढ़ना और पढ़ाना भी (प्रजातिः) पौत्रकी उत्पत्तिके निमित्त पुत्रका विवाह करना (च) और (स्वा०च) पढ़ना और पढ़ाना भी (राथीतरः) रथीतरगोत्री

(सत्यवचा) सत्यवचा नामक ऋषि (सत्यम्) सत्य [अनुष्ठेयम्] अनुष्ठान करने योग्य है (इति) ऐसा (पौरुशिष्टिः) पुरुशिष्ट गोत्री (तपोनित्यः) तपोनित्य नामा ऋषि (तपः) तप [कर्त्तव्यम्] करना चाहिये (इति) ऐसा (मौद्गल्यः) मुद्गल ऋषिका पुत्र (नाकः) नाक (स्वाध्यायप्रवचने-एव) अध्ययन और अध्यापन ही [अनुष्ठेये] कर्त्तव्य हैं (इति) ऐसा [मनुते] मानता है (हि) क्योंकि (तत्) वह पढ़ना (तपः) तप है (हि) क्योंकि (तत्) वह पढ़ाना (तपः) तप है ॥ १७ ॥

(भावार्थ)-क्या क्या करना चाहिये, सो कहते हैं कि—मनसे यथार्थ विचार करना और वेदका अध्ययन तथा अध्यापन भी करना चाहिये, वाणी से यथार्थ भाषण और अध्ययन तथा अध्यापन भी चान्द्रायण व्रत आदि तपस्या और वेदका पढ़ना पढ़ाना भी, दशों इन्द्रियोंको वशमें रखना और तथा अध्ययन और अध्यापन भी, दक्षिण आदि पञ्चाग्निमें आहुति देना तथा अध्ययन और अध्यापन भी, अग्निहोत्र नामक यज्ञ करना तथा अध्ययन और अध्यापन भी, अतिथियोंकी सेवा करना तथा अध्ययन और अध्यापन भी, लौकिक व्यवहार करना तथा अध्ययन और अध्यापन भी, संतान के निमित्त यत्न करना तथा वेद पढ़ना और पढ़ाना भी, ऋतुकालमें स्त्रीसमागम करना तथा वेदका अध्ययन और अध्यापन भी, पौत्र आदि के

निमित्त पुत्र आदिका विवाह आदि करना तथा वेदका पढ़ना और पढ़ाना भी, इन सब कार्योंको करते हुए भी वेदका अध्ययन और अध्यापन यत्नके साथ करना चाहिये, इसी निमित्त हर एकके साथ अध्ययन और अध्यापन कहा है, अध्ययन बिना किये अर्थका ज्ञान नहीं होता और अर्थ का ज्ञान प्राप्त करना ही परमश्रेय है, अर्थ ज्ञानका स्मरण रखनेके लिये और धर्मकी वृद्धिके लिये अध्यापनकी आवश्यकता है, इसलिये अध्ययन और अध्यापनका आदर करना चाहिये रथीतरगोत्री सत्यवचा ऋषि के मतमें केवल सत्यका अनुष्ठान ही करना चाहिये पुरुशिष्ट गोत्री तपोनित्य ऋषि मतमें केवल तपस्या ही करना चाहिये और मुद्गलके पुत्र नाक ऋषिके मत में केवल वेदका अध्ययन और अध्यापन ही करना चाहिये, क्योंकि—यह दोनों तपःस्वरूप हैं ॥ १७ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ।

अहं वृक्षस्य रेरिवा कीर्त्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि द्रविणꣳसुवर्चसम् सुमेधा अमृतोक्षितः। इति त्रिशंकोर्वेदानुवचनम् ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अहम्) मैं (वृक्षस्य) संसार वृक्षका (रेरिवा) प्रेरक [अस्मि) हूँ [मे] मेरी (कीर्त्तिः) कीर्त्ति (गिरेः) पर्वतके (पृष्ठम् इव) शिखर की समान (अस्ति) है [अहम्] मैं (ऊर्ध्वपवित्रः)

ऊँची और पवित्र ज्ञानज्योति वाला (वाजिनि इव) सूर्यमें जैसे (अमृतम्) सुन्दर आत्मतत्त्व (अस्मि) हूँ (सुवर्चसम्) प्रकाशवान् (द्रविणम्) धन(सुमेधाः) सुन्दर बुद्धिवाला (अमृतः) अमर (अक्षितः) क्षीण न होनेवाला (वा अमृतेन-उक्षितः, अमृतोक्षितः) अथवा अमृतसे सिंचित (अस्मि) हूं (इति) इस प्रकार (त्रिशंकोः) त्रिशंकु ऋषीका (वेदानुवचनम्) आत्माके एकत्वके ज्ञानरूप वेदको पानेके निमित्त वचन है ॥ १८ ॥

(भावार्थ) - मैं संसाररूप वृक्षका उच्छेदनरूपसे प्रेरक हूँ, मेरी कीर्त्ति पर्वतके शिखरकी समान ऊँची चढ़ीहुई है, मुझ सर्वात्माका कारण ज्ञानरूप पवित्र ब्रह्म है, मैं सूर्यमें रहनेवाले आत्मतत्त्वकी समान शुद्ध आत्मतत्त्व हूँ, मैं प्रकाशमय आत्मस्वरूप धन हूं मेरी बुद्धि शुद्ध है, मैं अमरणधर्मी हूँ, मैं अविनाशी हूँ अथवा मैं अमृतसे सींचताहुआ हूँ ऐसा त्रिशंकु ऋषिका आत्माके एकत्वके ज्ञानरूप वेदको पानेके निमित्त वचन है ॥ १८ ॥

इति दशमोऽनुवाकः

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं-वद । धर्मञ्चर । स्वाध्यान्मा प्रमदः । आचा-र्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम्

कुशलान्न प्रमदितव्यम् भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ १९ ॥ देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि । यान्यस्माकꣳसुचरितानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ॥ २० ॥ ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् अश्रद्धयादेयम् श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् । अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा स्यात् ॥ २१ ॥ ये तत्र ब्राह्मणाः संमिशनः युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः यथा ते तत्र वर्त्तेरन् । तथा तत्र वर्त्तेथाः अथाभ्याख्यातेषु । ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तेषु वर्त्तेरन् । तथा वर्त्तेथाः । एष आदेशः एष उपदेशः । एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् एवमुपासितव्यम् । एवमु चैतदुपास्यम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(आचार्यः) आचार्य (वेदम्)

वेदको (अनूच्य) पढाकर (अन्तेवासिनम्) शिष्य को (अनुशास्ति) उपदेश देता है (सत्यम्) सत्य को (वद) बोल (धर्मम्) धर्मको (चर) कर (स्वाध्यायात्) वेदाध्ययनसे (मा प्रमदः) उदासीन मत हो (आचार्याय) आचार्यके अर्थ (प्रियम्)प्रिय (धनम्) धनको (आहृत्य) लाकर (प्रजातन्तुम्) सन्तानरूप तन्तुको (मा व्यवच्छेत्सीः) मत तोड़ना (सत्यात्) सत्यसे (न) नहीं (प्रमदितव्यम्) असावधान होना चाहिये (धर्मात्)धर्म से (न) नहीं (प्रमदितव्यम्) असावधान होना चाहिये (कुशलात्) शरीररक्षाके कर्म से (न) नहीं (प्रमदितव्यम्) असावधान होना चाहिये (भूत्यै) सम्पत्ति के अर्थ (न) नहीं (प्रमदितव्यम्) प्रमाद करना चाहिये (स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम्) वेदके अध्ययन और अध्यापनके निमित्त (न) नहीं (प्रमदितव्यम्) आलस्य करना चाहिये (देवपितृकार्याभ्याम्) देवता और पितरोंके कर्म के निमित्त (न) नहीं(प्रमदितव्यम्) प्रमाद करना चाहिये (मातृदेवः) माताको देवता मानने वाला (भव) हो (पितृदेवः) पिताको देवता मानने वाला (भव) हो (आचार्यदेवः) आचार्यको देवता मानने वाला (भव) हो (अतिथिदेवः) अतिथिको देवता मानने वाला (भव) हो (यानि) जो (अनवद्यानि) अनिन्दित (कर्माणि) कर्म हैं (तानि) वह (सेवितव्यानि) सेवन करना

चाहियें (इतराणि) दूसरे (नो) नहीं (यानि) जो (अस्माकम्) हमारे (सुचरितानि) सदाचरण हैं (तानि) वह (त्वया) तुझ करके (उपास्यानि) सेवन करने योग्य हैं (इतराणि) और (नो) नहीं (च) और (ये के) जो कोई (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (अस्मच्छ्रेयांसः) हमसे श्रेष्ठ हों (तेषाम्) उनका (आसनेन) आसनके द्वारा (त्वया) तुझ करके (प्रश्वसितव्यम्) श्रम निवारण करना चाहिये (श्रद्धया) श्रद्धा करके (देयम्) दान करना चाहिये (अश्रद्धया) अश्रद्धा करके (अदेयम्) नहीं देना चाहिये (श्रिया) लक्ष्मी करके (देयम्) देना चाहिये (ह्रिया) लज्जा करके (देयम्) देना चाहिये (भिया) भय करके (देयम्) देना चाहिये (संविदा) मित्रादिके कार्य करके [देयम्) देना चाहिये (अथ) और (वा) या (यदि) जो (ते) तेरा (कर्मविचिकित्सा) कर्ममें सन्देह (वा) या (वृत्तविचिकित्सा) आचरणमें सन्देह (स्यात्) हो [तर्हि] तो (तत्र) उस समय (ये) जो (संमर्शिनः) सम्यक् प्रकार विचार करने वाले (युक्ताः) लौकिक कर्म में लगे हुए (आयुक्ताः) शास्त्रोक्त कर्मोंमें लगेहुए (अलूक्षाः) अक्रूर मति (धर्मकामाः) धर्मकी लालसा वाले (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (स्युः) हों (ते) वह (तत्र) उस विषयमें (यथा) जैसे (वर्त्तेरन्) वर्त्ताव करें (तथा) तैसा (तत्र) उस विषयमें (वर्त्तेथाः) वर्त्ताव कर (अथ) और (तत्र) जहाँ

(अभ्याख्यातेषु) निःसन्देह आरोपित दोषयुक्त पुरुषोंमें (ये) जो (संमर्शिनः) विचारमें समर्थ (युक्ताः) लौकिक कर्ममें लगे (आयुक्ताः) शास्त्रोक्तकर्ममें लगे (अलूक्षाः) अक्रूरबुद्धि (धर्मकामाः) धर्मके इच्छुक (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (स्युः) हों (ते) वह (तेषु) उनमें (यथा) जैसे (वर्त्तेरन्) वर्त्ताव करें (तथा) तैसे ही (तेषु) उनमें (वर्तेथा) वर्त्ताव कर (एषः) यह (आदेशः) विधि है (एषः) यह (उपदेशः) उपदेश है (एषा) यह (वेदोपनिषत्) वेदका रहस्य है, (एतत्) यह (अनुशासनम्) ईश्वरका वचन है (एवम्) इस प्रकार (उपासितव्यम्) वर्त्ताव करना चाहिये (च) और (एवम् उ) इस प्रकार ही (एतत्) यह (उपास्यम्) पालनीय है ॥ १६-२२ ॥

(भावार्थ)-वेद पढ़ानेके अनन्तर आचार्य शिष्यको उपदेश देता है कि-हे शिष्य! सत्य भाषण करना धर्मका आचरण करना, वेदाध्ययनसे उदासीन न रहना; आचार्य जिससे प्रसन्न होजायँ उतना धन दक्षिणामें देकर गुरुके घरसे लौटना और सन्तान उत्पन्न करनेका उपाय करना, जिससे वंश आगेको नष्ट न हो, सत्यसे चलायमान न होना देहकी रक्षाके कार्यमें प्रमाद न करना सम्पदाको प्राप्त करनेमें प्रमाद करना. वेद, के स्वाध्याय और अध्यापनमें आलस्य करना, देवता और पितरोंके कर्ममें उदासीनता

न करना, माता पिता को देवताकी समान मानना, आचार्यका देवताकी समान पूजन करना, अतिथिका देवताकी समान सत्कार करना, जो काम निन्दित न हों उनको करना, निन्दित कर्मोंको न करना, हमारे जिन कामोंको अच्छा समझो उन ही का अनुकरण करना, अन्य कर्मोंका अनुकरण न करना जो ब्राह्मण अपनेसे श्रेष्ठ हों उनको आसन आदि देकर आराम देना, श्रद्धाके साथ दान करना, अश्रद्धासे दान न करना, वित्तके अनुसार देना, विनय के साथ देना, धर्मभयसे दान देना, मित्रभावसे दान देना, यदि तुमको कर्म वा किसी आचरणमें सन्देह हो तो उस विषयमें जो पूर्ण विचार करसकते हों, सरलमति, धर्माभिलाषी लौकिक और शास्त्रीय कर्ममें स्वतन्त्रभावसे प्रवीण हों, ऐसे ब्राह्मण उस विषयमें जैसा वर्त्ताव करते हों, ऐसा ही आचरण उस विषयमें तू भी करना, जिनके कर्म वा आचरणको कोई २ पुरुष निःसन्देह भावसे दोष लगाते हों, उनके विषयमें उस समय तहाँके सकल विचारशील, निष्पक्ष बुद्धिवाले, धर्मके प्रेमी लौकिक तथा शास्त्रीय कर्मोंमें लगेहुए ब्राह्मण जैसा वर्त्ताव करैं तैसा ही तु करना, यह ही विधि है, यह ही पुत्र पौत्र आदिको उपदेश है, यह ही वेदका रहस्य है और यह ही ईश्वरका वचन वा आज्ञा है, इसी प्रकार वर्त्ताव करना चाहिये और यह ही अवश्य कर्त्तव्य है ॥ १६-२२ ॥

इत्येकादशोऽनुवाकः

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णोरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो।त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम् तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीन्माम् आवीद्वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः २३

अन्वय और पदार्थ—(मित्रः) मित्र (नः) हमारा (शम्) कल्याणकारी (वरुणः) वरुण (नः) हमारा (शम्) कल्याणकारी (अर्यमा) अर्यमा (नः) हमारा (शम्) कल्याणकारी (इन्द्रः) (इन्द्र) (बृहस्पतिः) बृहस्पति (नः) हमारा (शम्) कल्याणकारी (उरुक्रमः) चरण बढ़ानेवाला (विष्णुः) विष्णु (नः) हमारा (शम्) कल्याणकारी (भवतु) हो (ब्रह्मणे) ब्रह्मरूप वायु के अर्थ (नमः) नमस्कार है (वायो) हे वायुदेव (ते) तेरे अर्थ (नमः) नमस्कार है (त्वम्-एव) तू ही (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (ब्रह्म) ब्रह्म (असि) है (त्वाम्-एव) तुझको ही (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (ब्रह्म) ब्रह्म (अवादिषम्) कहा (ऋतम्) निश्चयरूप बुद्धि (अवादिषम्) कहा (सत्यम्) सत्य (अवादिषम्) कहा (तत्) वह (माम्) मुझको (आवीत्) रक्षा करताहुआ (तत्) वह (वक्तारम्) आचार्यको (आवीत्) रक्षा करता हुआ (माम्)

मुझको (आवीत्) रक्षा करता हुआ (वक्तारम्) वक्ताका (आवीत्) रक्षा करता हुआ (शान्तिः) अध्यात्मिक विघ्नोंकी शान्ति हो (शान्तिः) आधिभौतिक विघ्नोंकी शान्ति हो ((शान्तिः) आधिदैविक विघ्नों की शान्ति हो ॥ २३ ॥

(भावार्थ)-प्राण और दिनका अभिमानी मित्र देवता हमारा कल्याण करै, अपान और रात्रिका अभिमानी वरुण देवता हमारा मंगल करै, नेत्र और सूर्याभिमानी अर्यमा देवता हमको सुख देय, बल का अभिमानी इन्द्र और बुद्धिका अभिमानी बृहस्पति हमारा मङ्गलसाधन करै और राजा बलिके यज्ञमें चरणोंके बढ़ानेवाले विष्णुभगवान् हमको सुखदायक हों, व्यापक ब्रह्मरूप वायुको प्रणाम है, हे वायुदेव ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, तुम ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, मैंने तुमको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहा है, निश्चयात्मक बुद्धिरूप कहा और सत्यस्वरूप कहा है उस वायुरूप ब्रह्मने मेरी रक्षाकी है, आचार्यकी रक्षाकी है, मेरी रक्षाकी है, वक्ताकी रक्षाकी है, आध्यात्मिक, आधिभौतिक आधिदैविक विघ्नोंकी शान्ति हो २३

इति द्वादशोऽनुवाकः । शिक्षाध्यायरूपा प्रथमा वल्ली समाप्ता

द्वितीया ब्रह्मानन्दवल्ली

॥ हरिः ॐ ॥ सह नाववतु । सह नौ

भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नाव-धीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

अन्वय और पदार्थ-[सः] वह परमेश्वर (नौ) हम दोनोंको (सह) साथ (अवतु) रक्षा करे (नौ) हम दोनोंको (सह) साथ (भुनक्तु) पालन करै (सह) साथ (वीर्यम्) सामर्थ्यको (करवावहै) सम्पादन करैं (नौ) हम दोनोंका (अधीतम्) पढ़ाहुआ (तेजस्वि) तेजवाला (अस्तु) हो (मा विद्विषावहै) परस्पर द्वेष न करैं (ॐ शान्तिः शांतिः शांतिः) ओंकार ब्रह्म तीन प्रकारके तापों की शान्ति करै ॥

(भावार्थ)—ब्रह्म, आचार्य अर शिष्य हम दोनोंकी रक्षा करै, हम दोनोंका पालन करै, हम दोनों साथ ही विद्याजनित सामर्थ्य पावें, हम दोनोंका ज्ञानरूपी बल बढ़े, हम दोनोंमें कभी कलह न हो, तीनों प्रकारके तापोंकी शान्ति हो ॥

ब्रह्मविदाप्नोति परम् । तदेषाभ्युक्ता । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेदानिहितं गुहायां परमे व्योमन् । सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति । तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ।

ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः । रेतसः पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः । तस्येदमेव शिरः। अयं दक्षिणः पक्षः । अयमुत्तरः पक्षः । अयमात्मा । इदं पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ(ब्रह्मवित्) ब्रह्मवेत्ता (परम्) परब्रह्मको (आप्नोति) प्राप्त होता है (तत्) उस विषयमें (एषा) यह ऋचा (अभ्युक्ता) कही है (ब्रह्म) ब्रह्म (सत्यम्) सत्यरूप (ज्ञानम्) ज्ञानस्वरूप (अनन्तम्) अनन्त है (परमे) परम (व्योमन्) आकाशमें (गुहायाम्) गुहामें (निहितम्) स्थित को (यः) जो (वेद) जानता है (सः) वह (विपश्चिता) सर्वज्ञ (ब्रह्मणा) ब्रह्मकरके (सह) सहित (सर्वान्) सकल (कामान्) कामनाओंको (अश्नुते) भोगता है (इति) मंत्र समाप्त हुआ (तस्मात्) तिस (एतस्मात्) इस (आत्मनः) आत्मासे (वै) प्रसिद्ध (आकाशः) आकाश (आकाशात्) आकाशसे (वायुः) वायु (वायोः) वायुसे (अग्निः) अग्नि (अद्भ्यः) जलोंसे (पृथिवी) पृथिवी (पृथिव्याः) पृथिवीसे (ओषधयः) ओषधियें (ओषधीभ्यः) ओषधियोंसे (अन्नम्) अन्न (अन्नात्) अन्नसे (रेतः) वीर्य (रेतसः) वीर्यसे (पुरुषः) पुरुष (सम्भूतः) उत्पन्न हुआ

(वै) निश्चय (सः) वह (एषः) यह (पुरुषः) पुरुष (अन्नरसमयः) अन्नरसका विकार है (तस्यएव) उसका ही (इदम्) यह (शिरः) शिर है (अयम्) यह (दक्षिणः) दाहिना हाथ (पक्षः) पक्ष है (अयम्) यह (उत्तरः) दूसरा (पक्षः) पक्ष है (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा है (इदम्) यह (पुच्छम्) पिछला भाग (प्रतिष्ठा) आधार है (तत् अपि) उसके विषयमें ही (एषः) यह (श्लोकः) मंत्र (भवति) होता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)—ॐ ब्रह्मको जाननेवाला परब्रह्मको पाता है, उसी विषयमें यह ऋचा कही है कि—जो विकार रहित सत्यस्वरूप और देश तथा कालकी अवधिसे शून्य अनन्तस्वरूप ब्रह्म है, तिस ब्रह्मको हृदयाकाशमें बुद्धिरूप गुहामें स्थित जो साधक देखता है वह सर्वज्ञ ब्रह्मके साथ सकल इच्छित भोगों को भोगता है अर्थात् सर्वज्ञ ब्रह्मके स्वरूपसे एकही समयमें सकल भोगोंको भोगता है । अब इसीको विस्तारसे कहते हैं कि-इसी आत्मासे आकाश उत्पन्न हुआ है आकाशसे वायु,वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथिवी, पृथिवीसे औषधियें, औषधियों से अन्न, अन्नसे वीर्य और मस्तक हाथ आदि आकृति वाला पुरुष उत्पन्न हुआ है, सो यह प्रसिद्ध पुरुष अन्नके रसका विकार है, तिस अन्नके रससे विकार रूप पुरुषका यह ही प्रसिद्ध शिर है, पूर्वदिशा

को मुख करने वाले पुरुषका दक्षिणकी ओरका हाथ ही दक्षिण [दाहिना] पक्ष है और यह वाम बाहु उत्तर [वाम] पक्ष है, देहका मध्य भाग अङ्गोंका आत्मा है और नाभिसे नीचेका भाग ही पुच्छ अर्थात् पिछला भाग और स्थित होनेका आधार है, इस अर्थके विषै में ही अन्नमयके स्वरूपका प्रकाशक यह अगला मंत्र है ॥ १

इति प्रथमोऽनुवाकः

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीꣳ श्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्ततः। अन्नꣳ हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात् सर्वौषधमुच्यते। सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति। येऽन्नं ब्रह्मोपासते। अन्नꣳहि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। अन्नाद्भूतानि जायन्ते जातान्यन्नेन वर्धन्ते। अद्यतेऽत्ति च भूतानि। तस्मादन्नं तदुच्यत इति। तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयात् अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः तेनैष पूर्णः स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतां अन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्राण एव शिरः व्यानो दक्षिणः पक्षः अपान उत्तरः पक्षः। आकाश आत्मा पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा तदप्येष श्लोको भवति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पृथिवीम्) पृथिवीका (श्रिताः) आश्रित(याः,काः,च)जो कोई भी(वै)प्रसिद्ध (प्रजाः) प्रजा हैं [ताः] वह (अन्नात्) अन्नसे (प्रजायन्ते) उत्पन्न होती हैं (अथो) अनन्तर (अन्नेन-एव) अन्न करके ही (जीवन्ति) जीती हैं (अथ) अनन्तर (अन्ततः)अन्त समय (एनत् अपि) इसको ही (यन्ति) प्राप्त होती हैं (हि) क्योंकि (अन्नम्) अन्न (भूतानाम्) भूतोंमें (ज्येष्ठम्) प्रथम उत्पन्न हुआ है (तस्मात्) तिससे (सर्वौषधम्) सबका औषध (उच्यते) कहाजाता है, (ये) जो (अन्नम्) अन्न (ब्रह्म) ब्रह्मको (उपासते) उपासना करते हैं (ते) वह (वै) निश्चय (सर्वम्) सकल (अन्नम्) अन्नको (आप्नुवन्ति) प्राप्त होते हैं (हि) क्योंकि (अन्नम्) अन्न (भूतानाम्) भूतोंमें (ज्येष्ठम्) पहिले उपजा है (तस्मात्) तिससे (सर्वौषधम्) सब का औषध (उच्यते) कहाजाता है (भूतानि) सकल प्राणी (अन्नात्) अन्नसे (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं (जातानि) उत्पन्न हुए (अन्नेन) अन्न करके (वर्धन्ते) बढ़ते हैं [भूतैः] प्राणियों करके (अद्यते) खाया जाता है (च) और (भूतानि) प्राणियोंको (अत्ति) खाता है (तस्मात) तिससे (तत्) वह (अन्नम्) अन्न (उच्यते) कहाजाता है (इति) यह अन्नमयकोषकी उपासना है (तस्मात्) तिस (एतस्मात्) इस (अन्नरसमयात्) अन्नरसमय

से (वै) निश्चय (अन्यः) अन्य (अन्तरात्मा) भीतर आत्मारूपसे कल्पित (प्राणमयः) प्राणमय कोश है (तेन) जिसकरके (एषः) यह अन्नमय कोश (पूर्णः) पूर्ण है (सः) वह (एषः) यह (वै) निश्चय (पुरुषविधःएव) पुरुषके आकारवाला ही है (तस्य) उसकी (पुरुषविधताम्-अनु)पुरुषाकारता के समान (अयम्) यह (पुरुषविधः) पुरुषाकार है (तस्य) उसका (प्राणः एव) प्राण ही (शिरः) शिर है (व्यानः) व्यान (दक्षिणः) दाहिना (पक्षः) पक्ष है (अपानः) अपान (उत्तरः) उत्तर (पक्षः) पक्ष है (आकाशः) आकाश (आत्मा) मध्यभाग है (पृथिवी) पृथिवी (पुच्छम्) नीचेका भाग (प्रतिष्ठा) आधार है (तत्-अपि) उसमें भी (एषः)यह (श्लोकः) मंत्र (भवति) होता है ॥ २ ॥

(भावार्थ)—पृथ्वी पर जितने प्राणी रहते हैं वह सब अन्नसे ही उत्पन्न होते हैं, फिर अन्नसे ही जीवित रहते हैं और फिर अन्तकालमें इसमें ही समा जाते हैं क्योंकि—अन्नही सब प्राणियोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ है इसकारण अन्नही सबका औषध अर्थात् सब प्राणियोंके देहके दाहको दूर करने वाला है ऐसा कहते हैं। जो उस अन्नरूप ब्रह्मकी उपासना करते हैं वह निःसन्देह सब प्रकारका अन्न पाते हैं, क्योंकि-अन्न ही सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ

है, इसकारण अन्नको सबकी औषध कहते हैं, अन्न से ही सकल प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्नसे ही सब वृद्धि पाते हैं, यह अन्नमयकोषरूप स्थूलशरीर प्राणियों करके खाया जाता है और यह स्वयं भूतों को भक्षण करता है इसकारण अन्न शब्दसे कहा जाता है इस अन्नरसके विकाररूप कोशसे जुदा एक अंतरात्मा कहिये भीतर आत्मारूपसे कल्पना किया हुआ वायुरूप प्राणमय कोश है, तिस प्राणमय कोशसे यह अन्नमयकोश पूर्ण हुआ है, यह प्राणमय कोश भी अन्नमय कोशकी समान शिर भुजा आदि से युक्त मनुष्यके आकार का है, इस प्राणमय कोश का मनुष्याकार अन्नमय कोशके आकार की समान है, प्राण ही इसका मस्तक है, व्यानरूप प्राणकी वृत्ति दक्षिण पक्ष है अपान उत्तर पक्ष है, आकाश आत्मा है, अर्थात् आकाश में स्थित प्राण की वृत्ति रूप समान वायु इसका आत्मस्वरूप है, और पृथिवी पृष्ठरूप आधार है, अर्थात् अध्यात्मस्वरूप प्राणको पृथिवी देवता धारणकरता है, इस प्राणरूप आत्मा के विषय में भी यह अगला मंत्र है ॥ २ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः

प्राणं देवा अनुप्राणन्ति । मनुष्याः पशवश्च ये । प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुष-मुच्यते । सर्वमेव त आयुर्यन्ति । ये प्राणं ब्रह्मो-

पासते । प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात् अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतां अन्वयं पुरुषविधः। तस्य यजुरेव शिरः ऋग् दक्षिणः पक्षः सामोत्तरः पक्षः । आदेश आत्मा । अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥

अन्वय और पदार्थ-(देवाः) देवता (ये) जो (मनुष्याः) मनुष्य (च) और (पशवः) पशु हैं [ते] वह (प्राणम्-अनु) प्राणके पीछे (प्राणन्ति) चेष्टा करतेहैं (हि) क्योंकि (प्राणः) प्राण (भूतानाम्) सकल भूतोंका (आयुः) आयु हैं (तस्मात्) तिससे (सर्वायुषम्) सबका जीवन (उच्यते) कहा जाताहै (ये) जो (प्राणम्) प्राणरूप (ब्रह्म) ब्रह्मको (उपासते) उपासना करतेहैं (ते) वह (सर्वम्-एव) सब ही (आयुः) आयुको (यन्ति) प्राप्त होते हैं (हि) क्योंकि (प्राणः) प्राण (भूतानाम्) भूतोंका (आयुः) आयु है (तस्मात्) तिससे (सर्वायुषम्) सबका आयु (उच्यते) कहाजाता है (यः) जो यह प्राणमय है (एषः-एव) यह ही (तस्य) तिस (पूर्वस्य) पहिलेका (शारीरः) अ-

न्नमें होनेवाला (आत्मा) आत्मा है (तस्मात्) तिस (वै) प्रसिद्ध (एतस्मात्) इस (प्राणमयात्) प्राणमयसे (अन्यः) अन्य (अन्तरः) भीतरी (आत्मा) आत्मा (मनोमयः) मनोमय है (तेन) तिस करके (एषः) यह (पूर्णः) पूर्ण है (सः) वह (एषः) यह (वै) निश्चय (पुरुषविधः एव) पुरुषके आकार वाला ही है (तस्य) उसकी (पुरुषविधताम् अनु) पुरुषाकारताके पीछे (अयम्) यह (पुरुषविधः) पुरुषाकार है (तस्य) तिसका (यजुः-एव) यजुर्वेद ही (शिरः) शिर है (ऋक्) ऋग्वेद (दक्षिणः) दाहिना (पक्षः) पक्ष है (साम) सामवेद (उत्तरः) उत्तर (पक्षः) पक्ष है (आदेशः) ब्राह्मणभाग (आत्मा) आत्मा है (अथर्वाङ्गिरसः) अथर्ववेद (पुच्छम्) पृष्ठरूप (प्रतिष्ठा) आधार है (तत् अपि) तिस विषयमें भी (एषः) यह (श्लोकः) मंत्र (भवति) होता है ॥

भावार्थ—अग्नि आदि देवता प्राणक्रियाकी शक्ति वाले वायुरूप प्राणके पीछे तिसके ही स्वरूपके होते हुए प्राणनरूप क्रियासे चेष्टावान् होते हैं अथवा देवता कहिये इन्द्रियें मुख्य प्राणके पीछे चेष्टा करती हैं, तैसे ही मनुष्य पशु भी प्राणशक्तिसे ही चेष्टा करते हैं, क्योंकि-प्राण प्राणियोंका जीवन है, इसी कारण प्राण सबका आयु कहलाता है, इस कारण बाहरी अन्नमयरूप आत्मासे निकलकर अर्थात् उस

में आत्मबुद्धिको त्यागकर इसके भीतर प्राणमय आत्मारूप ब्रह्मको 'मैं प्राण हूं' सकल प्राणियोंका आत्मा और जीवनका हेतु होनेसे आयु हूं, ऐसी उपासना जो करते हैं, वह इस लोकमें पूर्णआयुको पाते हैं, क्योंकि—प्राण भूतोंका आयु है, इसकारण सर्वायु कहलाता है, जो जैसे गुणवालेकी उपासना करता है वह तैसे ही गुण वाला होजाता है, अन्नमय कोशमेंके शरीरके भीतर रहनेवाला जो आत्मा है, वह ही यह प्राणमय कोशमेंका शारीर आत्मा भी है अर्थात् अन्नमय और प्राणमय दोनों शरीरोंमें एक ही आत्मा है। यह प्राणमय कोशकी उपासना कही जो प्राणमय आत्मासे भिन्न दूसरा एक अंतरात्मा है, वह मनोमय है अर्थात् सङ्कल्पविकल्पमय वृत्तिरूप अन्तःकरण मनोमय कोश है, यह प्राणमय का अंतरात्मा है, तिस मनोमय से यह प्राणमय पूर्ण हो रहा है, यह मनोमय कोश भी पुरुषके आकारका है, इस मनोमय कोशका मनुष्याकार प्राणमय कोशके मनुष्याकारकी समान है, यजुर्वेद ही इसका शिर है, ऋग्वेद दक्षिण पक्ष है, सामवेद उत्तर पक्ष है, वेदका ब्राह्मणभाग आत्मा कहिये मध्यभाग है, अथर्ववेदके मंत्र पुच्छभागरूप आधार है, इस विषयमें भी यह मनोमय आत्माका प्रकाशक मंत्र है ॥ ३ ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कदाचनेति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात् अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतां अन्वयं पुरुषविधः । तस्य श्रद्धैव शिरः । ऋतं दक्षिणः पक्षः । सत्यमुत्तरः पक्षः । योग आत्मा । महः पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मनसा-सह) मन करके सहित (वाचः) वाणियें (अप्राप्य) न पाकर (यतः) जिससे (निवर्त्तन्ते) लौटती हैं (ब्रह्मणः) ब्रह्म के (आनन्दम्) आनन्दको (विद्वान्) जाननेवाला (कदाचन) कभी (न) नहीं (बिभेति) डरता है (तस्य) तिस (पूर्वस्य) पहिलेका (यः) जो (शारीरः) शरीरके विषैं स्थित (आत्मा) आत्मा है (एषः-एव) यह ही [अस्य-अपि] इसका भी है (तस्मात्) तिस (वै) प्रसिद्ध (एतस्मात) इस (मनोमयात्) मनोमयसे (अन्यः) अन्य (अंतरः) भीतर (आत्मा) आत्मा (विज्ञानमयः) विज्ञानमय है (तेन) तिस करके (एषः) यह (पूर्णः) पूर्ण है (वै) निश्चय (सः) वह (एषः) यह (पुरुषविधःएव) पुरुषा-

कार ही है (तस्य) तिसकी (पुरुषविधताम्-अनु) पुरुषाकारता के पीछे (अयम्) यह (पुरुषविधः) पुरुषाकार है (तस्य) तिसका (श्रद्धा-एव) श्रद्धा ही (शिरः) शिर है (ऋतम्) ऋत (दक्षिणः) दाहिना (पक्षः) पक्ष है (सत्यम्) सत्य (उत्तरः) उत्तर (पक्षः) पक्ष है (योगः) योग (आत्मा) आत्मा है (महः) महत्पना (पुच्छम्) पृष्ठ (प्रतिष्ठा) आधार है (तत्-अपि) तिस विषय में भी (एषः) यह (श्लोकः) मंत्र (भवति) होता है ४

(भावार्थ)-मन करके सहित वाणियें जिसको न पाकर पीछे को लौट आती हैं, उस ब्रह्मके आनन्दको जाननेवाला जन्म मरण आदिसे कभी नहीं डरता अर्थात् आवागमनसे छूटजाता है, ऊपर कहे हुए प्राणमय शरीरका जो आत्मा है वह ही इस मनोमय शरीरका आत्मा है,इस मनोमय आत्मासे अन्य एक अन्तरात्मा है वह विज्ञानमय अर्थात् निश्चयात्मक बुद्धिरूप जो विज्ञान तिसमें है, तिस विज्ञानमय कोशसे यह मनोमय कोश पूर्ण है, यह विज्ञानमय कोश भी पुरुषाकार ही है, इस विज्ञान मय कोशका पुरुषाकार मनोमयकोशके पुरुषाकारकी समान है, श्रद्धा ही इस का शिर है, मनका यथार्थ निश्चयरूप ऋत इसका दक्षिण पक्ष है और सत्य इसका वाम पक्ष है, चित्तकी एकाग्रतारूप योग आत्मा है और महत्तत्त्वरूप बुद्धि पृष्ठभागरूप आधार

है, इस विषयमें भी यह आगेका मन्त्र है ॥ ४ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ।

विज्ञानं यज्ञं तनुते । कर्माणि तनुतेऽपि च । विज्ञानं देवाः सर्वे ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते, विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद । तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति शरीरे पाप्मनो हित्वा सर्वान् कामान् समश्नुत इति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमयः। तेनैष पूर्णः स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतां अन्वयं पुरुषविध तस्य प्रियमेव शिरः । मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विज्ञानम्) विज्ञान (यज्ञम्) यज्ञको (तनुते) विस्तृत करता है (च) और (कर्माणि अपि) कर्मोंको भी (तनुते) विस्तृत करता है (सर्वे) सब (देवाः) देवता (ज्येष्ठम्) प्रथम उत्पन्न हुए (विज्ञानम्) विज्ञानरूप (ब्रह्म) ब्रह्मको (उपासते) उपासना करते हैं (चेत्) यदि (विज्ञानम्) विज्ञानरूप (ब्रह्म) ब्रह्मको (वेद) जानता है (चेत्) यदि (तस्मात्) तिससे (न) नहीं (प्रमाद्यति) प्रमाद करता है [तर्हि] तो (शरीरे)

शरीर में (पाप्मनः) पापोंको (हित्वा) त्यागकर (सर्वान्) सब (कामान्) कामनाओं को(अश्नुते) पाता है (तस्य) तिस (पूर्वस्य) पहिले का (यः) जो (शारीरः) शरीर में का (आत्मा) आत्मा है (एषः-एव) यह ही [अस्य-अपि]इसका भी है (इति) इसप्रकार विज्ञानमयका वर्णन है (तस्मात्) तिस (वै) प्रसिद्ध (एतस्मात्) इस (विज्ञानमयात्) विज्ञानमय से (अन्यः) दूसरा (अन्तरः) अन्तर (आत्मा) आत्मा (आनन्दमयः) आनन्दमय है (तेन) तिस करके (एषः) यह (पूर्णः) व्याप्त है (वै) निश्चय (-सः) वह (एषः)यह (पुरुषविधः-एव) पुरुषाकार ही है (तस्य) तिसकी (पुरुषविधताम्-अनु) पुरुषाकारता के पीछे (अयम्) यह (पुरुषविधः) पुरुषाकार है (तस्य) तिसका (प्रियम्-एव) प्रीति ही (शिरः) शिर है (मोदः) हर्ष (दक्षिणः) दाहिना (पक्षः) पक्ष है (प्रमोदः) परम हर्ष (उत्तरः) वाम (पक्षः) पक्ष है (आनन्दः) आनन्द (आत्मा) आत्मा है (ब्रह्म) ब्रह्म (पुच्छम्) पुच्छ (प्रतिष्ठा) आधार है (तत्-अपि) इस विषय में भी (एषः) यह (श्लोकः) मंत्र (भवति) होता है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-विज्ञानवान्पुरुष श्रद्धाके साथ यज्ञको करता है सो मानो विज्ञान ही यज्ञको करता है और कर्मोंको भी करता है, इन्द्रादि सकल देवता विज्ञान

रूप महान् ब्रह्म की उपासना करते हैं, जो कोई वि-
ज्ञानको ब्रह्मरूप जानता है और उस विज्ञानमय
ब्रह्म से च्युत न होकर दृढ़ निश्चयके साथ उसकी
उपासना करता है वह शरीर से उत्पन्न हुए सकल
पापों को शरीर में ही त्यागकर विज्ञानमय ब्रह्मस्व-
रूप को प्राप्त हुआ तिसमें स्थित सकल भोगों को
विज्ञानमय स्वरूप से ही सम्यक् प्रकार भोगता है
जो यह ऊपर कहा हुआ मनोमय कोशका शरीर में
का आत्मा है यह ही विज्ञानरूप कोशके शरीरमें का
आत्मा है। तिस प्रसिद्ध विज्ञानमय से अन्य एक
दूसरा अन्तरात्मा है, वह आनन्दमय है, तिस आ-
नन्दमय कोश से वह विज्ञानमय कोश व्याप्त होरहा
है, यह आनन्दमय भी पुरुषाकार ही है, तिस विज्ञा-
नमय कोशके पुरुषाकार की समान ही इस आनन्द
मय कोश का भी पुरुषाकार है, पुत्र धन आदि इच्छि-
त वस्तु के देखने से उत्पन्न हुआ प्रेम इसका शिर
है, प्रियवस्तुके मिलने से प्राप्त हुआ हर्षरूप मोद ही
दाहिना हाथ है, और अत्यन्त हर्षरूप प्रमोद ही
वाम हाथ है, प्रिय आदि सुखके अवयवों में पुरा
हुआ आनन्द ही आत्मा है और ब्रह्म पुच्छरूप है
और वह ब्रह्म अविद्याकल्पित सकल द्वैतका अन्त-
रूप अद्वैतस्वरूप आधार है, तिसही विषय में यह
अगला मंत्र है ॥ ५ ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः

असन्नेव भवति । असद् ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद । सन्तमेनं ततो विदुरिति तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । अथा-तोऽनु प्रश्नाः । उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चन गच्छति३ आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य । कश्चि-त्समश्नुता ३ उ । सोऽकामयत बहु स्यां प्रजाये-येति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा । इदꣳ सर्वमसृजत । यदिदं किञ्च । तत्सृष्ट्वा । तदेवा-नुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् । निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च । निलयनञ्चानिलयनञ्च विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च । सत्यञ्चानृतञ्च । सत्य-मभवत् । यदिदं किंच । तत्सत्यमित्याचक्षते । तदप्येष श्लोको भवति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(चेत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (असत्) नहीं है (इति) ऐसा (वेद) जानता है (असत्-एव) सत्ताशून्य ही (भवति) होता है (चेत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (अस्ति) है (इति) ऐसा (वेद) जानता है (ततः) तब [धीराः] ज्ञा-नी (एनम्) इसको (सन्तम्-इति) सत्तावाला है ऐसा (विदुः) जानते हैं (तस्य) उस (पूर्वस्य) पहिले विज्ञानमयका (शारीरः) शरीरमें का (आ-

त्मा) आत्मा है [अस्य-अपि] इस आनन्दमयका भी (एप-एव) यह ही है (अथ) अब (अनु) आगे (प्रश्नाः) प्रश्न हैं (कश्चन) कोई (अविद्वान् उत) अज्ञानी पुरुष भी (अतः) इस लोक से (प्रेत्य) मरणको प्राप्त होकर (अमुम्) इस (लोकम्) ब्रह्मलोकको (गच्छति) प्राप्त होता है (आहो) या (कश्चित्) कोई (विद्वान्) ज्ञानी (उ) ही (प्रेत्य) मरणको प्राप्त होकर (अमुम्) इस (लोकम्) लोक को (समश्नुते) प्राप्त होता है (सः) वह (अकामयत) इच्छा करता हुआ (बहु) बहुत (स्याम्) होऊँ (प्रजायेय) उत्पन्न होऊँ (इति) इस प्रकार (सः) वह (तपः) सृष्टि रचने के विचाररूप तपको (अतप्यत) करता हुआ (सः) वह (तपः)विचार को (तप्त्वा) करके (इदम्) इस (सर्वम्) सबको (असृजत) रचता हुआ (यत्) जो (किञ्च) कुछ (इदम्) यह है (तत्) उसको (सृष्ट्वा) रचकर(तत् एव) उसमें ही (अनुप्राविशत्) पीछेसे प्रवेश करता हुआ (तत्-अनुप्रविश्य) उसमें प्रवेश करकै (सत्-च) मूर्त्तरूप भी (त्यत्-च) अमूर्त्तरूप भी (निरुक्तम् च) निकृष्ट भी (अनिरुक्तम्) उत्कृष्ट भी (निलयनम्-च) आश्रय भी (अनिलयनम्-च) अनाश्रय भी (विज्ञानम्-च) चेतन भी (अविज्ञानम्-च) अचेतन भी (सत्यम्-च) सत्य भी (अनृतम्-च) असत्य भी (अभवत्) हुआ (सत्यम्)

सत्य (यत्) जो (इदम्) यह (किञ्च) कुछ (अभवत्) हुआ (तस्मात्) तिससे (सत्यम्-इति) सत्य है ऐसा (आचक्षते) कहते हैं (तत्-अपि) तिसमें भी (एषः) यह (श्लोकः) मन्त्र (भवति) होता है ॥६॥

(भावार्थ)-कोई पुरुष ब्रह्मको असत् अर्थात् नहीं है, ऐसा जानता है वह भी असत् कहिये पुरुषार्थसे हीन ही होजाता है, और जो यह जानता है कि-ब्रह्म है, तो ज्ञानी पुरुष उसको विद्यमान ब्रह्मस्वरूपसे परमार्थ सत्स्वरूपको प्राप्त हुआ ब्रह्मवेत्ता जानते हैं, ऊपर लिखाहुआ विज्ञानमयकोशका जो शरीरस्थित आत्मा है, वह ही इस आनन्दमयकोश का शरीरस्थित आत्मा है। अब शिष्य आचार्यके कहेहुए पर प्रश्न करता है कि-कोई अज्ञानी पुरुष यहांसे मरणको प्राप्त होकर इस परमात्मलोकको प्राप्त होता है या नहीं! और कोई भी ज्ञानी पुरुष यहाँसे मरणको प्राप्त होकर परमात्मलोक पाता है या अज्ञानीकी समान ज्ञानी भी नहीं पाता? इसका उत्तर यह है कि-उस परमात्माने इच्छा की, कि-मैं बहुत होऊँ, मैं उत्पन्न होऊँ, उसने प्रकट होनेवाले जगत्की रचनाके विषयमें विचार किया और इस विचारको करके, यह जो कुछ है सो सब उत्पन्न किया, और उत्पन्न करके वह स्वयं इसमें प्रविष्ट हो गया, इसमें प्रविष्ट होकर मूर्त्त और अमूर्त्त, निकृष्ट और उत्कृष्ट वा सविशेष और निर्विशेष, आश्रय

अनाश्रय चेतन और अचेतन तथा सत् और असत् यह सब कुछ परमार्थ सत्यस्वरूप ब्रह्म हुआ, इसी कारण तिस ब्रह्मको ज्ञानी सत्य शब्दसे वा सत् कहते हैं, इसी विषयमें यह आगला मन्त्र है । यह ब्रह्म सत् है वा असत् इसका उत्तर हुआ ॥ ६ ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः,

असद्वा इदमग्र आसीत् । ततो वै सदजायत तदात्मानꣳस्वयमकुरुत । तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति । यद्वै तत्सुकृतम् । रसो सः । रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् । एष ह्येवा- नन्दयाति । यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्ये- ऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते अथ सो- ऽभयं गतो भवति । यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदर- मन्तरं कुरुते । अथ तस्य भयं भवति । तत्त्वेवं भयं विदुषोऽमन्वानस्य । तदप्येष श्लोको भवति ७

अन्वय और पदार्थ—(अग्रे) पहिले (इदम्) यह जगत् (असत्) अव्यक्त (वै) निश्चय (आसीत्) था (ततः) तिससे (सत्) व्यक्त (वै) निश्चय (अजायत) उत्पन्न हुआ (तत्) वह (स्वयम्) आप ही (आत्मानम्) अपनेको (एव) ही (अकुरुत) करता हुआ (तस्मात्) तिससे (तत्)

वह (सुकृतम्-इति) स्वयंकर्त्ता है ऐसा (उच्यते) कहाजाता है (यत्) क्योंकि (तत्) वह (वै) निश्चय (सुकृतम्) स्वयंकर्त्ता है (सः) वह (वै) निश्चय (रसः) रसरूप है (हि) क्योंकि (अयम्) यह जीव (रसम्-एव) रसको ही (लब्ध्वा) पाकर (आनन्दी भवति) आनन्दयुक्त होता है (यत्) जो (एषः) यह (आनन्दः) आनन्द (आकाशे) हृदयाकाशमें (न) नहीं (स्यात्) हो (हि) निश्चय (कः-एव) कौन (अन्यात्) अपानरूप चेष्टा करै, (कः) कौन (प्राण्यात्) प्राणरूप चेष्टा करै (हि) निश्चय (एषा-एव) यह ही (आनन्दयाति) आनन्द कराता है (हि) निश्चय (यदा-एव) जब ही (एषः) यह (एतस्मिन्) इस (अदृश्ये) अदृश्य (अनात्म्ये) अशरीर (अनिरुक्ते) अनिर्वचनीय (अनिलयने) अनाधारमें (अभयम्) निर्भय (प्रतिष्ठाम्) स्थिति को (विन्दते) पाता है (अथ) अनन्तर (सः) वह (अभयम्) अभयको (गतः) प्राप्त (भवति) होता है (हि) निश्चय (यदा) जब (एषः) यह (एतस्मिन्) इसमें (उदरम्) थोड़ा सा (अन्तरम्) भेद (कुरुते) करता है (अथ) अनन्तर (तस्य) उसको (भयम्) भय (भवति) होता है (अमन्वानस्य) एकत्व करके न माननेवाले (विदुषः) विद्याभिमानीको (तत्-तु) वह ब्रह्म तो (भयम् एव) भयरूप ही होता है (तत्-अपि) तिस वि-

इसमें भी (एषः) यह (श्लोकः) मन्त्र (भवति) होता है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)—अनेकों प्रकारके नामरूपसे प्रकाशित हुआ यह जगत् पहिले असत् कहिये अव्यक्त ब्रह्मरूप था उस अव्यक्त ब्रह्मरूप असत् से प्रकाशित नाम रूपवाला सत् जगत् उत्पन्न हुआ है, उसने अपने आप सृष्टि करी अर्थात् अपनेको जगत्रूपसे प्रकाशित किया, इसलिये उसको सुकृत कहिये अपने आप कर्त्ता है, ऐसा कहते हैं, यह जीव रसरूपको पाकर ही सुखी होता है, यदि स्वयंकर्त्ता रसस्वरूप है यह हृदयाकाशमें आनन्दस्वरूप नहीं होता तो अपान वायुकी चेष्टा कौन करता ? और प्राणक्रिया कौन करता ? अर्थात् कोई भी नीचे ऊपरको श्वास लेकर जीवित नहीं रहसकता, यह ही जीवको आनन्द देता है, जब यह साधक इस अविकारी वा अविषय, अशरीरी, अनिर्वचनीय और अनाधार अर्थात् सकल कार्योंके धर्मोंसे विलक्षण ब्रह्मके ऊपर निर्भय रहता है तब यह अभयपदको पाता है, जब वह उसमें ज़रा भी भेदभावको देखता है, तब इस को भय होता है, ब्रह्मके साथ आत्माके एकत्वको जो नहीं जानता है उस विद्याभिमानीके लिये वह ब्रह्म भयका कारण है, इसी विषयमें यह अगला मंत्रहै ॥७॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ।

भीषास्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः

भीषास्मादग्निश्च मृत्युर्धावति पञ्चम इति । सैषानन्दस्य मीमांसा भवति । युवा स्यात्साधुयुवाध्यायिकः । आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ठः । तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् । स एको मानुष आनन्दः । ते ये शतं मानुषा आनन्दाः । स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः । स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ते ये शतं पितृणां चिरलोकानामानन्दाः । स एक आजानजानां देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः । स एकः कर्म्मदेवानामानन्दः । ये कर्मणा देवानपियन्ति श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं कर्म्मदेवानामानन्दाः । स एको देवानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं देवानामानन्दाः । स एक इन्द्रस्यान-

न्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शत-मिन्द्रस्यानन्दाः । स एको बृहस्पतेरानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं बृहस्पते-रानन्दाः । स एकः प्रजापतेरानन्दः । श्रोत्रि-यस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं प्रजापतेरान-न्दाः । स एको ब्रह्मण आनन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । स यश्चायं पुरुषे । यश्चासावा-दित्ये । स एकः स य एवंवित् । अस्माल्लोका-त्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं विज्ञानमय-मात्मानमुपसंक्रामति । एतमानन्दमयमात्मानमु-पसंक्रामति' तदप्येष श्लोको भवति ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्मात्) इससे (भीषा) भय करके (वातः) वायु (पवते) चलता है (सूर्यः) सूर्य (भीषा) भय करके (उदेति) उदित होता है (अस्मात्) इससे (भीषा) भय करके (अग्निः) अग्नि (इन्द्रः) इन्द्र (च) और (पञ्चमः) पाँचवाँ (मृत्युः) मृत्यु (धावति) दौड़ता है (सा) वह (एषाः) यह (आनन्दस्य) आनन्द का (मीमांसा) विचार (भवति) होता है [यः] जो (साधुयुवा) श्रेष्ठयुवा (युवाऽध्यायिकः) युवा अवस्था में अध्ययन

किया हुआ (आशिष्टः) शिक्षा पाया हुआ (दृढिष्टः) अत्यन्त दृढ़ (बलिष्ठः) अत्यन्त बलवान् (स्यात्) हो (अयम्) यह (वित्तस्य) धनको (पूर्णा) भरी हुई (सर्वा) सकल (पृथिवी) भूमि (तस्य) उस की (स्यात्) हो (सः) वह (एकः) एक (मनुषः) मनुष्य का (आनन्दः) आनन्द है (ते) वह (ये) जो (शतम्) सैकड़ों (मनुषः) मनुष्य के (आनन्दाः) आनन्द हैं (सः) वह (मनुष्यगन्धर्वाणाम्) मनुष्यगन्धर्वोंका (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (अकामहतस्य) विषयभोग की कामना से रहित (श्रोत्रियस्य-च) ज्ञानी का भी है (ते) वह (ये) जो (शतम्) सैकड़ों (मनुष्यगन्धर्वाणाम्) मनुष्यगन्धर्वों के (आनन्दाः) आनन्द हैं (सः) वह (देवगन्धर्वाणाम्) देवगन्धर्वों का (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (अकामहतस्य) विषयभोग की कामना से रहित (श्रोत्रियस्य-च) वेदवेत्ता ज्ञानी का भी है (ते) वह (ये) जो (देवगन्धर्वाणाम्) देवगन्धर्वों के (शतम्) सैकड़ों (आनन्दाः) आनन्द हैं (सः) वह (चिरलोकलोकानाम्) चिरलोकवासी (पितॄणाम्) पितरों का (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (अकामहतस्य) कामनारहित (श्रोत्रियस्य च) ज्ञानी का भी है (ते) वह (ये) जो (चिरलोकलोकानाम्) चिरलोकवासियों के (शतम्) सैकड़ों (आनन्दाः) आनन्द हैं (सः) वह (अजानजा-

नाम्)स्मार्त्त कर्मसे देवयोनि पानेवाले (देवानाम्) देवताओंके (शतम्) सैकड़ों (आनंदाः) आनन्द हैं [सः] वह (कर्मदेवानाम्) कर्मदेवों का (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (ये) जो (कर्मणा) कर्म करके (देवान्) देवताओं को (अपि) भी (यन्ति)प्राप्त होते हैं (अकामहतस्य) कामना रहित (श्रोत्रियस्य च) ज्ञानी का भी है (ते) वह (ये) जो (कर्मदेवानाम्) कर्मदेवों के (शतम्) सैकड़ों (आनन्दाः) आनन्द हैं (सः) वह (देवानाम्) देवताओं का (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (अकामहतस्य) कामना रहित (श्रोत्रियस्य-च) ज्ञानी का भी है (ते) वह (ये) जो (देवानाम्) देवताओं के (शतम्) सैकड़ों (आनन्दाः) आनन्द हैं (सः) वह (इन्द्रस्य) इन्द्रका (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (अकामहतस्य) कामनारहित (श्रोत्रियस्य-च) ज्ञानीका भी है (ते) वह (ये) जो (इन्द्रस्य) इन्द्रके (शतम्) सैकड़ों (आनन्दाः) आनन्द हैं (सः) वह (बृहस्पतेः) बृहस्पतिका (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (अकामहतस्य) कामना रहि (श्रोत्रियस्य च) ज्ञानीका भी है (ते) वे (ये) जो (बृहस्पतेः) बृहस्पतिके (शतम्) सैकड़ों (आनन्दाः) आनन्द हैं (सः) वह (प्रजापतेः) प्रजापतिका (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (अकामहतस्य) कामनारहित (श्रोत्रियस्य च) ज्ञानीका भी है (ते,

वह (ये) जो (प्रजापतेः) प्रजापतिके (शतम्) सैकड़ों (आनन्दाः) आनन्द हैं (सः) वह (ब्रह्मणः) ब्रह्म का (एकः) एक (आनन्दः) आनन्द है (अकामहतस्य) कामनारहित (श्रोत्रियस्य-च) ज्ञानीका भी है (सः) वह (यः) जो (अयम्) यह (पुरुषे) पुरुषमें है (च) और (यः) जो (असौ) यह (आदित्ये) आदित्यमें है (सः) वह (एकः) एक है (यः) जो (एवम्-वित्) ऐसा जानता है (सः) वह (अस्मात्) इस (लोकात्) लोकसे (प्रेत्य) गमन करके (एतम्) इस (अन्नमयम्) अन्नमय (आत्मानम्) आत्माको (उपसंक्रामति) लाँघता है (एतम्) इस (प्राणमयम्) प्राणमय (आत्मानम्) आत्माको (उपसंक्रामति) लाँघता है (एतम्) इस (मनोमयम्) मनोमय (आत्मानम्) आत्मा आत्माको (उपसंक्रामति) लाँघता है (एतम्) इस (विज्ञानमयम्) विज्ञानमय (आत्मानम्) आत्माको (उपसंक्रामति) लाँघता है (एतम्) इस (आनन्दमयम्) आनन्दमय (आत्मानम्) आत्मा को (उपसंक्रामति) लाँघता है (तत्-अपि) तिस विषयमें भी (एषः) यह (श्लोकः) श्लोक(भवति) होता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)-इसके भयसे वायु चलता है, इसके भयसे सूर्य उदित होता है, इसके भयसे अग्नि चन्द्रमा और पांचवाँ मृत्यु दौड़ता है अर्थात् यह

सब आत्मा २ काम करते हैं। जिस ब्रह्मके आनन्द का यह विचार है, मान लो कि-एक वेदवेत्ता, माता पितासे शिक्षा पाया हुआ दृढ और बलवान् शरीर वाला सुन्दर युवा पुरुष है, और यह द्रव्यसे भरी हुई सम्पूर्ण पृथिवी उसकी है, ऐसे युवाका आनन्द मनुष्यका एक पूर्ण मात्राका आनन्द है, मनुष्योंके ऐसे जो सैकड़ों आनन्द हैं, वह कर्म ज्ञानसे गन्धर्व पदको पाये हुये मनुष्यगन्धर्वका एक मात्राका आनन्द है, कामनासे रहित वेदवेत्ता ज्ञानी पुरुषका भी यह आनन्द है, मनुष्यगन्धर्वोंके सैकड़ों आनन्दोंका एक आनन्द देवगन्धर्वका है, कामनाहीन ज्ञानीको भी यह आनन्द होता है, देवगन्धर्वोंके सैकड़ों आनन्दोंका चिरलोकवासी पितरोंका एक आनन्द है [जिनका निवासस्थान चिरकाल पर्यन्त रहे उनको चिरलोकवासी कहते हैं] कामनाहीन ज्ञानीका भी यह आनन्द है चिरलोकवासी पितरोंके सैकड़ों आनन्दोंका स्मार्तकर्मसे देवयोनि पाने वाले आजानज देवताओंका एक आनन्द है, कामनारहित ज्ञानी का भी यह आनन्द है, आजानज देवताओंके सैकड़ों आनन्दोंकी समान अग्निहोत्र आदि वैदिककर्मसे देवयोनि पानेवाले कर्मदेवताओंका एक आनन्द है, कामनायुक्त ज्ञानीका भी यह आनन्द है, कर्मदेवताओंके सैकड़ों आनन्दोंकी समान यज्ञ आदि वैदिक देवताओंका एक आनन्द है, निष्काम ज्ञानीका भी

यह आनन्द है, अन्य देवताओंके सैकड़ों आनन्दोंकी समान देवराज इन्द्रका एक आनंद है, निष्काम ज्ञानी का भी ऐसा ही आनन्द है, इन्द्रके सैंकड़ों आनन्दों की समान देवगुरु बृहस्पतिका पूर्णमात्राका एक आनन्द है. निष्काम ज्ञानीका भी ऐसा ही आनन्द है, बृहस्पतिके सैकड़ों आनन्दोंकी समान प्रजापतिका एक आनन्द है, भोगविलासकी तृष्णासे रहित ज्ञानी का भी ऐसा ही आनन्द है, प्रजापतिके सैकड़ों आनन्दोंकी समान ब्रह्मका एक आनन्द है, विषयोंकी तृष्णासे रहित वेदवेत्ताका भी ऐसा ही आनन्द है, यह जो आत्मा मनुष्यमें है और जो आत्मा आदित्यमण्डलमें है, दोनों एक ही हैं, जो साधक इस तत्वको जानता है, वह इस लोकसे चलकर इस अन्नमय शरीरको लांघता है, पूर्वोक्त प्राणमय शरीर को लांघता है, पूर्वोक्त मनोमय शरीरको उल्लंघन करता है, पूर्वोक्त विज्ञानमय शरीरको उल्लंघन करता है और आनन्दमय शरीरको भी उल्लंघन करके पञ्चकोशातीत निर्विकार शुद्ध ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, इस विषयमें भी यह अगला मंत्र कहा है ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कुतश्चनेति। तꣳ ह वाव न तपति । किमहꣳ साधु नाकं-

रवम् । किमहं पापमकरवमिति स य एवं विद्वानेते आत्मानँ स्पृणुते । उभे ह्येवैष एते आत्मानँ स्पृणुते । य एवं वेद इत्युपनिषत् ॥ ९॥

अन्वय और पदार्थ-(यतः) जिससे (मनसा सह) मन करके सहित (वाचः) वाणियें (अप्राप्य) न पाकर (निवर्त्तन्ते) लौट आती हैं (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (आनन्दम्) आनन्दको (विद्वान्) जानने वाला (कुतश्चन) किसीसे भी (न) नहीं (बिभेति) डरता है (इति) ऐसा जाननेवाले (तम्) तिसको (अहम्) मैं (साधु) सत्कर्मको (किम्) क्यों (न) नहीं (अकरवम्) करताहुआ (अहम्) मैं (पापम्) पापकर्मको (किम्) क्यों (अकरवम्) करता हुआ (इति) यह पश्चात्ताप (वाव-ह) अविद्वान् पुरुषकी समान (न) नहीं (तपति) ताप देता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (विद्वान्) जानता है (सः) वह (एते) इन दोनोंको (आत्मानम्) आत्मस्वरूप [दृष्ट्वा] देखकर (स्पृणुते) तृप्त होता है (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (एषः-एव) वह ही (हि) निश्चय (एते) इन दोनोंको (आत्मानम्) आत्मस्वरूप (दृष्ट्वा) देखकर (स्पृणुते) तृप्त होता है (इति) इसप्रकार (उपनिषत्) उपनिषद् [उक्ता] कहागया है ॥ ९ ॥

(भावार्थ)-जिस निर्विकल्प, अद्वैत आनन्दरूप

आत्मासे, सविकल्प वस्तुओंको विषय करनेवाली और वस्तुओंकी समतासे निर्विकल्प ब्रह्ममें वक्ताओं की योजना कोहुई वाणियें न पाकर अर्थात् अपनी सामर्थ्यसे हीन होकर मनसहित लौट आती हैं ऐसे ब्रह्मके आनन्दको पूर्वोक्त प्रकारसे जाननेवाला पुरुष किसीसे भी भय नहीं पाता है। मैंने सत्कर्म क्यों नही किये ? ऐसा मरणकाल समीप आनेके समयका सन्ताप और मैंने पाप कर्म क्यों किये ? ऐसा नरकमें गिरने आदिके भयका सन्ताप यह दोनों जैसे अज्ञानीको दुःख देते हैं, तैसे इस ज्ञानीको नहीं तपाते, क्योंकि–जो ऐसा ज्ञानी है वह इन दोनों तापोंके हेतु शुभ अशुभ कर्मोंको आत्मभावसे देख कर अपनेको तृप्त करता है क्योंकि–इस प्रकार इन दोनों पुण्य पापको यह विद्वान् इनके सांसारिक स्वरूपसे शून्य करके आत्मस्वरूप देखता है, इस कारण इसको पुण्य पाप ताप नहीं देते हैं, जो ऐसा जानता है अद्वैत आनन्दरूप ब्रह्मको जानकर तृप्त होता है, उसके आत्मभावसे देखेहुए पुण्य पाप, तापदेना रूप फलसे हीन होनेके कारण जन्मके आ-रम्भकर्त्ता नहीं होते अर्थात् वह ज्ञानी मुक्त होजाता है, इस प्रकार इस ब्रह्मानन्दवल्लीमें ब्रह्मविद्यारूप उपनिषद् अर्थात् सकल विद्याओंका परम रहस्य कहागया ॥ ६ ॥

इति नवमोऽनुवाकः। द्वितीया ब्रह्मानन्दवल्ली समाप्ता।

अथ तृतीया भृगुवल्ली

॥ हरिः ॐ ॥ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इसकी व्याख्या पीछे ब्रह्मानन्दवल्लीके आरम्भमें करचुके हैं ।

भृगुर्वै वारुणिः । वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तस्मा एतत्प्रोवाच । अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति । तꣳ होवाच । यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वै) प्रसिद्ध (वारुणिः) वरुणका पुत्र (भृगुः) भृगु (भगवः) हे भगवन् ! (ब्रह्म) वेदको (अधीहि-अध्यापय) पढाओ (इति) ऐसा कहता हुआ (पितरम्) पिता (वरुणम्) वरुणको (उपससार) समीपमें प्राप्त हुआ [सः] वह वरुण (तस्मै) तिसके अर्थ (प्रोवाच) बोला (अन्नम्) अन्नमय शरीरको (प्राणम्) प्राणको

(चक्षुः) नेत्रको (श्रोत्रम्) कर्णको (मनः) मन को (वाचम्) वाणीको [एतानि] इन [सर्वाणि] सबको [ब्रह्मोपलब्धेः] ब्रह्मप्राप्ति के [द्वाराणि] द्वारोंको [जानीहि] जान (इति) इस प्रकार (तस्मै ह) उसको ही (उवाच) बोला (यतः) जिससे (वै) प्रसिद्ध (इमानि) यह (भूतानि) भूत (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं (जातानि) उत्पन्न हुए (येन) जिस करके (जीवन्ति) जीवित रहते हैं (यत्) जिसमें (प्रयन्ति) प्रवेश करते हैं (अभिसंविशन्ति) तदात्मभावसे लीन होते हैं (तत्) उसको (विजिज्ञासस्व) विशेषरूप से जानने की इच्छा कर (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इस प्रकार (सः) वह (तपः) तपको (अतप्यत) तपता हुआ (सः) वह (तपः) तपको (तप्त्वा) तप करके ॥ १ ॥

(भावार्थ)—भृगु नामसे प्रसिद्ध वरुणका पुत्र ब्रह्मको जाननेका अभिलाषी होकर पिता वरुणके समीप गया और कहने लगा कि–हे भगवन् ! मुझे ब्रह्मविद्या पढ़ाओ, जिससे ब्रह्मका ज्ञान हो, यह सुनकर वरुणने पुत्रसे कहा कि–अन्नमय शरीर और इसके भीतरके प्राण तथा ज्ञानके साधन नेत्र कर्ण मन और वाणी इनको ब्रह्मज्ञानका द्वार जान और फिर भृगुसे ब्रह्मका लक्षण इस प्रकार कहा, कि–यह प्रसिद्ध ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्त सकल

भूत जिससे उपजते हैं, उपजने पर जिसकी सत्ता से जीवित रहते हैं और समाप्तिकालमें जिसमें जाकर तत्स्वरूप हुए लीन होजाते हैं अर्थात् तीनों कालमें जीव जिसके स्वरूपभावको नहीं त्यागते, यह ही ब्रह्मका लक्षण है, उसको तू विशेषरूप से जाननेका यत्न कर अर्थात् उसको अन्नमय शरीर आदिके द्वारा जान, वह भृगु इसप्रकार पितासे ब्रह्म का लक्षण और उसकी प्राप्तिके द्वारको सुन कर लक्ष्य ब्रह्मका विचार रूप तप करने लगा और यह विचार करनेके अनन्तर ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

अन्नं ब्रह्मेति व्यजनात् । अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । अन्नेन जातानि जीवन्ति । अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विज्ञाय । पुनरेव वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तं होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा २

अन्वय और पदार्थ–(अन्नम्) अन्न (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (व्यजानात्) जानता हुआ (हि) क्योंकि–(खलु) निश्चय (इमानि) यह (भूतानि) भूत (अन्नात् एव) अन्नसे ही (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं (जातानि) उत्पन्न हुए (अन्नेन) अन्न करके (जीवन्ति) जीते हैं (अ-

न्नम्) अन्नको (प्रयन्ति) प्राप्त होते हैं (अभिसंविशन्ति) प्रवेश करते हैं (इति) इसप्रकार (तत्) उसको (विज्ञाय) जानकर (पुनः-एव) फिर भी (पितरम्) पिता (वरुणम्) वरुणको (अभिससार) समीप जाता हुआ (भगवः) भगवन् (ब्रह्म) ब्रह्मको (अधीहि) पढ़ाओ (इति) ऐसा कहा (तम्) उस भृगु को (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (तपसा) तप करके (ब्रह्म) ब्रह्मको (विजिज्ञासस्व) विशेष करके जान (तपः) तप (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इस कारण (सः) वह (तपः) तपको (अतप्यत) तपता हुआ (सः) वह (तपः) तप को (तप्त्वा) तपकर ॥ २ ॥

(भावार्थ)-जानसका कि-अन्न ब्रह्म है, क्योंकि अन्नसे ही यह सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्नसे ही जीवन धारण करते हैं, और फिर अन्नमें ही जाकर प्रवेश कर जाते हैं, यह सब जानकर उसने फिर पिता वरुणके पास जाकर कहा कि-हे भगवन् मुझको ब्रह्मके विषयकी शिक्षा दो, पिताने कहा कि-इन्द्रियोंकी बाहरी वृत्तियोंको अन्तर्मुख करके मनमें तत्त्वविचार रूप तपसे ब्रह्मको जान, तप ही ब्रह्मज्ञान का साधन है, उसने तप किया और उप करके ॥२॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ।

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् प्राणाद्ध्येव खल्वि-

मानि भूतानि जातानि। प्राणेन जातानि जीवन्ति। प्राणं प्रयन्त्यभिसन्विशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार, अधीहि भगवो ब्रह्मेति, तꣳहोवाच, तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा॥२॥

अन्वय और पदार्थ—(प्राणः) प्राण (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (व्यजानात्) जानता हुआ (हि) क्योंकि (खलु) निश्चय (इमानि) यह (भूतानि) भूत (प्राणात् एव) प्राणसे ही (जातानि) उत्पन्न हुए हैं (जातानि) उत्पन्न हुए (प्राणेन) प्राण करके (जीवन्ति) जीवित रहते हैं (प्राणम्) प्राणको (प्रयन्ति) प्राप्त होते हैं (अभिसंविशन्ति) प्रवेश करते हैं (इति) इसप्रकार (तत्) उसको (विज्ञाय) जानकर (पुनः—एव) फिर भी (वरुणम्) वरुण (पितरम्) पिता को (उपससार) समीप जाता हुआ (भगवः) भगवन् (ब्रह्म) ब्रह्म को (अधीहि) पढ़ाओ (तम्) उस को (इति) इसप्रकार (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (तपसा) तप करके (ब्रह्म) ब्रह्मको (विजिज्ञासस्व) विशेषरूप से जाननेकी इच्छा कर (तपः) तप (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इसकारण (सः) वह (तपः) तपको (अतप्यत) तपता हुआ (सः)

वह (तपः) तपको (तप्त्वा) तप कर ॥ ३ ॥

(भावार्थ)—जानसका कि—प्राण ही ब्रह्म है, क्योंकि–प्राणसे ही यह सब प्राणी जन्मते हैं, जन्म कर प्राणसे ही जीवन धारण करते है और फिर प्राणमें ही जाकर प्रवेश करजाते हैं,ऐसा जान लेनेपर उसने फिर पिता वरुणके पास जाकर कहा कि–हे भगवन् ! मुझको ब्रह्मके विषयमें शिक्षा दीजिये, यह सुनकर पिता ने कहा कि–हे सौम्य ! तपस्याके द्वारा ब्रह्मको जाननेका यत्न कर तप ही ब्रह्मज्ञानका साधन है, उसने तपस्या करो और तपस्या करके ३

इति तृतीयोऽनुवाकः

मनो ब्रह्मेति व्यजानात् । मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । मनसा जातानि जीवन्ति । मनः प्रयन्त्यभिसम्विशन्तीति । तद्विज्ञाय । पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । भगवो ब्रह्मेति । तꣳ होवाच तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ- (मनः) मन (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (व्यजानात्) जानताहुआ (हि) क्योंकि (खलु) निश्चय (मनसः एव) मनसे ही (इमानि) यह (भूतानि) भूत (जायन्ते) उत्पन्न

होते हैं (जातानि) उत्पन्न हुए (मनसा) मन कर के (जीवन्ति) जीवन धारण करते (मनः) मन को (प्रयन्ति) प्राप्त होते हैं (अभिसम्विशन्ति) प्रविष्ट होते हैं (इति) इसप्रकार (तत्) उसको (विज्ञाय) जानकर (पुनः-एव) फिर भी (पितरम्) पिता (वरुणम्) वरुण को (उपससार) समीप जाता हुआ (भगवः) हे भगवन् (ब्रह्म) ब्रह्म को (अधीहि) पढ़ाओ (इति) ऐसा कहने पर (तम्) उसको (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला (तपसा) तप करके (ब्रह्म) ब्रह्मको (विजिज्ञासस्व) विशेषरूप से जानने की इच्छा कर (तपः) तप (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (तपः) तपको (अतप्यत) तपता हुआ (सः) वह (तपः) तपको (तप्त्वा) तपकर ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-जानसका कि-मन ब्रह्म है, क्योंकि-मनसे ही यह प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर मनसे ही जीवन धारण करते हैं और फिर मनमें ही जाकर लीन होजाते हैं. ऐसा जान लेने पर उसने फिर पिता वरुणके पास जाकर कहा कि-हे भगवन्! मुझे ब्रह्मके विषयकी शिक्षा दो, यह सुनकर पिताने कहा कि-तपस्यासे ब्रह्मको जानने का यत्न कर तपस्या ही ब्रह्मज्ञानका साधन है, ऐसा सुनकर उसने तपस्या करी और तपस्या करनेके अनन्तर ४

इति चतुर्थोऽनुवाकः

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति । विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति तꣳहोवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विज्ञानम्) विज्ञान(ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (व्यजानात्) जानता हुआ (हि) क्योंकि (खलु) निश्चय (विज्ञानात्-एव) विज्ञानसे ही (इमानि) यह (भूतानि) भूत(जातानि) उत्पन्न हुए हैं(विज्ञानेन) विज्ञानसे(जीवन्ति) जीवन धारण करते हैं (विज्ञानम्) विज्ञानको (प्रयन्ति) प्राप्त होते हैं (अभिसंविशन्ति)प्रवेश करते हैं (इति) ऐसे (तत्)उसको (विज्ञाय) जानकर (पुनरेव) फिर भी (पितरम्) पिता (वरुणम्) वरुणको (उपससार) समीप जाता हुआ (भगवः) भगवन् (ब्रह्म) ब्रह्मको (अधीहि) पढ़ाओ (इति) ऐसा कहने पर (तम्) उसको (ह)स्पष्ट(उवाच) बोला (तपसा) तप करके (ब्रह्म) ब्रह्मके (विजिज्ञासस्व) विशेषरूप से जाननेकी इच्छा कर (तपः) तप (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा कहने पर (सः) वह (तपः) तपको (अतप्यत) तपता हुआ (सः)

यह (तपः) तपको (तप्त्वा) तपकर ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-जानसका कि-विज्ञानरूप बुद्धि ही ब्रह्म है, क्योंकि-विज्ञानसे ही यह सकल प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर विज्ञानसे ही जीवित रहते हैं, और फिर विज्ञानमें ही जाकर लीन होजाते हैं, ऐसा जान लेनेपर वह फिर पिता वरुणके समीप जाकर कहने लगा कि-हे भगवन् ! ब्रह्म के विषयकी शिक्षा दीजिये, इसपर पिताने कहा कि— तू तपके द्वारा ब्रह्मको जाननेका उद्योग कर, क्यों कि तप ही ब्रह्मज्ञानका साधन है, इसकारण उसने तप किया और तप करनेके अनन्तर ॥ ५ ॥

इति पञ्चमाऽनुवाकः

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् । आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता स य एवं वेद प्रतितिष्ठति अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आनन्दः) आनन्द (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसा (व्यजानात्) जानताहुआ (हि) क्योंकि (खलु) निश्चय (इमानि) यह (भूतानि) भूत (आनन्दात्-एव) आनन्दसे ही

(जायन्ते)उत्पन्न होते हैं (जातानि) उत्पन्नहुए (आनन्देन) आनन्द करके (जीवन्ति) जीवन धारण करते हैं (आनन्दम्) आनन्दको (प्रयन्ति) प्राप्त होते हैं (अभिसंविशन्ति) प्रवेश करते हैं (इति) इसप्रकार (सा) वह (एषा) यह (भार्गवी) भृगुकी जानीहुई (वारुणी) वरुणकी कही हुई (विद्या) विद्या (परमे) परम (व्योमन्) हृद्याकाशमें (प्रतिष्ठिता) स्थित है (या) जो (एतम्) इसको (वेद) जानता है (सः) वह (प्रतितिष्ठति) परब्रह्ममें स्थित होता है (अन्नवान्) विशेष अन्नवाला (अन्नादः)अन्नको खानेमें समर्थ (भवति) होता है (प्रजया) सन्तान करकै (पशुभिः) पशुओं करकै (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज करके (महान्) बड़ा (भवति) होताहै (कीर्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति) होता है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-जानसका कि-आनन्द ही ब्रह्म है, क्योंकि-आनन्दसे ही यह सकल प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनन्दसे ही जीवन धारण करते हैं और आनन्दमें ही जाकर लीन होजाते हैं, इस प्रकारसे भृगुकी जानीहुई और वरुणकी कहीहुई यह ब्रह्मविद्या अन्नमयरूप आत्मासे प्रवृत्त होकर हृदयाकाशकी गुहामें स्थित परमानन्दरूप अद्वैत ब्रह्म में समाप्त हुई है, जो और जिज्ञासु भी इसीप्रकार तपस्यारूप साधना करता है, वह क्रमसे अन्नमयादि

कोशोंमें प्रवेश करके आनन्दरूप ब्रह्मको जानजाता है, और आनन्दरूप ब्रह्ममें तन्मयता पाता है. इस लोक में विशेष अन्नवाला होता है, अन्नको पचानेकी पूर्णशक्तिवाला होता है, वह पुत्र पौत्र आदि सन्तान, हाथी घोड़े आदि पशु और ब्रह्मतेज तथा कीर्त्तिसे बड़ा होता है ॥ ६ ॥

इति षष्ठाऽनुवाकः

अन्नं न निन्द्यात् । तद् व्रतम् । प्राणो वा अन्नम् । शरीरमन्नादम् । प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम् । शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ।

अन्वय और पदार्थ—(अन्नम्) अन्नको (न) नहीं (निन्द्यात्) निन्दा करै (तत्) वह (व्रतम्) व्रत है (वा) या (प्राणः) प्राण (अन्नम्) अन्न है (शरीरम्) शरीर (अन्नादम्) अन्नका खानेवाला है (प्राणे) प्राणमें (शरीरम्) शरीर (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (शरीरे) शरीरमें (प्राणः) प्राण (प्रतिष्ठितः) स्थित है (तत्) सो (एतत्) यह (अन्ने) अन्नमें (अन्नम्) अन्न (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (यः) जो (एतत्) इस (अन्ने) अन्नमें (प्रतिष्ठितम्) स्थित (अन्नम्) अन्नको (वेद) जानता

है (सः) वह (प्रतितिष्ठति) परब्रह्ममें स्थिति पाता है (अन्नवान्) बहुत अन्नवाला (अन्नादः) अन्न भक्षणकी शक्तिवाला (भवति) होता है (प्रजया) सन्तान करके (पशुभिः) पशुओं करके (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज करके (महान्) बड़ा (कीर्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति) होता है ७

(भावार्थ)—इसप्रकार पञ्चकोषोंका विचार करनेवालेके लिये यह नियम है कि-वह अन्नकी निन्दा न करै, क्योंकि-अन्न ब्रह्मज्ञानका साधन है, प्राण ही अन्न है, शरीर अन्नका भोक्ता है, प्राणमें शरीरकी स्थिति है और प्राणकी स्थिति शरीरमें है, इसप्रकार यह अन्न अन्नमें स्थित है, जो इस अन्न में स्थित अन्नको जानता है वह परब्रह्ममें स्थिति पाता है, अन्नवान् अन्नका भोक्ता, सन्तान पशु और ब्रह्मतेजसे बड़ा तथा कीर्त्ति करके भी बड़ा होता है ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः

अन्नं न परिचक्षीत । तद्व्रतम् । आपो वाऽन्नम् । ज्योतिरन्नादम् । अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् । ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठताः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन महान् कीर्त्या ।

अन्वय और पदार्थ—(अन्नम्) अन्नको (न)

नहीं (परिचक्षीत) त्यागै (तत्) यह (व्रतम्) व्रत है (वा) या (आपः) जल (अन्नम्) अन्न है (ज्योतिः) तेज (अन्नादम्) अन्नका भोक्ता है (अप्सु) जलमें (ज्योतिः) तेज (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (ज्योतिषि) तेजमें (आपः) जल (प्रतिष्ठिताः) स्थित है (तत्) सो (एतत्) यह (अन्ने) अन्नमें (अन्नम्) अन्न (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (यः) जो (एतत्) इस (अन्ने) अन्नमें (प्रतिष्ठितम्) स्थित (अन्नम्) अन्नको (वेद) जानता है (सः) वह (प्रतितिष्ठति) ब्रह्ममें स्थिति पाता है (अन्नवान्) अधिक अन्नवाला (अन्नादः) अन्न का भोक्ता (भवति) होता है (प्रजया) सन्तान करकै (पशुभिः) पशुओं करकै (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्म तेज करके (महान्) बड़ा होता है (कीर्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति) होता है ॥ ८ ॥

(भावार्थ)–इसप्रकार पञ्चकोषोंका विचार करने वाले ज्ञानीके लिये नियम है कि–वह अन्नको त्यागै नहीं, क्योंकि–जल ही अन्नरूप है और तेज अन्नका भोक्ता है, क्योंकि–तेज जलमें स्थित है और जल तेजमें स्थित है, सो यह अन्नमें अन्न स्थित है, जो इस अन्नमें स्थित अन्नको जानता है वह ब्रह्ममें तन्मयतारूप स्थितिको पाता है, बहुत अन्नवाला और अन्नको खानेकी शक्तिवाला होता है, संतान पशु और ब्रह्मतेज करके तथा कीर्त्ति करके बड़ा होता है ८

इति अष्टमोऽनुवाकः

अन्नं बहु कुर्वीत । तद् व्रतम् । पृथिवी वाऽन्नम् आकाशोऽन्नादः । पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ।

अन्वय और पदार्थ—(अन्नम्) अन्नको (बहु) बहुत (कुर्वीत) करै (तत्) वह (व्रतम्) व्रत है (वा) वा (पृथिवी) पृथिवी (अन्नम्) अन्न है (आकाशः) आकाश) (अन्नादः) अन्नका भक्षण करनेवाला है (पृथिव्याम्) पृथिवीमें (आकाशः) आकाश (प्रतिष्ठितः) स्थित है (आकाशे) आकाश में (पृथिवी) पृथिवी (प्रतिष्ठिता) स्थित है (तत्) सो (एतत्) यह (अन्ने) अन्नमें (अन्नम्) अन्न (प्रतिष्ठितम्) स्थित है (यः) जो (एतत्) इस (अन्ने) अन्नमें (प्रतिष्ठितम्) स्थित (अन्नम्) अन्नको (वेद) जानता है (प्रतितिष्ठति) ब्रह्ममें स्थिति पाता है (अन्नवान्) बहुत अन्नवाला (अन्नादः) अन्नको खानेकी शक्तिवाला (भवति) होता है (प्रजया) संतान करकै (पशुभिः) पशुओं करकै (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज करकै (महान्) बड़ा (कीर्त्या) कीर्त्ति करके (महान्) बड़ा (भवति) होताहै।

(भावार्थ)-इसप्रकार विचार करनेवाले ज्ञानी के लिये नियम है कि-अन्नकी प्रतिष्ठा करे, क्योंकि पृथिवी ही अन्न है, आकाश उस अन्नका भोक्ता है, पृथिवीमें आकाश स्थित है और आकाशमें पृथिवी स्थित है, इसप्रकार यह अन्न अन्नमें स्थित है, जो इस अन्नमें स्थित अन्नको जानता है वह ब्रह्ममें तन्मयतारूप स्थितिको पाता है, विशेष अन्न वाला और अन्नको खानेकी सामर्थ्यवाला होता है, पुत्र पौत्र आदि संतान, हाथी घोड़े आदि पशु और ब्रह्मतेज करके बड़ा तथा कीर्ति करके भी बड़ा होताहै

न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत । तद्व्रतम् तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्॥ अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते । एतद्वै मुखतोऽन्नꣳराद्धम् । मुखतोऽस्माऽअन्नꣳराध्यते । एतद्वै मध्यतोऽन्नꣳराद्धम् । मध्यतोस्मा अन्नꣳराध्यते एतद्वा अन्ततोऽन्नꣳराध्यम्। अन्ततोऽस्मा अन्नꣳराध्यते । य एवं वेद । क्षेम इति वाचि । योगक्षेम इति प्राणापानयोः । कर्मेति हस्तयोः । गतिरिति पादयोः । विमुक्तिरिति पायौ । इति मानुषीः समाज्ञाः । अथ दैवीः । तृप्तिरिति वृष्टौ । बलमिति विद्युति । यश इति

पशुषु । ज्योतिरिति नक्षत्रेषु । प्रजापतिरमृत-मानन्द इत्युपस्थे सर्वमित्याकाशे । तत्प्रतिष्ठेत्यु-पासीत । प्रतिष्ठा भवति । तन्मह इत्युपासीत । महान् भवति । तन्मन इत्युपासीत । मानवान् भवति । तन्नम इत्युपासीत । नम्यन्तेऽस्मै-कामाः । तद् ब्रह्मेत्युपासीत । ब्रह्मवान् भवति । तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत । पर्येणं म्रिय-न्ते द्विषन्तः सपत्नाः परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः । स यश्चायं पुरुषे । यश्चासावादित्ये । स एकः । स य एवं वित् अस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्न-मयमात्मानमुपसंक्रम्य ॥ एतं प्राणमयमात्मा-नमुपसंक्रम्य । एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य । इमांल्लो-कान् कामान्नी कामरूप्यनुसञ्चरन् । एतत्साम गायन्नास्ते । हा ३ वु हा ३ वु हा ३ वु ॥ अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादोऽहम-न्नादोऽहमन्नादः । अहꣳश्लोककृदहꣳश्लो-ककृदहꣳश्लोककृत् ॥ अहमस्मि प्रथमजा ऋ-ताऽस्य । पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना३ भायि । यो मा ददाति स इदेव मा ३ वाः अहमन्नमन्न-

मदन्तम ३ द्वि । अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां३।
सुवर्णज्योतिः । य एवं वेद इत्युपनिषत् १०

अन्वय और पदार्थ-(वसतौ) निवासके विषयमें (कञ्चन) किसीको भी (न) नहीं (प्रत्याचक्षीत) निषेध करै (तत्) यह (व्रतम्) व्रत है (तस्मात्) तिस कारण (यया कया) जिस किसी (विधया) प्रकारसे (बहु) बहुतसा (अन्नम्) अन्न (प्राप्नुयात्) पावै (अस्मै) इसके अर्थ (अन्नम्) अन्न (अराधि) सिद्ध होगया (इति) ऐसा (आचक्षते) कहते हैं (एतत्) यह (वै) प्रसिद्ध (अन्नम्) अन्न (मुखतः) प्रथम अवस्था में वा श्रेष्ठरूपसे (राद्धम्) निवेदन किया (अस्मै) इसके अर्थ (अन्नम्) अन्न (मुखतः) प्रथम अवस्थामें वा मुख्यभावसे (राध्यते) सिद्ध होता है (एतत्) यह (वै) प्रसिद्ध (अन्नम्) अन्न (मध्यतः) मध्य अवस्थामें वा मध्यम वृत्तिसे(राद्धम्) दिया (अस्मै) इसके अर्थ (अन्नम्) अन्न (मध्यतः) मध्य अवस्थामें वा मध्यम वृत्तिसे (राध्यते) सिद्ध होता है (वा) या (एतत) यह (अन्नम्) अन्न (अन्ततः) अन्तावस्थामें वा अधमभावसे (राद्धम्) दिया (अस्मै) इसके अर्थ (अन्ततः) अन्तावस्था में वा अधमभावसे (राध्यते) सिद्ध होता है (यः) जो (एवम्) इस प्रकार (वेद) जानता है [सः] वह [उक्तम्] कहे हुए [फलम्] फलको [आप्नोति]

पाता है (क्षेमः) क्षेम (वाचि) वाणीमें है (इति) इस प्रकार (योगक्षेम) अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिरूप क्षेम और प्राप्त वस्तुकी रक्षारूप योग (प्राणापानयोः) प्राण और अपानमें है (इति) इसप्रकार (कर्म) कर्म (हस्तयोः) हाथोंमें हैं (इति) इस प्रकार (गतिः) गति (पादयोः) चरणोंमें है (इति) इस प्रकार (विमुक्तिः) त्याग (पायौ) गुदामें है(इति) यह (मानुषीः) मनुष्यसम्बन्धी (समाज्ञाः) उपासना हैं (अथ) अब (दैवीः) देवसम्बन्धी [कथ्यन्ते] कही जाती हैं (तृप्तिः) तृप्ति (वृष्टौ) वर्षामें हैं (इति) इसप्रकार (बलम्) बल (विद्युति) विजुली में है (इति) इसप्रकार (यशः) यश (पशुषु) पशुओंमें है (इति) इसप्रकार (ज्योतिः) ज्योति (नक्षत्रेषु) तारागणोंमें है (इति) इसप्रकार(प्रजापतिः) सन्तानोत्पत्ति (अमृतम्) अमरभाव (आनन्दः) आनन्द (उपस्थे) जननेन्द्रियमें है (इति) इसप्रकार (सर्वम्) सब (आकाशे) आकाशमें है (इति) इसप्रकार (तत्) वह (प्रतिष्ठा)आधार है (इति) इसप्रकार (उपासीत) उपासना करै (प्रतिष्ठावान्) प्रतिष्ठावाला (भवति) होता है (तत्) वह (महः) महत् है (इति) इसप्रकार (उपासीत) उपासना करै (महान्) बड़ा(भवति) होता है (तत्) वह (मनः) मन है (इति) इस प्रकार (उपासीत) उपासना करै (मानवान्) मन-

नवाला (भवति) होता है (तत्) वह (नमः) नमनगुणवाला है (इति) ऐसी (उपासीत) उपा- उपासना करै (अस्मै) इसके अर्थ (कामाः) विषय- भोग (नम्यन्ते) नमते हैं (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) ऐसी (उपासीत) उपासना करै (ब्रह्मवान्) व्यापकतावाला (भवति) होता है (तत्) वह (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (परिमरः) परिमर है (इति) ऐसी (उपासीत) उपासना करै (द्विषन्तः) द्वेष करने वाले (सपत्नाः) शत्रु (पर्येण) चारों ओरसे (म्रियन्ते) मरते हैं (ये) जो (अप्रियाः) अप्रिय (भ्रातृव्याः) द्वेषी हैं(परि) चारों ओरसे मरते हैं (च) और (यः) जो (अ- यम्) वह (पुरुषे) पुरुषमें है (सः) वह (च) और (यः) जो (असौ) यह (आदित्ये) आदि- त्यमें है (सः) वह (एकः) एक है । (यः) जो (एवम्वित्) ऐसा जानता है (सः) वह (अ- स्मात्) इस (लोकात्) लोकसे (प्रेत्य) गमन कर के (एतम्) इस (अन्नमयम्) अन्नमय (आत्मा- नम्) शरीरको (उपसंक्रम्य) लांघकर (एतम्) इस (प्राणमयम्) प्राणमय (आत्मानम्) शरीरको (उपसंक्रम्य) लांघकर (एतम्) इस (मनोमयम्) मनोमय (आत्मानम्) शरीरको (उपसंक्रम्य) लांघ कर (एतम्) इस (विज्ञानमयम्) विज्ञानमय (आत्मानम्) शरीरको (उपसंक्रम्य) लाँघ कर

(एतम्) इस (आनन्दमयम्) आनन्दमय (आत्मानम्) कोशको (उपसंक्रम्य) लांघकर (इमान्) इन (लोकान्) लोकोंको (कामान्नी) इच्छानुसार अन्नवाला (कामरूपी) इच्छानुसार रूपवाला (अनुसञ्चरन्) विचरता हुआ (एतत्) इस (साम) सामको (गायन्) गाता हुआ (आस्ते) होता है (हा३वु, हा३वु, हा३वु,) परम आश्चर्य है, परम आश्चर्य है, परम आश्चर्य है. (अहम्-अन्नम्, अहम्-अन्नम्, अहम्-अन्नम्) मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूँ, (अहम्-अन्नादः, अहम् अन्नादः, अहम्-अन्नादः) मैं अन्न का भोक्ता हूँ, मैं अन्नका भोक्ता हूँ, मैं अन्नका भोक्ता हूँ, (अहम्-श्लोककृत, अहम्-श्लोककृत, अहम्-श्लोककृत) मैं अन्न और अन्नादका कर्त्ता हूँ, मैं अन्न और अन्नादका कर्त्ता हूँ, मैं अन्न और अन्नादका कर्त्ता हूँ (अहम्) मैं (ऋता३स्य) मूर्त्त अमूर्त्त इस जगत्का (प्रथमजः) पहिले उत्पन्न हुआ (अस्मि) हूँ (देवेभ्यः) देवताओंसे (पूर्वम्) पहिले (अमृतस्य) अमरभावका (ना३भायि) नाभिरूप (अस्मि) हूं (यः) जो (माम्) मुझको (ददाति) देता है (सः) वह (इत्-एव) इतनेसे ही (मा) मुझको (अवाः) रक्षा करता है(अहम्) मैं (अन्नम्) अन्न हूँ (अन्नम्) अन्नको (अदन्तम्) भक्षण करनेवालेको (अद्मि) खाता हूँ (अ-

हम्) मैं (विश्वम्) सकल (भुवनम्) भुवनको (अभ्यभवाम्) संहार करता हूँ (सुवर्णज्योतिः) मैं सूर्यकी समान प्रकाशवान् हूँ (यः) जो (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है (इति) यह (उपनिषद्) उपनिषद् है ॥ १० ॥

(भावार्थ)–ठहरनेके निमित्त आये हुए किसी को निषेध न करै, यह व्रत है, इसकारण किसी न किसी प्रकारसे बहुतसा अन्न इकट्ठा करै, सज्जन गृहस्थको चाहिये कि–वह अभ्यागतसे कहै कि— मैंने भोजन तयार कर लिया है, जो प्रथम अवस्था में वा परम आदरके साथ यह सिद्ध करा हुआ अन्न अभ्यागतको अर्पण करता है उसके पास अन्न भी प्रथम अवस्थामें वा परम आदरके साथ प्राप्त होता है,जो मध्य अवस्थामें वा मध्यम भावसे अन्न देता है, उसको मध्य अवस्थामें वा मध्यम भावसे अन्न प्राप्त होता है और जो अन्तिम अवस्थामें वा अधमभावसे अन्न देता है उसको भी अन्त अवस्था में वा अधमभावसे अन्न प्राप्त होता है, जो ऐसा जानता है वह पीछे कही हुई रीतिसे ब्रह्मकी उपासना करता है । ब्रह्म वाणीमें क्षेम रूपसे स्थित है, ऐसी उपासना करै, अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिरूप योग और प्राप्तकी रक्षारूप क्षेम इन दोनों रूपसे ब्रह्म प्राण और अपानमें कहिये श्वास और प्रश्वास में स्थित है; दोनों हाथोंमें कर्मरूपसे है, चरणोंमें गति

रूपसे है, गुदामें मलको त्यागनेकी शक्तिरूपसे है ऐसी उपासना करै, यह मनुष्यसम्बन्धी ब्रह्मकी उपासना है। अब देवतासम्बंधी उपासना कहते हैं कि—वर्षामें ब्रह्म तृप्तिरूपसे स्थित है क्योंकि—वर्षासे अन्नादि उत्पन्न होने पर सब शरीरी तृप्त होजाते हैं, बिजलीमें बलरूपसे है, पशुओंमें कीर्त्ति रूपसे हैं, तारागणोंमें प्रकाशरूपसे है, जननेंद्रियमें संतानोत्पत्तिरूपसे और पुत्र पौत्र उत्पन्न होने के कारण पितृऋणके दूर होनेसे अमरभावकी प्राप्तिरूप तथा आनन्दरूप है ऐसी उपासना करै, ब्रह्म विश्वरूप है और वह विश्व आकाशमें स्थित है, इसकारण आकाशमें सर्वरूपसे स्थित है; आकाश ब्रह्म ही है इसकारण वह सबका प्रतिष्ठा कहिये आधार है, ऐसी उपासना करै, जो ऐसी उपासना करता है वह प्रतिष्ठावान् होता है, क्योंकि—उस ब्रह्मकी जिस भावसे उपासना कीजाती है, वैसा ही फल होता है, ब्रह्म बड़ा है, इस भावसे उपासना करनेवाला बड़ा होता है, ब्रह्म मनःस्वरूप है, ऐसी उपासना करनेवाला मनन करनेकी शक्ति पाता है, जो नमन गुणवाला मानकर उपासना करता है, उस के पास भोगके विषय आकर नमते हैं। जो उसकी ब्रह्मस्वरूपसे उपासना करताहै वह व्यापकपना पाता है जिसमें बिजली, वर्षा, चन्द्रमा सूर्य और अग्नि यह पाँच देवता मरते हैं उस वायुको परिमर कहतेहैं, वह वायु आकाशसे भिन्न न होनेके कारण आकाश

का परिमर है, जो परिमरकी आकाशरूपसे उपासना करता है उससे द्वेष करनेवाले शत्रु चारों ओरसे मरजाते हैं और जो उसके अप्रिय एवं डाह करने वाले होते हैं वह भी चारों ओरसे मरजाते हैं, यह जो आत्मा शरीरमें है और यह जो आत्मा आदित्य-मण्डलमें है, यह दोनों एकही हैं, जो ऐसा जानता है वह इस अन्नमय शरीरको लांघकर इस प्राणमय शरीरको लांघकर, इस मनोमय शरीरको लांघकर, इस विज्ञानमय शरीरको लाँघकर और इस आनन्द-मय शरीरको भी लांघकर अर्थात् अविद्याकल्पित शरीरोंको त्यागकर सत्य ज्ञान अनन्त आदि धर्मवाले आनन्दस्वरूप अजन्मा अमृतमय, अद्वैत ब्रह्मरूप फलको पाकर इच्छानुसार अन्नको पानेवाला और इच्छानुसार रूपोंको धारण करनेवाला होकर इन पृथिवी आदि लोकोंमें विचरता हुआ अर्थात् सर्वात्म रूपसे इन लोकोंको आत्मस्वरूप करके अनुभव करता हुआ इस आगे लिखे सामका गान करता रहता है कि—अहो बड़ा आश्चर्य है ! बड़ा आश्चर्य है क्योंकि—अद्वैत आत्मरूप निरञ्जन हुआ भी, मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं, मैं अन्नका भोक्ता हूं, मैं अन्न का भोक्ता हूं, मैं अन्नका भोक्ता हूं, कार्यकारण रूप कहिये अन्न और अन्नादरूप संघातका कर्त्ता चेतनावान् मैं ही हूं, । मूर्त्त अमूर्त्तरूप जगत् के प्रथम उत्पन्न हुआ हिरण्यगर्भ मैं ही हूं और

व्यष्टिरूप देवताओंसे प्रथम विराट्रूप तथा 'अमृत-नाभि मैं ही हूं, अर्थात् सब प्राणियों का अमृतभाव मुझमें ही स्थित है, जो कोई मुझ अन्नको अन्नके अभिलाषीके निमित्त देता है, वह मानो इसप्रकार मेरी रक्षा करता है और जो कोई पुरुष मुझ अन्नको समय पर आयेहुए अतिथिको अर्पण न करकै अपने आप ही मुझ अन्नको खाता है उस अन्न भक्षण करनेवाले पुरुषको उलटा मैं अन्न ही भक्षण करजाता हूं, क्योंकि-ब्रह्मादिकोंसे भोगने योग्य वा जिसमें सकल भूत रहते हैं ऐसे भवनका मैं ही रुद्ररूपसे संहार करता हूं, मैं सूर्यकी समान सदाकाल ज्योतिःस्वरूप हूं, यह वर्णन उपनिषद् कहिये परमात्माका ज्ञान है, जो कोई अन्य मुमुक्षु भी शान्त दान्त, उपरत, सहनशील और सावधान होकर भृगुकी समान बड़ाभारी तप करकै इस उप-निषद्के रहस्यको इसीप्रकार जानता है, उसको भी यही फल प्राप्त होता है ॥ १० ॥

इति दशमोऽनुवाकः

इति श्री अथर्ववेदीय तैत्तिरीय उपनिषद् का मुरादाबादनिवासी भारद्वाजगोत्र-गौड़वंश्य-पण्डित भोलानाथात्मज सनातन-धर्मपताकासम्पादक-श्री० कु० रामस्वरूप शर्मा कृत अन्वय पदार्थ और भाषा भावार्थ समाप्त

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

—०—

ॐ तत्सत्

ऋग्वेदीया

ऐतरेयोपनिषद्

प्रथम—अध्याय

इतरा नामक माताके पुत्र ऐतरेय ऋषि ने शिष्यों को पढ़ाकर प्रचार किया, इस कारण इसका नाम ऐतरेय उपनिषद् है ।

॥ हरिः ॐ ॥ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत् किञ्चन मिषत् । स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ—(वै) प्रसिद्ध (इदम्) यह (जगत्) जगत् (अग्रे) पहिले (एकः) एक (आत्मा एव) आत्मा ही (आसीत्) था (अन्यत्) और (किञ्चन) कुछ भी (मिषत्) व्यापारवाला (न) नहीं था (सः) वह (नु) क्या (लोकान्) लोकोंको (सृजै) रचूं (इति) ऐसा (ईक्षत) विचार करता हुआ ॥ १ ॥

(भावार्थ) यह नामरूपात्मक जगत्, उत्पत्ति

से पहिले अद्वैतरूप एक आत्मा ही था, और कुछ भी व्यापारवाला नहीं था, उसने विचार किया कि-क्या मैं इन लोकोंको उत्पन्न करूँ ॥ १ ॥

स इमाँल्लोकानसृजत। अम्भो मरीचिर्मरमापो ऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ (सः) वह (अम्भः) अम्भ (मरीचिः) मरीचि (मरम्) मर (आपः) आप (इमान्) इन (लोकान्) लोकोंको (असृजत) रचता हुआ (अदः) यह (अम्भः) अम्भ (दिवम् परेण) स्वर्गलोकसे पर (प्रतिष्ठा) आधाररूप (द्यौः) द्युलोक है (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (मरीचयः) मरीचि है (पृथिवी) पृथिवी (मरः) मर है (याः) जो (अधस्तात्) नीचे हैं (ताः) वह (आपः) आप हैं ॥ २ ॥

(भावार्थ)-उसने अम्भ, मरीचि, मर और आप इन लोकोंको रचा, जो कि-जलको धारण करता है वह स्वर्गलोकसे परे अम्भः शब्दसे कहाजानेवाला महर् आदि द्युलोक है, स्वर्गसे नीचे जो अन्तरिक्ष कहिये आकाश है सो सूर्यकी किरणोंके सम्बन्धसे मरीचि नाम पानेवाला लोक है, जिस पर प्राणी मरते हैं ऐसा मर नामवाला यह पृथिवीलोक है और पृथिवी से नीचे जो लोक हैं वह जलकी बहुतायतके कारण आप नामसे कहे जाते हैं ॥ २ ॥

स ईक्षते नु लोकां लोकपालान्नु सृजा इति सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत् । ३ ।

अन्वय और पदार्थ-(इमे) यह (लोकाः-नु) लोक तो [सृष्टाः] रचे गए (लोकपालान्) लोकपालों को (नु) निश्चय (सृजै) रचूँ (इति) इसप्रकार (सः) वह (ईक्षत) विचार करता हुआ (सः) वह (अद्भ्यः-एव) जलोंसे ही (पुरुषम्) पुरुष को (समुद्धृत्य) ग्रहण करके (अमूर्छयत्) रचता हुआ ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-उसने विचार किया कि-यह लोक तो मैंने रचदिये, परन्तु कोई रक्षक न होनेसे तो यह नष्ट होजायंगे, इसकारण इनकी रक्षा करनेको लोक-पालोंकी रचना होनी चाहिये, ऐसा विचार करके उसने जल आदि पञ्चभूतोंसे पुरुषाकार शिर हाथ आदि वाले विराट् पुरुषको ग्रहण करके उसको अ-पनी चेतनसत्तासे युक्त करके रचदिया ॥ ३ ॥

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथा-ण्डम् । मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येताम् नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्ये-ताम् । अक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं । श्रोत्राद्दिशः त्वङ्निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधि-

वनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत, । हृदयान्मनो । मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत । नाभ्या अपानो-ऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत । शिश्नाद्रेतो रेतस आपः ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ--(तम्) उसको (अभ्यतपत्) चारों ओरसे तपता हुआ (अभितप्तस्य) ईश्वरके संकल्प करके चारों ओरसे तपे हुए (तस्य) तिसका (अण्डं यथा) अण्डेकी समान (मुखम्) मुख (निरभिद्यत) निकलताहुआ (मुखात्) मुखसे (वाक्) वाणी (वाचः) वाणीसे (अग्निः) अग्नि हुआ (नासिके) नाकके दोनों छिद्र (निरभिद्येताम्) निकले (नासिकाभ्याम्) नासिकाके छिद्रोंसे (प्राणः) प्राण (प्राणात्) प्राणसे (वायुः) वायु देवता हुआ (अक्षिणी) दोनों नेत्र (निरभिद्येताम्) उत्पन्नहुए (अक्षिभ्याम्) नेत्रोंसे (चक्षुः) चक्षु (चक्षुषः) चक्षुसे (आदित्यः) आदित्य हुआ (कर्णौ) कान (निरभिद्येताम्) निकले (कर्णाभ्याम्) कानोंसे (श्रोत्रम्) श्रोत्र (श्रोत्रात्) श्रोत्रसे (दिशः) दिशाएं हुईं (त्वक्) त्वचा (निरभिद्यत) निकली (त्वचः) त्वचासे (लोमानि) रोम (लोमभ्यः) रोमोंसे (ओषधिवनस्पतयः) ओषधि और वनस्पति हुईं (हृदयम्) हृदय (निरभिद्यत) उत्पन्न हुआ (हृदयात्) हृदय से (मनः) मन (मनसः) मनसे (चन्द्र-

माः) चन्द्रमा हुआ (नाभिः) नाभि (निरभिद्यत) निकली (नाभ्याः) नाभिसे (अपानः) अपान (अपानात्) अपान से (मृत्युः) मृत्यु हुआ (शिश्नम्) उपस्थेन्द्रियका स्थान(निरभिद्यत) निकला (शिश्नात्) शिश्नसे (रेतः) वीर्य (रेतसः) वीर्यसे (आपः) जल [उत्पन्नाः] उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-उसने उस पुरुषके विषयमें विचार किया, उस ईश्वरके विचार करनेसे जैसे पक्षीका अण्डा फूटता है, तैसेही उसका मुख फूटकर निकला मुखमेंसे वाणी निकली,वाणीसे अग्निरूप लोकपाल निकला और नाकके दोनों नथोड़ निकले, नाकमेंसे प्राण प्राणमेंसे वायु निकला, दो आंखोंके गोलक निकले, आँखोंके गोलकोंमेंसे चक्षु इन्द्रिय, चक्षुमेंसे आदित्य निकला, दो कानोंके छिद्र निकले, कानों के छिद्रोंमेंसे श्रोत्रेन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रियमेंसे दिशाएं निकलीं, चमड़ा निकला, चर्ममें से रोम, रोममें से औषधि तथा वनस्पति निकलीं, हृदय निकला,हृदय मेंसे मन, मनमेंसे चन्द्रमा निकला, नाभि निकली, नाभिसे अपानवायु अपानवायुमें से मृत्यु निकला, जननेन्द्रिय निकली, जननेन्द्रियसे वीर्य और वीर्य से जल [प्रजापतिरूपदेवता] हुए ॥ ४ ॥

अथ द्वितीयः खण्डः ।

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत । ता

एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि। यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ताः) वह (एताः) यह (देवताः) देवता (सृष्टाः) रचेहुए (अस्मिन्) इस (महति) बड़े (अर्णवे) समुद्रमें (प्रापतन्) गिरतेहुए (तम्) उसको (आशनायापिपासाभ्याम्) भूँख और प्यास करकै (अन्ववार्जत्) युक्त करता हुआ (ताः) वह देवता (एनम्) इसको (इति) इसप्रकार (अब्रुवन्) कहतेहुए (नः) हमारे अर्थ (आयतनम्) स्थानको (प्रजनीहि) रच (यस्मिन्) जिसमें (प्रतिष्ठिताः) स्थित हुए (अन्नम्) अन्न को (अदाम) खावें ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-ईश्वरके लोकपाल बनाकर रचेहुए वह अग्नि आदि देवता इस बडेभारी संसाररूपी समुद्रमें गिरे, सृष्टा परमात्माने उस प्रथम उत्पन्न कियेहुए विराट् पुरुषमय पिंडरूप आत्माको भूँख और प्याससे युक्त किया उन देवताओंने तिस स्रष्टासे कहा कि-हमको ऐसा स्थान दीजिये कि जिसमें स्थित होकर हम अन्नका आहार पासकैं ५

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ताभ्यः) तिनके अर्थ (गाम्) गौ को (आनयत्) लाताहुआ (नः) हमारे निमित्त (अयम्) यह (वै) निश्चय (अलम्) पर्याप्त (न) नहीं है (इति) इसप्रकार (ताः) वह (अब्रुवन्) बोले (ताभ्यः) उनके अर्थ (अश्वम्) घोड़ेको (आनयत्) लाता हुआ (नः) हमारे अर्थ(अयम्) यह (वै) निश्चय (अलम्) पर्याप्त (न) नहीं है (इति) इसप्रकार (ताः) वह (अब्रुवन्) बोले ६

(भावार्थ)-देवताओंके ऐसा कहनेसे स्रष्टाने उनके आगे एक गौके आकारका पिंड लाकर खड़ा किया, उसको देखकर देवताओंने कहा कि—यह हमारे निमित्त ठीक नहीं है, तब स्रष्टाने उनके सामने एक घोड़ेके आकारका पिंड लाकर खड़ा किया उसको भी देखकर देवताओंने कहा कि इससे हमारा पूरा नहीं पड़ सकता ॥ ६ ॥

ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं वतेति पुरुषो वाव सुकृतम् । ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ताभ्यः) उनके अर्थ (पुरुषम्) पुरुषको (आनयत्) लाता हुआ (ताः)वह (इति) इसप्रकार (अब्रुवन्) बोले (वत) बड़े हर्षकी बात है (सुकृतम्) परम सुन्दर रचना है (ताः) उनको (इति) इसप्रकार (अब्रवीत्) बोला

(यथायतनम्) यथायोग्य स्थानको (प्रविशत) प्रवेश करो ॥ ७ ॥

(भावार्थ)—तब सृष्टा उनके आगे एक मनुष्याकार पिंड लाया, उसको देखकर देवता कहने लगे कि-यह परमसुन्दर है, इसकारण पुरुष ही पुण्यकर्मोंका हेतु होनेसे सुकृत है, या परमेश्वरने इसको आप अपने स्वरूपसे अपनी माया करके रचा है इसकारण यह सुकृत है, आगेको ईश्वर अपनी योनिरूप शरीरमें प्रेम करेंगे इसकारण यह मनुष्याकार शरीर देवताओंको प्रिय हुआ है, ऐसा समझ कर सृष्टाने भी उन देवताओंसे कहा कि-तुम यथास्थान में अर्थात् जिसका जो वचन आदि क्रियाके योग्य स्थान है उसमें प्रवेश करो ॥ ७ ॥

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।

अन्वय और पदार्थ-(अग्निः) अग्नि (वाक्-भूत्वा) वाणी होकर (मुखम्-प्राविशत्) मुखमें प्रवेश कर गया (वायुः) वायु (प्राणः-भूत्वा) प्राण होकर (नासिके-प्राविशत्) नासिकाके दोनों छिद्रों

में प्रवेश कर गया (आदित्यः) आदित्य (चक्षुः—भूत्वा) चक्षु होकर (अक्षिणी–प्राविशत्) नेत्रगोलकोंमें प्रवेश कर गया (दिशः) दिग्देवता (श्रोत्रम् भूत्वा) श्रोत्र होकर (कर्णौ–प्राविशन्) कर्णविवरों में प्रवेश कर गए (ओषधिवनस्पतयः) ओषधि और वनस्पतियें (लोमानि भूत्वा) रोम होकर (त्वचं प्राविशन्) त्वचामें प्रवेश कर गये (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (मनः भूत्वा) मन बनकर (हृदयम्–प्राविशत्) हृदयमें प्रवेश कर गया (मृत्युः) मृत्यु (अपानः–भूत्वा) अपान होकर(नाभिप्राविशत्)नाभिमें प्रवेश करगया (आपः) जल देवता (रेतः–भूत्वा) वीर्यरूप होकर (शिश्नं प्राविशन्) जननेन्द्रियमें प्रविष्ट होगए॥

(भावार्थ)–यह बात सुनकर अग्नि वाणीरूप होकर मुखमें प्रवेश करगया, वायु प्राण होकर दोनों नथोड़ोंमें प्रवेश करगया, आदित्य चक्षु इन्द्रिय होकर नेत्रोंमें घुस गया, दिशायें श्रवणेन्द्रिय होकर दोनों कानोंमें प्रवेश करगईं,ओषधि और वनस्पतियें रोम होकर त्वचामें प्रवेश करगईं, चन्द्रमाने मन बन कर हृदयमें प्रवेश किया, मृत्यु अपान कहिये गुदा बन कर नाभिमें प्रवेश कर गया और जल रेत कहिये जननेन्द्रिय वा वीर्यरूप होकर जननेन्द्रियके स्थान शिश्नमें प्रवेश करगए॥ ८॥

तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति । स ते अब्रवीदेतास्वेव वा देवतास्वा-

भजाभ्येतासु भागिन्यौ करोमीति तस्माद्यस्यै क-स्यै च देवतायै हविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्याम-शनायापिपासे भवतः ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अशनायापिपासे) भूख और प्यास (तम्) उसको (इति) इसप्रकार (अ-ब्रूताम्) कहते हुये (आवाभ्याम्) हमारे अर्थ (अ-भिप्रजानीहि) विचार कर (सः) वह (ते) उन दोनोंको (इति) इसप्रकार (अब्रवीत्) बोला(वाम्) तुम दोनोंको (एतासु एव) इन ही (देवतासु) देवताओंमें (आभजामि) वृत्तिविभाग अनुग्रह करता हूँ (एतासु) इनमें (भागिन्यौ) भाग पाने वाले (करोमि) करता हूँ (तस्मात्) तिससे (यस्यै कस्यै च) जिस किसी भी (देवतायै) देवताके अर्थ (हविः) हवि (गृह्यते) ग्रहण किया जाता है (अ-स्याम्) इसमें (अशनायापिपासे) भूख और प्यास (भागिन्यौ-एव)भागवाले ही (भवतः) होते हैं ॥६॥

(भावार्थ)—इसके अनन्तर भूख प्यासने उस परमात्मासे कहा कि—हमारे निमित्त भी कोई स्थान बनाओ, यह सुनकर उसने कहा कि—इन सब देव-ताओंमें ही तुम दोनोंकी व्यवस्था करता हूँ, तुम को इनमें ही भागपानेवाला बनाता हूँ इसकारण जिस किसी भी देवताके निमित्त हविष्प्रदान दिया जाता है, भूख और प्यास उसमें साझी होते हैं ६

अथ तृतीयःखण्डः

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (इति) इसप्रकार (ईक्षत) विचार करताहुआ (इमे) यह नु) प्रसिद्ध (लोकाः च)लोक भी (लोकपालाः च)लोकपाल भी [मया] मुझकरके[सृष्टाः]रचेगए (एभ्यः) इनके अर्थ (अन्नम्) अन्नको (सृजै) रचूं ॥१०॥

(भावार्थ)-तदनन्तर उसने विचार किया कि-इन सब लोकोंको और लोकपालोंको भी मैंने रच दिया अब मैं इनके निमित्त अन्नकी रचना करूँ ॥१०॥

सोऽपोऽभ्यतपत। ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत या वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत् ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (अपः) जलों को (अभ्यतपत्) विचारता हुआ (अभितप्ताभ्यः) सङ्कल्पित हुए (ताभ्यः) उनसे (मूर्तिः) आदिघन रूप (अजायत) उत्पन्न हुआ (सा) वह (या) जो (वै) प्रसिद्ध (मूर्त्तिः) घनरूप मूर्त्ति (अजायत) उत्पन्नहुई (तत) वह (वै) निश्चय (अन्नम्) अन्न है ॥ ११ ॥

(भावार्थ)-ऐसा विचार करके परमेश्वरने संकल्प किया कि-जल आदि पंचभूतोंसे अन्न उत्पन्न हो, इस प्रकार ईश्वरके विचारसे जल आदि पंच भूतोंसे कठिनरूप और शरीरधारणमें समर्थ चर

अचररूप मूर्त्ति उत्पन्न हुई जैसे कि चर चूहा बिल्ली के निमित्त और अचर धान्य आदि मनुष्योंके लिये वह जो प्रसिद्ध मूर्त्ति प्रकट हुई निःसन्देह वह अन्न हुआ ॥ ११ ॥

तदेतदभिसृष्टं पराङ्त्यजिघांसत् । तद्वाचाऽघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रहीतुम् स यद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ १२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) सो (एतत्) यह (अभिसृष्टम्) छोड़ाहुआ (पराङ्) पराङ्मुख होकर (अत्यजिघांसत) भागना चाहता हुआ (तत्) उसको (वाचा) वाणी करकै (अजिघृक्षत्) ग्रहण करना चाहताहुआ (तत्) उसको (वाचा) वाणी करकै (ग्रहीतुम्) ग्रहण करनेको (न) नहीं (अशक्नोत्) समर्थ हुआ (सः) वह (यत्-ह) यदि (एनत्) इसको (वाचा) वाणी करकै (अग्रहैष्यत्) ग्रहण करलेता [तर्हि] तो (अन्नम्) अन्नको (अभिव्याहृत्य-ह-एव) कहकर ही (अत्रप्स्यत) तृप्त होजाता ॥ १२ ॥

(भावार्थ)-सो यह उत्पन्न हुआ और लोकपालोंके सन्मुख छोड़ाहुआ अन्न पीछेको लौटकर इस प्रकार छुपना चाहने लगा कि-जैसे बिलावके सामने छोड़ाहुआ उसका अन्न मूषक आदि भागना चाहता है, तब प्रथम उत्पन्न हुए, लोक और लोकपालोंके

संघातों करके कार्यकारणरूप विराट्पुरुषने उस अन्न को वाणीसे ग्रहण करना [व्याहार] चाहा परन्तु उसको वाणीसे ग्रहण नहीं करसका यदि वह वाणी से ग्रहण करसकता तो सब लोक, इसके ऐसा करने की समान केवल वाणीसे अन्न शब्द कहकर ही तृप्त होजाया करते ॥ १२ ॥

तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुम् स यद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवा-न्नमत्रप्स्यत् ॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसको (प्राणेन) प्राण करके (अजिघृक्षत्) ग्रहण करना चाहताहुआ (तत्) उसको (प्राणेन) घ्राणके द्वारा (ग्रहीतुम्) ग्रहण करनेको (न) नहीं (अशक्नोत्) समर्थहुआ (सः) वह (यत्-ह) यदि (एनत्) इसको (प्राणेन) घ्राणके द्वारा (अग्रहैष्यत्) ग्रहण करलेता [तर्हि] तो (अन्नम्) अन्नको (अभिप्राण्य-ह एव) सूँघकरके ही (अत्रप्स्यत्) तृप्त होजाता ॥ १३ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर इसने सूँघकर ही ग्रहण करनाचाहा, परन्तु सूँघकर ग्रहण नहीं करसका, यदि यह सूँघकर ग्रहण करसकता तो सब लोक अन्नको सूँघकर तृप्त होजाया करते ॥ १३ ॥

तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषा ग्रहीतुम् स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यद्दृष्ट्वा हैवान्नम

न्नमत्स्यत् ॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसको (चक्षुषा) चक्षुके द्वारा (अजिघृक्षत्) गृहण करना चाहताहुआ (तत्) उसको (चक्षुषा) चक्षुके द्वारा (ग्रहीतुम्) गृहण करनेको (न) नहीं (अशक्नोत्) समर्थ हुआ (सः) वह (यत्-ह) यदि (एनत्) इसको (चक्षुषा) चक्षु करकै (अग्रहैष्यत्) ग्रहण करलेता [तर्हि] तो (अन्नम्) अन्नको (दृष्ट्वा-ह-एव) देखकर ही (अत्र-प्स्यत्) तृप्त होजाता ॥ १४ ॥

(भावार्थ) तदनन्तर उसने इसको आंखसे ही ग्रहण करना चाहा, परन्तु इसको आँखसे ग्रहण नहीं करसका, यदि वह इसको आँखसे ग्रहण कर लेता तो सब लोक अन्नको देखकर ही तृप्त हो जाया करते ॥ १४ ॥

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुम् स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसको (श्रोत्रेण) श्रोत्रके द्वारा (अजिघृक्षत्) ग्रहण करना चाहता हुआ (तत्) उसको (श्रोत्रेण) श्रोत्रके द्वारा (ग्रहीतुम्) ग्रहण करनेको (न) नहीं (अशक्नोत्) समर्थ हुआ (सः) वह (यत्-ह) यदि (एनत्) इसको (श्रोत्रेण) श्रोत्रके द्वारा (अग्रहैष्यत्) ग्रहण

करलेता [तर्हि] तो (अन्नम्)]अन्नको (श्रुत्वा–ह एव) सुनकर ही (अत्रप्स्यत्) तृप्त होजाता ॥१५॥

(भावार्थ)-तदनन्तर उसने अन्नको कानसे ग्रहण करना चाहा, परन्तु इसको कानसे ग्रहण न कर सका, यदि वह अन्नको कानसे ग्रहण कर लेता तो सब लोक अन्नको कानसे सुनकर ही तृप्त होजाया करते ॥ १५ ॥

तत्त्वचाऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्त्वचा ग्रहीतुम् स यद्धैनत्त्वचाऽग्रहैष्यत्स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥

अन्वय और पदार्थ–(तत्) उसको (त्वचा) त्वचा करकै (अजिघृक्षत्) ग्रहण करनेको चाहता हुआ (तत्) इसको (त्वचा) त्वचाके द्वारा (ग्रही-तुम्) ग्रहण करनेको (न) नहीं (अशक्नोत्) समर्थ हुआ (सः) वह (यत्–ह) यदि (एनत्) इसको (त्वचा)त्वचा करकै (अग्रहैष्यत्) ग्रहण करलेता [तर्हि] तो (अन्नम्) अन्न को (स्पृष्ट्वा–ह-एव) छूकर ही (अत्रप्स्यत) तृप्त होजाता ॥ १६ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर उसने इस अन्नको त्वचा से ग्रहण करना [खाना] चाहा, परन्तु इसको वह त्वचा इन्द्रियसे ग्रहण नहीं करसका, यदि वह त्वचा इन्द्रियसे अन्नको ग्रहण करलेता तो सब लोक अन्न को छूकर ही तृप्त होजाया करते ॥ १६ ॥

तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रही-

तुम् स यद्धैतन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्न-मत्रप्स्यत् ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसको (मनसा) मन करकै (अजिघृक्षत्) ग्रहण करना चाहता हुआ (तत्) उसको (मनसा) मन करके (ग्रहीतुम्) ग्रहण करने को (न) नहीं (अशक्नोत्) समर्थ हुआ (सः) वह (यत्-ह) यदि (एतत्) इसको (मनसा) मन करकै (अग्रहैष्यत्) ग्रहण करलेता [नहिं] तो (अन्नम्) अन्नको (ध्यात्वा-ह-वै) ध्यान करके ही (अत्रप्स्यत) तृप्त होजाता ॥ १७ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर उसने इस अन्नको मनसे ग्रहण करना चाहा, परन्तु मनसे ग्रहण नहीं करसका यदि मनसे ग्रहण कर लेता तो सब लोग अन्नका ध्यान करके ही तप्त होजाया करते ॥१७॥

तच्छिश्नेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छिश्नेन ग्रहीतुम् स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्याद्विसृज्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसको (शिश्नेन) जननेन्द्रिय करके (अजिघृक्षत्) ग्रहण करनेको इच्छा करता हुआ (तत्) उसको (शिश्नेन) जननेन्द्रिय के द्वारा (ग्रहीतुम्) ग्रहण करनेको (न) नहीं (अशक्नोत्) समर्थ हुआ (सः) वह (यत्-ह) यदि

(एतत्) इसको (शिश्नेन) जननेन्द्रियके द्वारा (अग्रहैष्यत) ग्रहण करलेता [तर्हि] तो (अन्नम्) अन्नको (विसृज्य-ह-एव) त्यागकर ही (अत्रप्स्यत्) तृप्त होजाता ॥ १८ ॥

(भावार्थ) तदनन्तर उसने इस अन्नको जननेन्द्रियसे ग्रहण करना चाहा, परन्तु उसको जननेन्द्रियसे ग्रहण नहीं करसका, यदि वह जननेन्द्रिय से ग्रहण करलेता तो सब लोक अन्नको जननेन्द्रिय के द्वारा त्यागकर ही तृप्त होजाया करते ॥ १८ ॥

तदपानेनाजिघृक्षत् । तदावयत स एषोऽन्नस्य ग्रहो यद्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) उसको (अपानेन) अपानसे (अजिघृक्षत) ग्रहण करना चाहता हुआ (तदा) जब (आवयत्) ग्रहण करताहुआ (यत्) जो (वायुः) अपान-वायु है (सः) वह (एषः) यह अन्नस्य अन्नका (ग्रहः) ग्रहण करनेवाला है (यत्) जो (वायुः) वायु है (एषः) यह (वै) निश्चय (अन्नायुः) अन्नसे जीवन वाला है ॥ १९ ॥

(भावार्थ)-जिस अन्नको अपानवायुसे अर्थात् मुखछिद्रसे नीचेको जानेवाले वायुके द्वारा ग्रहण करनेकी इच्छा की, तब उसने ग्रहण किया अर्थात् भक्षण किया, इसकारण अपानवायु ही अन्नको ग्रहण करता है और यह वायु अन्नभोगके द्वारा ही जीवन धारण करनेवाला है ॥ १९ ॥

स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति । स
ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति । स ईक्षत यदि वा-
चाभिव्याहृतम् । यदि प्राणेनाभिप्राणितम् ।
यदि चक्षुषा दृष्टम् । यदि श्रोत्रेण श्रुतम् । यदि
त्वचा स्पृष्टम् । यदि मनसा ध्यातम् । यद्यपाने-
नाभ्यपानितम् । यदि शिश्नेन विसृष्टमथ को-
ऽहमिति ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (मत्-ऋते) मेरे बिना (नु) निश्चय (कथम्) कैसे (स्यात्) होगा (इति) इसप्रकार (सः) वह (ईक्षत) विचार करता हुआ (कतरेण) किस द्वारसे(प्रपद्यै) प्रवेश करूँ (इति) इस प्रकार (सः) वह (ईक्षत) विचार करता हुआ (यदि) जो (वाचा) वाणीने (अभिव्याहृतम्) बोला (यदि) जो (प्राणेन) प्राणने (अभिप्राणितम्) सूँघा (यदि) जो (चक्षुषा) चक्षुने (दृष्टम्) देखा (यदि) जो (श्रोत्रेण) कानने (श्रुतम्) सुना (यदि) जो (त्वचा) त्वक् इन्द्रियने (स्पृष्टम्) छुआ (यदि) जो (मनसा) मनने (ध्यातम्) ध्यान किया (यदि) जो (अपानेन) अपानवायुने (अभ्यपानितम्) मलत्याग किया (यदि) जो (शिश्नेन) शिश्नने (विसृष्टम्) त्यागा (अथ) अब (अहम्) मैं (कः) कौनहूँ (इति)

इसप्रकार (सः) वह (ईक्षत) विचार करता हुआ ॥

(भावार्थ)-तदनन्तर उस रचना करने वाले परमात्माने विचार किया कि-यह कार्यकारणरूप संघात मेरे विना कैसे रह सकेगा, इस कारण उसने विचार किया कि-इसके चरणका अग्रभाग और मस्तक, इन दो प्रवेशके मार्गोंमेंसे किस मार्गसे मैं इसमें प्रवेश करूं ? उसने विचार किया कि-यदि वाक् इंद्रिय उच्चारण कर लेय, यदि घ्राण इन्द्रिय सूँघलेय, यदि नेत्र देख लें, यदि कान सुनलें, यदि त्वचा स्पर्श करलेय, यदि मन विचार करलेय, यदि अपानवायु भक्षण करलेय और यदि जननेन्द्रिय वीर्यको त्याग देय तो मैं कौन रहा ? ॥२० ॥

स एवमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत । सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनम् । तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (एतम्-एव) इस ही (सीमानम्) सीमाको (विदार्य) चीरकर (एतया-एव) इस ही (द्वारा) द्वार करकै (प्रापद्यत) प्रवेश करता हुआ (सा) वह (एषा) यह (विदृतिः-नाम) विदृति नामवाला (द्वाः) द्वार है (तत्) वह (एतत्) यह (नान्दनम्) आनन्द देने वाला है (तस्य) उसके (त्रयः) तीन (आ-

वसथाः) स्थान हैं (त्रयः) तीन (स्वप्नाः) स्वप्न हैं (अयम्) यह (आवसथः) स्थान है (अयम्) यह (आवसथः) स्थान है (अयम्) यह (आवसथः) स्थान है (इति) इसप्रकार ॥ २१ ॥

(भावार्थ) ऐसा विचार करके उसने इस केश-विभागस्थान कहिये त्रिकपालस्थानको । चीर कर इस ही मार्गसे प्रवेश किया, यह विदृति नामक ब्रह्म-रन्ध्ररूप द्वार परम आनन्दका देनेवाला है, उस आत्माका यह ही प्रकाशस्थान है. उसके तीन स्वप्न हैं; यद्यपि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन अवस्था हैं, परन्तु परमार्थ ज्ञानके न होनेसे अज्ञानी की जाग्रत अवस्था भी स्वप्नके समान ही है इस कारण तीनों अवस्थाओंको स्वप्न कहा है, उपरोक्त प्रकाशस्थानको तीन संकेतोंसे दिखाते हैं-यह वासस्थान जाग्रत्में दाहिनी आँख है, यह वास-स्थान स्वप्नमें कण्ठ वा मन है और यह वासस्थान सुषुप्तिकालमें हृदय है ॥ २१ ॥

स जातो भूतान्यभिव्यैक्षत् । किमिहान्यं वावदिषदिति । स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमप-श्यदिदमदर्शमिति ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सः) वह (जातः) उत्प-न्न हुआ (भूतानि) भूतोंको (अभिव्यैक्षत्) देखता हुआ (इह) इस शरीरमें हैं (अन्यम्) दूसरे

को (किम्) क्या (वावदिषत्) कहता हुआ (सः) वह (एतम्-एव) इस ही (पुरुषम्) पुरुषको (ततम्) व्यापक (ब्रह्म) ब्रह्म (अपश्यत्)देखता हुआ (इदम्) इसको (अदर्शम्) देखता हुआ (इति) इसप्रकार ॥ २२ ॥

(भावार्थ)—उस अन्तःकरणविशिष्ट चैतन्यात्माने शरीरमें प्रविष्ट होने पर सकल भूतोंको, मैं मनुष्य हूँ, मैं काणा हूँ, सुखी हूँ, दुखी हूँ, इसप्रकार तादात्म्यभावसे स्पष्ट जाना और कहा, कि-इस शरीरमें अपनेसे भिन्न अन्य आत्माको न कहा न जाना, इसने उस पुरुषको ही अर्थात् अपनेको ही, आकाशकी समान व्यापक परिपूर्ण विश्वरूप देखा और देखकर कहने लगा कि-मैंने अपने स्वरूपका दर्शन किया है अर्थात् इदम् कहिये इस शब्दका वाच्य जो साक्षात् अपरोक्ष सर्वान्तर्यामी ब्रह्म है उसको अपरोक्ष रूपसे देखा है ॥ २२ ॥

तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम । तमिदंद्रं सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥२३॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (इदन्द्रः-नाम) इदन्द्र नामवाला हुआ (इदन्द्रः नाम) इदन्द्र नामवाला (वै) निश्चय (ह) प्रसिद्ध (इदन्द्रम्)

इदन्द्र (सन्तम्) हुए (तम्) उसको (परोक्षेण) परोक्षभावसे (इन्द्रम् इति) इन्द्र ऐसा (आचक्षते) कहते हैं (हि) क्योंकि-(देवाः) देवता (परोक्षप्रिया-इव) परोक्षसे प्रेम करने वालेसे [सन्ति] हैं ॥ २३ ॥

(भावार्थ)—इसकारण परमात्माका नाम इदन्द्र अर्थात् (यः,इदम्,द्रः-पश्यति) जो इस शरीरको भली प्रकारसे देखता है वह इदन्द्र कहिये क्षेत्रज्ञ है, जिस इदन्द्र नाम वाले परमात्मा को ब्रह्मज्ञानी पुरुष अत्यन्त पूज्य होनेसे और उसका प्रत्यक्ष नाम लेने के भय से सम्यक् व्यवहार के निमित्त परोक्ष नाम से " इन्द्र" कहते, हैं क्योंकि -देवता परोक्षसे प्रेम करते हैं, दो बार कथन अध्याय की समाप्तिका सूचक है ॥ २३ ॥

प्रथमोऽध्यायः समाप्तः

द्वितीयोऽध्यायः ।

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति । यदेतद्रेतस्तत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतमात्म-न्येवात्मानं बिभर्ति । तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनं जनयति तदस्य प्रथमं जन्म ॥

अन्वय और पदार्थ- (पुरुषे) पुरुषके विषैं (ह) प्रसिद्ध (अयम्) यह संसारी (आदितः) प्रथम (वै) निश्चय (गर्भः) गर्भ (भवति) होता है

(यत्) जो (एतत्) यह (रेतः) वीर्य है (तत्) उस (एतत्) इस (सर्वेभ्यः) सब (अङ्गेभ्यः) अङ्गोंसे (संभृतम्) संग्रह किये हुए (तेजः) तेजोरूप (आत्मानम्) आत्माको (आत्मनि—एव) शरीर के विषैं ही (बिभर्त्ति) धारण करता है (तत्) उसको (यदा) जब (स्त्रियाम्) स्त्रीके विषैं (सिंचति) सिंचन करता है (अथ) अनन्तर (एनम्) इसको (जनयति) जन्म देता है (तत्) वह (अस्य) इसका (प्रथमम्) पहिला (जन्म) जन्म है ॥ १ ॥

(भावार्थ) जो त्रिकपालको विदीर्ण करके शरीर में प्रविष्ट हुआ है, यह ही कर्मबन्धनमें पड़ा हुआ जीव, यज्ञादि कर्म के द्वारा इस मृत्युलोक से चन्द्रलोक को पाकर कर्मक्षय होने पर वर्षा आदि के द्वारा इस भूलोकमें आकर अन्न रूप हुआ, पिता रूप अग्नि में होमा जाकर इस पिता रूप पुरुष में यह प्रसिद्ध संसारी जीव रस आदि धातुओं के क्रम से पहिले वीर्यरूप गर्भ होता है, जो यह पुरुषके शरीरमें वीर्यरूप होता है सो यह अन्नमय पिंडके रस आदि धातुरूप सब अंङ्गोंमें से शरीरका साररूप इकट्ठा हुआ तेज होता है, यह पुरुष का आत्मा रूप होने से आत्मा है, उस वीर्यरूप से गर्भरूप हुए आत्माको आत्मा कहिये शरीरमें ही धारण करता है, उस वीर्य को जब ऋतुकाल में स्त्रीरूप अग्नि में होमता है अर्थात् स्त्री-समागम करता हुआ सिंचन

करता है तब पिता इस अपने वीर्यरूप गर्भको जन्म देता है तथा इस संसारीका वीर्यके सिंचनसमयमें जो उस पुरुषके स्थानसे निकलना है सो प्रथम जन्म अर्थात् प्रथम अवस्थाका प्रकट होना है ॥ १ ॥

तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति । यथा स्वमङ्गं तथा । तस्मादेनां न हिनस्ति । सास्यैतमात्मानमत्र गतं भावयति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (स्वम्) अपना (अङ्गम्) अङ्ग है (तथा) तैसे (तत्) वह वीर्य (स्त्रियाः) स्त्रीके (आत्मभूयम्) आत्मस्वरूपको (गच्छति) प्राप्त होता है (तस्मात्) तिससे (एनाम्) इसको (न) नहीं (हिनस्ति) पीड़ा देता है (सा) वह (अस्य) इसके (एतम्) इस (गतम्) प्राप्त हुए (आत्मानम्) आत्माको (अत्र) इस पेटमें (भावयति) पालन करती है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-वह वीर्य जिस स्त्रीमें सेचन किया जाता है उसके स्वरूपमें इसप्रकार अभिन्न [एकीभूत] होजाता है जैसे उस स्त्रीके अपने स्तन आदि अंग उससे अभिन्न होते हैं इसकारण वह गर्भ इसके शरीरको पीड़ा नहीं देता है । वह गर्भिणी ऐसे इस अन्तरूप, पतिके आत्माको उदरमें प्रविष्ट हुआ जानकर गर्भके अनुकूल वर्त्ताव करती हुई उसका पालन करती है ॥ २ ॥

सा भावयित्री भावयितव्या भवति । तं स्त्री गर्भं बिभर्त्ति । सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधि भावयति । स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति आत्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानाम् सन्तत्या एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भावयित्री)गर्भका पालन करनेवाली (सा) वह (भावयितव्या) पालन करने योग्य (भवति) होती है (स्त्री) स्त्री (तम्)उस (गर्भम्) गर्भको (बिभर्त्ति) धारण करती है (सः) वह (कुमारम्) कुमारको (अग्रे एव) पहिले ही (जन्मनः) जन्मसे (अग्रे) आगे (अधिभावयति) पालन करता है (सः) वह (यत्) जो (जन्मनः) जन्मसे (अग्रे) आगे (अधिभावयति) पालन करता है (तत्) सो (आत्मानम्—एव) अपनेको ही (एषाम्) इन (लोकानाम्) लोकोंकी (सन्तत्यै) सन्ततिके अर्थ (अधिभावयति) पालन करता है (हि) क्योंकि (एवम्) इस प्रकार(इमे) ये (लोकाः) लोक (सन्तताः) फैले हैं ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-उस स्वामीके आत्मस्वरूप गर्भका पालन करनेवाली स्त्रीका पालन करना चाहिये उस गर्भको स्त्री जन्मसे पहिले गर्भधारणकी विधिसे धारण करती है, वह पिता जो जन्मसे

पाहले और जन्म होनेके अनन्तर कुमारके पुंसवन जातकर्म आदि संस्कार करके पालन करता है सो इन लोकोंकी रक्षाके निमित्त अपना ही पालन करता है, क्योंकि—यह सब लोक इसी प्रकार अर्थात् पुत्रोत्पादन आदिके द्वारा ही रक्षित होते हैं, यह कुमाररूपसे माताके गर्भसे बाहर निकलना संसारी जीवका दूसरा जन्म कहिये दूसरी अवस्थाका प्रकट होना है ॥ ३ ॥

सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिविधीयते । अथास्यायमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति । स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते । तदस्य तृतीयं जन्म तदुक्तमृषिणा ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्य) इसका (सः)वह (अयम्) यह (आत्मा) आत्मारूप पुत्र (पुण्येभ्यः) पवित्र (कर्मभ्यः) कर्मोंके अर्थ (प्रतिविधीयते) प्रतिनिधि किया जाता है (अथ) अनन्तर (अस्य) इसका (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (कृतकृत्यः) कृतकृत्य (वयोगतः) जीर्ण हुआ (प्रैति) परलोकको जाता है (सः) वह (इतः) इसलोकसे (प्रयन्-एव) जाता हुआ ही (पुनः) फिर (जायते) उत्पन्न होता है (तत्) सो (अस्य) इसका (तृतीयम्) तीसरा (जन्म) जन्म है (तत्) सो (ऋषिणा) ऋषिने (उक्तम्) कहा है ॥ ४ ॥

(भावार्थ)-यह जो उस पिताका पुत्ररूप आत्मा है सो पुण्यकर्मोंके करनेके लिये पिताका प्रतिनिधि होता है, तब पुत्रके ऊपर अपना भार रख कर यह पितारूप अन्य आत्मा तीनों ऋणोंके कर्त्तव्यसे मुक्त और जीर्ण होकर मरजाता है, वह इस लोकसे जाकर फिर कर्मसे रचे हुए देहको ग्रहण करता हुआ जन्मता है, यह इसका तीसरा जन्म है. इस प्रकार तीन अवस्थाओंकी प्रकटतासे जन्म मरणके बन्धन में बंधे हुए सब लोक संसारसमुद्रमें पड़े हैं. यह जिस किसी अवस्थामें भी श्रुतिमें वर्णन कियेहुए आत्माको जान जाता है, तब ही संसारबन्धनसे मुक्त होकर कृतार्थ होजाता है, यही तत्त्व मन्त्रने भी कहा है ॥ ४ ॥

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा । शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति । गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गर्भे नु) गर्भमें ही (सन्) वर्तमान (अहम्) मैं (एषाम्) इन (देवानाम्) वाक् और अग्नि आदि देवताओंके (विश्वाः)सकल (जनिमानि) जन्मोंको (अवेदम्) जान गया था (माम्) मुझको (शतम्) सैंकड़ों (आयसीः) लोहे कीसी (पुरः) शरीररूप पुरियें (अरक्षन्) रक्षा करती हुईं (अधः) नीचे (श्येनः-इति) श्येनकी

समान (जवसः) वेगसे (निरदीयम्) निकला हूँ (गर्भे-एव) गर्भमें ही (वामदेवः) वामदेव (एवम्) इसप्रकार (उवाच) कहता हुआ ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-गर्भमें रहकर ही मैंने मनकी वृत्तियों को अथवा अग्नि आदि देवताओंके सकल जन्मोंके वृत्तान्तको जान लिया था, मुझको अनेकों लोहेकी समान अभेद्य शरीररूप पुरियोंने पींजरेमें बन्द किये हुए पक्षीकी समान रक्षा करके रक्खा था, परन्तु मैं संसाररूप फाँसीमेंसे नीचेको देखता हुआ अर्थात् ऊपरके लोकोंके सुखोंकी ओर ध्यान न देकर नीचे के लोकोंके कष्ट की ओर ध्यान देता हुआ, आत्मज्ञानकी शक्तिरूप वेगसे, श्येन (बाज) पक्षीकी समान जाल काट कर निकल आया हूं, वामदेवने गर्भमें सोते हुए ही ऐसा कहा था ॥ ५ ॥

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्वं उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत् ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एवम्) ऐसा (विद्वान्) जाननेवाला (सः) यह (अस्मात्) इस (शरीरभेदात्) शरीरके नाशसे (ऊर्ध्वः) ऊपर (उत्क्रम्य) निकल कर (अमुष्मिन्) उस (स्वर्गे) स्वर्ग (लोके) लोकमें (सर्वान्) सब (कामान्) भोगोंको (आप्त्वा) पाकर (अमृतः) अमर (समभवत्) हुआ

(भावार्थ)-ऐसा जाननेवाला वह वामदेव ऋषि परमात्मज्ञानकी शक्तिसे इस शरीरबन्धनको तोड़ कर परमार्थरूप हुआ, अधोगतिरूप संसारसे निकल कर निर्मल, अजर, अमर, अनन्त, एकरस, स्वस्वरूपभूत, स्वर्गलोकमें आत्मज्ञानके द्वारा सकल कामनाओंके हस्तगत होनेसे जीवित दशामें ही सब भोगोंको पाकर अमर होगया ॥ ६ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे । कतरः स आत्मा येन वा रूपं पश्यति । येन वा शब्दं शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति । येन वा वाचं व्याकरोति । येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥

अन्वय और पदार्थ—(अयम्) यह (आत्मा) आत्मा है (इति) इसप्रकार (वयम्) हम (उपास्महे) उपासना करते हैं (सः] वह (कः) कौन है (सः) वह (आत्मा) आत्मा (कतरः) कौन सा है (येन-वा) जिसके द्वारा (रूपम्) रूपको (पश्यति) देखता है (येन-वा) जिसके द्वारा (शब्दम्) शब्दको (शृणोति) सुनता है (येन-वा) जिसके द्वारा (गन्धान्) गन्धोंको (आजिघ्रति) सूँघता है (येन-वा) जिस करके (वाचम्) वाणी को (व्याकरोति) प्रकट करता है (येन-वा) जिस

करके (स्वादु-च) स्वादवालेको भी (अस्वादु-च) स्वादरहितको भी (विजानाति) जानता है ॥ १ ॥

(भावार्थ)-जिसको हम 'यह आत्मा है' ऐसा कह कर उपासना करते हैं वह कौन है ? इन्द्रियादिकोंमें यह आत्मा कौनसा है ? जिस इन्द्रियके द्वारा लोक रूपका दर्शन करते हैं, जिससे शब्द सुना जाता है जिससे गन्धको सूँघा जाता है, जिससे वाक्यका उच्चारण किया जाता है और जिससे स्वाद बेस्वाद जाना जाता है वह चक्षु आदि क्या आत्मा हैं ? ॥ १ ॥

यदेतद् हृदयं मनश्चैतत्संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (एतत्) यह (हृदयम्) हृदय (च) और (एतत्) यह (मनः) मन (संज्ञानम्) चेतनभाव (आज्ञानम्) कर्तृभाव (विज्ञानम्) लौकिकज्ञान (प्रज्ञानम्) तत्कालमावज्ञान (मेधा) धारणाशक्ति (दृष्टिः) दर्शनज्ञान (धृतिः) धृति (मतिः) मनन (मनीषा) मननशक्ति (जूतिः) चित्तका दुःखित होना (स्मृतिः) स्मरण (सङ्कल्पः) कल्पना करनेकी शक्ति (क्रतुः) निश्चय (असुः) प्राणशक्ति (कामः) दूरके

विषयोंकी तृष्णा (वशः) स्त्री संगादिकी इच्छा (इति) इस प्रकार (एतानि) यह (सर्वाणि) सब (प्रज्ञानस्य एव) प्रज्ञानके ही (नामधेयानि) नाम (भवन्ति) होते हैं ॥ २॥

(भावार्थ)-यह जो हृदय है और यह जो मन चेतनभाव, ईश्वरभाव, लौकिकज्ञान, तत्कालजन्य भावज्ञान धारणाशक्तिरूप ज्ञान, इन्द्रियसे सब विषयोंका ज्ञान, शिथिल हुए शरीर इन्द्रियादिके सावधान होनेका ज्ञान, मनन, मनका नियामक ज्ञान, चित्तके रोगादिसे दुःखित होनेका ज्ञान, स्मरण कल्पना करनेकी शक्ति, निश्चयात्मकज्ञान, प्राणशक्ति, दूरके विषयोंकी तृष्णा और स्त्रीसंगादिकी इच्छा है यह सब प्रज्ञानके नाममात्र अर्थात् ज्ञानके अनेकों विकारोंके नाम हैं, स्वयं साक्षात् प्रज्ञान नहीं है॥२॥

एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्चमहाभूतानि। पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जरायुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणि जङ्गमञ्च पतत्रि च यच्च स्थावरं तत्प्रज्ञानेत्रं सर्वं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्। प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (ब्रह्म) ब्रह्म है (एषः) यह (इन्द्रः) इन्द्र है (एषः) यह (प्रजापतिः) प्रजापति है (एते) यह (सर्वे) सब (देवाः) देवता (इमानि) यह (पञ्चमहाभूतानि-च) पञ्चमहाभूत भी (पृथिवी) पृथ्वी (वायुः) वायु (आकाशः) (आकाश (आपः) जल (ज्योतींषि) तेज (इति) इस प्रकार (एतानि) यह (च) और (इमानि) यह (क्षुद्रमिश्राणि-इव) छोटे २ उभचरसे (बीजानि) कारण (च) और (इतराणि) कार्य (च) और (इतराणि) अन्य (अण्डजानि-च) अंडज भी (जरायुजानि-च) जरायुज भी (स्वेदजानि-च) स्वेदज भी (उद्भिज्जानि च) उद्भिज्ज भी (अश्वाः) घोड़े (गावः) गौएं (पुरुषाः) पुरुष (हस्तिनः) हाथी (यत्किञ्च) जो कुछ भी (इदम्) यह (प्राणि) प्राणवाला (जंगमम्) चलने वाला (च) और (पतत्रि च) परवाला भी (च) और (यत्) जो (स्थावरम्) स्थावर है (तत्) वह (सर्वम्) सब (प्रज्ञानेत्रम्) प्रज्ञारूपनेत्र वाला है (प्रज्ञाने) प्रज्ञानमें (प्रतिष्ठा) आधार है (प्रज्ञानम्) प्रज्ञान (ब्रह्म) ब्रह्म है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-यह ही हिरण्यगर्भरूप अपर ब्रह्म है यही इन्द्र है, यही प्रजापति है, यह सब देवता पृथिवी वायु आकाश जल तेज यह पंचमहाभूत और यह छोटे २ सर्प कीड़े आदि उभचर, और नाना प्रकारके जीव तथा अंडेसे उत्पन्न होनेवाले अण्डज, मनुष्यादि जरायुज, जूं आदि पसीनेसे उत्पन्न होने

वाले स्वेदज और वृक्ष आदि उद्भिज्ज तथा घोड़े, गौ मनुष्य, हाथी, जंगम, खेचर तथा स्थावर यह सब प्रकारके प्राणी प्रज्ञाके द्वारा चलनेके कारण प्रज्ञानेत्र हैं, ये उत्पत्ति स्थिति और प्रलयकालमें प्रज्ञान ब्रह्ममें स्थित होते हैं, सब लोक प्रज्ञानेत्र हैं, प्रज्ञा सब जगत् की आधार है, इसकारण प्रज्ञान ही परब्रह्म है ॥३॥

स एतेन प्रज्ञेनात्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्या- मुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत् । इत्योम् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(सः) वह (एतेन) इस (प्रज्ञेन) ज्ञानस्वरूप (आत्मना) आत्मा करके (अस्मात्) इस (लोकात्) लोकसे (उत्क्रम्य) उत्क्रमण करकै (अमुष्मिन्) उस (स्वर्गे) स्वर्ग (लोके) लोकमें (सर्वान्) सब (कामान्) कर्मोंको (आप्त्वा) पाकर (अमृतः) अमर (समभवत्) हुआ ॥ ४ ॥

(भावार्थ)—वह वामदेव इस ज्ञानमय आत्मा के द्वारा देहात्मभावके त्यागरूप उत्क्रमणको करके, उस ब्रह्मरूप स्वर्गलोकमें सकल इच्छित पदार्थोंको पाकर अमर होगया ॥ ४ ॥ इति ॥ ॐ ॥

इति तृतीयाऽध्यायः

इति श्री ऋग्वेदीय ऐतरेय उपनिषद् का मुरादाबादनिवासी भारद्वाजगोत्र गौड़वंश्य-पण्डितभोलानाथात्मज, सनातनधर्मपताकासम्पादक-ऋ० कु० रामस्वरूपशर्मा कृत अन्वय पदार्थ और भाषा भावार्थ समाप्त।